प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य ६)

प्रकाशक :
देवेन्द्र बाहरी
भारती प्रेस प्रकाशन
१०, दरभंगा रोड,
इलाहाबाद-२



मुद्रक :
ईस्टर्न प्रिन्टर्स,
२२-बी, थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद

जिल्दसाज़ :
मुन्शी रज़ा एण्ड ब्रदर्स
हीवेट रोड,
इलाहाबाद

पुरस्कथन

हिन्दी-काव्य उस नदी के समान है जो पहाड़ों से उछलती-कूदती, रेत और मिट्टी बहाती, कलकल करती और अपने अंदर छोटे-छोटे बीसियों नालों को समेटती हुई ओजपूर्ण रूप से पहले मैदान में प्रवेश करती है जहां उसकी गति शांत, गंभीर और स्वस्थ होती चलती है (कभी-कभी भँवर अवश्य पड़ते हैं—बाढ़ भी आ जाती है), उससे खेतियाँ सिंचती हैं, प्राणी-जगत का उपकार होता है और उसके किनारे घाट बनते हैं, नगर खड़े होते हैं, बाग-बगीचे लगते हैं, किश्तियाँ चलती हैं, परन्तु वह चली ही चलती है अपने में से शाखाएं छोड़ती और अनेक बड़ी-बड़ी नदियों को अपने में मिलाती हुई। फिर वह उस प्रियतम समुद्र में मिल जाती है जिस की खोज में वह हजारों मीलों से चल कर आई थी।

हिन्दी का आदि साहित्य वीरकाव्य है। उसमें ओज है, उछल-कूद है, कड़कना है, झाड़-झंखाड़ भी है, उस में अन्य रस भी हैं। यह काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी भावना सदा अमर रही है। धार्मिक काल में, शृंगारी काल में एवं आधुनिक काल में वीररसपूर्ण कविताएं भँवरों के समान हिन्दी-साहित्य की नदी में चलती ही रही है। अलबत्ता, इन का रूप अवश्य बदलता रहा है।

फिर धार्मिक काव्य का युग आया। हिन्दी साहित्य में गंभीरता, शान्ति और स्वस्थता आई। इसमें प्राणीमात्र के उपकार की भावना उठी। इसकी अनेक शाखाएं चलीं—ज्ञान-मार्ग, भक्ति-मार्ग, रामोपासना, कृष्ण-भक्ति, शृंगार इत्यादि। आगे चलकर छायावाद और रहस्यवाद भी इसी से निकले—काव्य अपने प्रियतम की गोद में जाने को विह्वल हो उठा—फिर प्रकृति और पुरुष मिल ही गये। परन्तु इस मिलन में जहाँ सुख और शान्ति का अनुभव हुआ, वहाँ अपने प्यारे देश से बिछुड़ने का दुःख भी हुआ। अनंत में जाने से पहले भी यह भावना काव्य-नदी में जागृत थी। परन्तु वियोगावस्था में यह भावना भड़क उठी। काव्य में नई चेतना, नई क्रान्ति का ज्वार उठा। जिस प्रकार समुद्र का जल उड़कर फिर बादलों के रूप में बरस कर नदी में शामिल हो जाता है उसी प्रकार हिन्दी-काव्य का प्रतिवर्तन प्रगतिवाद और वीरभावना के रूप में हमारे सामने आया। यही इस काव्य के एक हजार बरस का संक्षिप्त इतिहास है।

काव्य की इन्हीं अवस्थाओं का ऐतिहासिक विवेचन इन पृष्ठों में दिया गया है। वीर-काव्य की प्रारम्भिक पद्धति क्या थी, पीछे किन भावनाओं का समय-समय पर सन्निवेश हुआ, किन शैलियों का त्याग और किन का विकास हुआ, प्रक्रिया में कौन-कौन से परिवर्तन हुए, युगों के बीच से होकर आधुनिक काल में 'वीरता' की परिभाषा क्योंकर बदली और भाव तथा भाषा में क्या नवीनता आई—इन सभी बातों का विवरण एक ही प्रकरण में दिया गया है ताकि कविता की विशालता, अनेकरूपता और क्षमता का अनुमान हो सके। इसी प्रकार धार्मिक काव्य का दूसरे प्रकरण में और शृङ्गारी काव्य का तीसरे प्रकरण में आदि से लेकर अंत तक क्रमिक विकास दिया गया है। इस से काव्य-साहित्य का एक व्यापक चित्र हमारे सामने उपस्थित हो गया है और काव्य के रूप भी निखर गये हैं। आधुनिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बहुमुख हैं इस लिए उनकी चर्चा अलग भी करनी पड़ी है। वैसे तो प्रत्येक काल में भिन्न-भिन्न विषयों पर कविताएं होती ही रही हैं, परन्तु आजकल की सी स्वच्छंदता पहले न थी। इस स्वच्छंदता और खड़ी बोली काव्य का एक साथ उदय होना हमारे साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना थी। संक्रांति-काल (हरिश्चन्द्र-युग और द्विवेदी युग) में जो-जो प्रयोग हुए उनका उल्लेख किये बिना छायावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की परंपरा का मूल्यांकन करना कठिन था। इस प्रकरण में कुछ-कुछ पुनरावृत्ति हो गई है, परन्तु इसके बिना काम नहीं चल सकता था।

समस्त पुस्तक में यह भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि परंपरा और परिस्थिति का साहित्य पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है।

शैली के अन्तर्गत विषय-प्रतिपादन, भावाभिव्यक्ति का ढंग, काव्य की टैक्नीक, भाषा-प्रयोग, छंद-योजना, रसालंकार-विधान, सब पर विचार किया गया है।

काव्य और प्रक्रिया की भिन्न-भिन्न शैलियों का स्पष्टीकरण उदाहरणों द्वारा कर दिया है। ये उदाहरण कवियों का व्यक्तित्व दिखाने के लिए नहीं, अपितु भाव, भाषा और कविता के भिन्न-भिन्न प्रकारों का परिचय देने के लिए चुने गये हैं। विभिन्न धाराओं की रचनाओं की सूचियाँ भी जगह-जगह उसी उद्देश्य से दी गई हैं। यह इतिहास नहीं, "कविता" का ऐतिहासिक अध्ययन है—इस कारण जिन कवियों के नाम इसमें नहीं आ सके उन्हें शिकायत नहीं होनी चाहिये।

इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें हिन्दी-काव्य की प्रत्येक धारा का साद्योपान्त वर्णन है। हिन्दी के सारे काव्य-साहित्य का विकास विवेचित किया गया है। कविताओं के विविध और प्रतिनिधि उदाहरण देने की

चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से यह एक अमूल्य काव्य-संग्रह भी है। काव्य हमारे साहित्य का अत्यन्त पुष्ट अंग है और उच्च कोटि का है। भारत के साहित्यों ही में नहीं, विश्व-साहित्य में इसका गौरवपूर्ण स्थान है। इस पर बड़ी सहानुभूति और आत्मनिष्ठा के साथ विचार किया गया है। जहाँ इसके गुणों और विशिष्ट तत्त्वों को उभार कर रखने का प्रयत्न किया गया, वहाँ इसकी त्रुटियों और हीनताओं को स्पष्ट करने में संकोच भी नहीं किया गया। पुस्तक की पद्धति ऐतिहासिक भी है और साहित्यिक भी, किन्तु है संयत और प्रासंगिक। किसी भी विषय पर बहुत लम्बे-लम्बे व्याख्यान नहीं दिये गये। अनावश्यक रूप से बातों को तूल देना उचित नहीं समझा गया। सैद्धान्तिक पक्षों पर भी आवश्यकता से अधिक नहीं लिखा गया। सूत्र रूप में छोटे-छोटे, सरल और अर्थगर्भित वाक्य रख दिये गये हैं। विषय-प्रतिपादन वर्णनात्मक नहीं है, विचारात्मक है। अत हम समझते हैं कि इस पुस्तक की अपनी उपादेयता होगी।

पुस्तक की तय्यारी में हमें अनगिनत पुस्तकों से सहायता मिली है। सर्वश्री रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, शान्तिप्रिय द्विवेदी, कृष्णशंकर शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा डा० रामशंकर शुक्ल रसाल, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० श्रीकृष्णलाल, डा० बलदेवप्रसाद, डा० केसरीनारायण शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेन्द्र, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० विनयमोहन शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, डा० माता प्रसाद गुप्त, ओमप्रकाश अग्रवाल, डा० धर्मवीर भारती, डा० टीकमसिंह तोमर, पं० परशुराम चतुर्वेदी, डा० मुन्शीराम शर्मा, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, डा० सत्येन्द्र, डा० रामरतन भटनागर, डा० भोलानाथ, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, लक्ष्मीकान्त वर्मा और दूसरे बीसियों आलोचकों की कृतियों को हमने ध्यान से पढ़ा है, और कुछ-एक की रायों को लिया भी है। हम उन सब के अनुगृहीत हैं।

—लेखक

विषय-सूची

हिन्दी की काव्यशैलियों
का
विकास



The Development
of
Styles in Hin   Poetry

[१]

पृष्ठभूमि

वैदिक काव्य

भारतीय साहित्य का प्रारम्भिक रूप वेदों में उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य की अनेक स्थितियाँ हैं—संहितायें, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र। इन में ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदांग और दर्शनादि सूत्र ग्रंथ गद्य में हैं। प्रायः धर्मशास्त्र हैं तो पद्यबद्ध, किन्तु उनमें काव्यत्व की मात्रा बहुत कम है। उपनिषदों में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तरीय, ऐतरेय और कौशीतकी विषयवस्तु की दृष्टि से बहुत महत्त्व-पूर्ण हैं, ये सब गद्य में हैं। केन और आथर्वन् उपनिषदों के कुछ भाग गद्य में और कुछ पद्य में हैं। कठ, ईश, श्वेताश्वतर, मुण्डक और महानारायण पद्यमय हैं। पर इन में भी विषयतत्त्व की गम्भीरता के कारण काव्यशैली का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऋग्वेद की ऋचाओं में वस्तुतः सुन्दर काव्य के दर्शन होते हैं। ऋचाओं की संख्या १०१० है। अधिकांश ऋचायें गायत्री छंद में हैं, अथवा गायत्री और जगती के मिश्रित रूप में। सामवेद में बहुत सुन्दर और हृदय को छूने वाली संवेदनशील गीतियाँ संकलित हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में जो देवी-देवताओं के स्तोत्र, दानशील राजाओं की स्तुतियाँ, साधक की प्रार्थ-नायें हैं वे भारतीय काव्य के प्रथम निदर्शन हैं। इन में इन्द्र और अग्नि के वर्णन में ओज, वरुण के वर्णन में मधुरता और उषा के वर्णन में सुकुमारता के दर्शन होते हैं। वैदिक ऋषि कठोर बात को कोमल शब्दों में कहने का आदी है। उस में

उल्लास और हर्ष का भाव प्रबल है। वेद में निराशावादी स्वर कहीं नहीं मिलता। वर्णन प्रायः यथार्थ है, पर कहीं-कहीं अत्युक्ति भी है। अलंकारों में उपमा का प्राधान्य है और प्रायः उपमायें मनुष्य जीवन से सम्बद्ध हैं।

किन्तु, यह मानना पड़ेगा कि वैदिक साहित्य में काव्य का इतना महत्व नहीं है जितना कि गद्य का। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस साहित्य में विषय प्रधान है और धार्मिक है। उस में भावपक्ष और लौकिकता की कमी है। वैदिक साहित्य से कोई काव्यशैली विकसित होकर आगे नहीं बढ़ी। वैदिक साहित्य के छंद, अलंकार, वर्णन, आदि सब विशिष्ट हैं। अलबत्ता वेद के विषय अवश्य चलते रहे है। वेद की उल्लासपूर्ण धार्मिक भावना, ब्राह्मण ग्रन्थों का ब्रह्मन्, वेदान्त की जीव, ब्रह्म, प्रकृति और आत्मा की जिज्ञासापूर्ण प्रवृत्ति, उपनिषदों की रहस्यात्मकता, दर्शनशास्त्रों का धर्माचार परवर्ती भारतीय काव्य में स्थान पाता रहा, पर काव्यशैली की दृष्टि से वैदिक काव्य का प्रभाव नगण्य कहा जायगा। साहित्याचार्यों ने तो वाल्मीकि ही को आदि कवि माना है, किसी वैदिक ऋषि को नहीं।

वाल्मीकिकृत रामायण से महाकाव्य का आरम्भ होता है। कुछ आचार्यों ने महाभारत और पुराण के साथ रामायण को भी इतिहास के अन्तर्गत लिया है।

संस्कृत काव्य

पुराणों में कथावर्णनों के अलावा अनेक धार्मिक व्यवस्थाओं की स्थापना हुई है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्यत् और ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा की; विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म, और वाराह पुराण में विष्णु की, एवं मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, वायु, स्कन्द और अग्नि-पुराण में शिव की प्रतिष्ठा हुई है। इन पुराणों में वर्णित कथाओं, वर्णन-शैलियों और धार्मिक आस्थाओं का बहुत गहरा प्रभाव परवर्ती प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के साहित्य पर पड़ा है। महाभारत का प्रभाव भी लगभग इसी तरह का रहा है। इसके अतिरिक्त महाभारत, भगवद्गीता, शकुन्तला, मत्स्योपाख्यान, रामकथा, ऋष्य शृंग की कथा, राजा शिवि का उपाख्यान, द्रौपदी-हरण, सावित्री-सत्यवान् की कथा, नलोपाख्यान एवं हरिवंश (कृष्णचरित) भी परम्परा के रूप में महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक साहित्यांग रहे हैं। किन्तु रामायण का काव्यगत प्रभाव अपूर्व और व्यापक रूप से पड़ा। संस्कृत में निम्नलिखित महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं—

कालिदासकृत	रघुवंश, कुमारसम्भव।
अश्वघोषकृत	बुद्धचरित।
भारविकृत	किरातार्जुनीय।
माघकृत	शिशुपालवध।

हर्षकृत	नैषधचरित ।
भर्तृहरिकृत	भट्टिकाव्य ।
कविराज पण्डितकृत	राघवपाण्डवीय ।
पद्मगुप्तकृत	नवसाहसांकचरित ।
रत्नाकरकृत	हरविजय ।

कालिदास का 'मेघदूत' और बिल्हण की 'चौरपञ्चाशिका' महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि खण्डकाव्य हैं।

मुक्तकों में ऋतुसंहार, घटकर्पर, शृंगारतिलक, शृंगार-शतक, अमरु-शतक और गीतगोविन्द उल्लेखनीय हैं।

नीति-काव्य में नीतिशतक, वैराग्यशतक, नीतिमंजरी और शान्तिशतक गिनाये जा सकते हैं।

संस्कृत में अनेक स्तोत्रग्रंथ हैं जो वैदिक परम्परा में आते हैं। पौराणिक स्तोत्रों की परम्परा भी भिन्न नहीं है। इसी परम्परा में जैन और बौद्ध स्तोत्र भी आते हैं।

वैदिक साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य में काव्य का अधिक महत्त्व है और इस में भी महाकाव्य का प्राधान्य है। महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण 'साहित्य दर्पण' में वर्णित हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः॥
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥

अर्थात्

महाकाव्य सर्गों में विभाजित होता है। उस में एक नायक होना चाहिये जो कोई देव हो अथवा अच्छे वंश का क्षत्रिय हो—धीर, उदार और गुणवान्। अनेक नायक हों तो एक ही वंश में उत्पन्न राजा हों। शृंगार, वीर, शान्त रसों में से एक की प्रधानता हो, शेष रस गौण हों। नाटक की मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण नाम की पांच संधियां महाकाव्य में होनी चाहियें। कथानक कोई ऐतिहासिक विषय अथवा सज्जन-वृत्तान्त होना चाहिये। आरम्भ में नमस्कार आशीर्वाद हो अथवा कथानक ही कहा जाये। कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का साधुवाद हो। एक सर्ग में एक ही छंद हो, परन्तु सर्ग के अंत में छंद बदल जाना चाहिये। सर्गों की संख्या आठ से अधिक होनी चाहिये। सर्ग न छोटे हों न बहुत बड़े। निम्नलिखित विषयों का वर्णन यथायोग सांगोपांग होना चाहिये—सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, सायंकाल, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, वन, समुद्र, संभोग (नायक-नायिका का मिलन), विप्रलम्भ (नायक-नायिका का वियोग), मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध के लिए प्रस्थान, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रजन्म।

वाल्मीकि का आदिकाव्य संस्कृत भारती का गौरवशाली निकेतन है। सरलता और स्वाभाविकता के साथ-साथ नाना रसों का मंजुल समन्वय, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, अर्थगाम्भीर्य, स्वाभाविक आलंकारिकता, मानव और मानवेतर प्रकृति का संश्लिष्ट वर्णन एवं सुरुचिपूर्ण प्रबन्ध-कल्पना इसकी अपनी विशेषता है। कालिदास में इसी सुकुमार शैली का उत्कर्ष मिलता है। कालिदास प्रकृति के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी कविता की कमनीयता का यह मुख्य कारण है। उस में अलंकारों का सौन्दर्य और पदावली की मनोरमता तो है, भाषा का भड़कीलापन नहीं है। भारवि ने महाकाव्य में अलंकार-बहुल शैली का प्रवेश किया। वाल्मीकि और कालिदास में विषय की विशालता है। 'रघुवंश' के १९ सर्गों में दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक रघुकुल की कई पीढ़ियों का वर्णन हुआ है। किन्तु भारवि ने अर्जुन के किरात के पास जाने और उससे युद्ध करके अस्त्र प्राप्त करने की कथा को २० सर्गों में कह डाला है। प्रकृति का वर्णन बहुत विस्तृत है। भारवि के बाद वर्ण्यवस्तु कम होने लगी और विस्तार अधिक। भारवि और उनके बाद का काव्य अलंकार-भार से लदा है। इस अलंकृत शैली का उत्कर्ष माघ में प्राप्त होता है। पद्मगुप्त और श्रीहर्ष ने तो वाल्मीकि की प्रसाद-गुणयुक्त रसमयी शैली को अपनाया, किन्तु कहीं-कहीं अलंकृत शैली के नमूने भी अवश्य दिये। अलंकृत शैली का प्रतिनिधि काव्य 'हरविजय' है। इन में और परवर्ती कवियों में प्रकृति-चित्रण का सौन्दर्य नहीं है। कहीं-कहीं रसवत्ता भी

नहीं है। अलंकृत शैली का विकट रूप तब सामने आता है जब एक ही प्रबन्ध में राम और अर्जुन दोनों की कथा बनती चलती है। एक-एक श्लोक से दो-दो तीन-तीन अर्थ निकलने लगते हैं। ऐसे महाकाव्यों में धनञ्जय का 'द्विसन्धान', विद्या-माधव का 'पार्वतीरुक्मणीय' और कविराजसूरि का 'राघवपाण्डवीय' मुख्य हैं। इनमें पाण्डित्य का प्रदर्शन है और काव्य का नितान्त अभाव।

साहित्यदर्पणकार पंडित विश्वनाथ ने खण्डकाव्य का लक्षण लिखा है—नन्तु घटनाप्राधान्यात् खण्डकाव्यमिति स्मृतम्। अन्यत्र यह लक्षण भी मिलता है कि 'खंडकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।' इस प्रकार खंडकाव्य में एक ही घटना होती है और उस में मानव जीवन के एक ही पहलू पर प्रकाश डाला जाता है। उस में महाकाव्य के अन्य गुण पूर्णतया विद्यमान् रहते हैं। संस्कृत में मेघदूत के अनुकरण में अनेक 'संदेश-काव्य' लिखे गये हैं। प्राय खंडकाव्य का संस्कृत साहित्य में बहुत महत्त्व नहीं रहा। लेकिन इसकी परम्परा बराबर चलती रही है। वैष्णव और जैन कवियों ने अपने सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए काव्य के इस रूप को विशेष करके अपनाया—'ऊधवशतक' इसका उत्कृष्ट निदर्शन है। ,

संस्कृत में मुक्तक काव्य की कमी नहीं है, लेकिन प्राय यह समझा जाता रहा है कि मुक्तक में न तो वह रसपूर्णता आती है और न ही वह काव्य-सौन्दर्य जो कि महाकाव्य का प्राण है।

सामान्यतः संस्कृत के अधिकतर कवियों का सम्बन्ध वैभवशाली महीपालों के साथ रहा। राजाओं के दरबार वस्तुतः कला-कौशल-साहित्य-संगीत के प्रधान केन्द्र थे। संस्कृत काव्य इन राजाओं, सामन्तों और धनी-मानी लोगों की संस्कृति के चित्रों से भरा है। तत्कालीन शिष्ट समाज की रुचि तथा प्रवृत्तियों का मनोरम रूप इस काव्य में उपलब्ध होता है। यह काव्य लिखा ही गया है नितान्त सभ्य, शिष्ट, कलाप्रवीण, रसिक नागरिक के लिए। लेकिन ऐसा नहीं है कि ये कवि साधारण जीवन से अनभिज्ञ थे अथवा उसके प्रति उपेक्षापूर्ण थे। अनेक काव्यों में दीन-हीन गांवों, दरिद्र किसानों, धान के खेत की रखवाली करने वाली ग्राम-वधूटियों, पहरा देने वाले सिपाहियों, निर्धन ब्राह्मणों, साधुओं, संन्यासियों और दूसरे लोगों का बड़ा अनुभूतिपूर्ण वर्णन मिलता है। इन कवियों की सहानुभूति मानव तक ही सीमित नहीं है, पशुपक्षियों और पेड़पौधों के साथ भी इनका सामञ्जस्य है।

प्रायः रससिद्ध कवि बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य के चित्रण में दक्ष है। किन्तु, उत्तर काल में कवियों में काव्य की अपेक्षा कला और विदग्धता अधिक होती गई है। उनका काव्य अलंकारों और छंदों की विविधता के जंजाल

में उलझ गया है। वे अपने कल्पना-चातुर्य और अपनी लेखनशैली की पटुता से पाठकों को मोहित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। उनका काव्य अधिकाधिक कृत्रिम, कठिन और जटिल बन गया है। यह रीतिबद्ध बनावटीपन प्राकृत साहित्य के उदय के बहुत पीछे संस्कृत काव्य में आया।

प्राकृत काव्य

पालि मे कथावर्णन और पौराणिक पद्धति का विकास भले ही हुआ हो, काव्यशैलियों पर कोई विशेष प्रभाव ग्रहण नही किया गया, क्योंकि पालि भाषा में गद्य साहित्य का प्राधान्य है। त्रिपिटक साहित्य उपदेशात्मक और गद्यमय है। केवल पद्य में रचित अंश 'गाथा' है। गाथा की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश में चलती रही है। इसी से कालान्तर में 'दोहा' शैली का विकास माना जाता है। लोकसाहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण पालि साहित्य में उपमाओं का अनुठापन, जनसाधारण के जीवन का स्वाभाविक चित्रण, भाषा और शैली की अकृत्रिमता विशेष दर्शनीय हैं।

मध्यकालीन प्राकृत का अधिकांश साहित्य जैनधर्म-सम्बन्धी है और पद्यप्रधान है। काव्य कुछ तो मुक्तक गीतों के रूप में संस्कृत नाटकों में उपलब्ध होता है और कुछ 'सेतुबन्ध', 'गौडवहो', 'गाथासप्तशती', 'वज्जालग्ग' प्रभृति ग्रंथों में। यह काव्य लगभग सारे का सारा माहाराष्ट्री प्राकृत मे है। जैन-काव्य अन्य प्राकृतों मे भी मिलता है। जैन प्रबन्ध रचनाशैली की दृष्टि से लौकिक काव्यों की कोटि में ही आते हैं। उन पर बहुत झीना-सा आवरण धार्मिकता का रहता है। कथा-वस्तु प्रायः लौकिक है, कभी-कभी अर्द्धैतिहासिक है। केवल अन्त में प्रधान पात्रों को जैनधर्म की ओर प्रवृत्त होते दिखाया जाता है। जैन-कथा 'लीलावई' और लौकिक कथा 'सुरसुन्दरी' की शैली और प्रबन्धात्मकता में कोई विशेष अन्तर दिखाई नही देता। हेमचन्द्रकृत 'कुमारपाल-चरित' मे लौकिकता धार्मिकता की अपेक्षा अधिक मात्रा मे है। इस में का राजधानी पट्टण का वर्णन, राजवैभव, उद्यानों का सौन्दर्य, प्रजा का विनोद, कुमारपाल और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन का युद्ध, कुमारपाल द्वारा दक्षिण और उत्तर के अनेक राजाओं का दमन, इत्यादि वर्णन लौकिक काव्य के सुन्दर निदर्शन हैं। पउम चरिय, वसुदेव-हिण्डी, सणारा-गुप्त-चरित, सुपासनाह-चरिय, और कुम्मापुत्त-चरिय आदि धार्मिक चरित-काव्यों में भी यत्र-तत्र सुन्दर कवित्वपूर्ण स्थल प्राप्त होते हैं। आख्यानों में तरंगवती, सुरसुन्दरी-चरियं, कालकाचार्य-कथानक, भुवन-सुन्दरी, सिरिसिरि-कहा में बहुत रोचक प्रेम-कथाएँ हैं। रयणसेहर-कहा तो 'पद्मावत' का पूर्व-रूप ही है। इन काव्य-ग्रंथों की भाषाशैली प्रायः सरल और सरस है। लोक विश्वासों का चित्र विशद ढंग से हुआ है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक है। वर्णन विस्तृत और कलापूर्ण हैं।

प्राकृत का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य सेतुबन्ध (रावण वध) है। इसके १५ आश्वासों (सर्गों) में से प्रथम आठ में नल-नील तथा वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बाँधने का और उत्तरार्द्ध में रावण-वध तक की घटनाओं का वर्णन है। कथानक बहुत संक्षिप्त है। पूर्वार्द्ध में प्रकृति-वर्णन और उत्तरार्द्ध में मानव-प्रकृति के चित्रण में कवि की अनुभूति और गम्भीर एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। राम के क्षोभ, रावण की चिन्ता, सीता के त्रास, विभीषण की कृतज्ञता, राक्षसों की हड़बड़ी इत्यादि मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। काव्य वीर-रस प्रधान है। अन्य रस यथास्थान समाविष्ट हुए हैं। सूक्तियों का तो यह ग्रन्थ भाण्डार ही माना गया है। भाषा समास-बहुला और पाण्डित्यपूर्ण है। इस कृति का प्रभाव संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश सब पर पड़ा है। इस के पीछे 'रावणवध' 'शिशुपालवध', 'कंसवध' आदि अनेक प्रबन्ध लिखे गये। 'गौडवध', 'लीलावई', 'सिरिचिंधकव्व' और 'सौरि-चरित्त' इसी परम्परा के प्रबन्ध काव्य हैं। 'लीलावई' बहुत सफल प्रेम-काव्य है। 'सिरिचिंधकव्व' संस्कृत के भट्टिकाव्य की शैली का है। इस में श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन के साथ-साथ वररुचि और त्रिविक्रम के व्याकरणों की व्याख्या की गई है। इस में पाण्डित्य तो है, रसपूर्णता नहीं है। सौरि चरित्त में भी कृष्ण की कथा वर्णित है।

उषानिरुद्ध और कंसवहो भागवत के आधार पर लिखे गये खण्डकाव्य हैं। दोनों में चार-चार सर्ग हैं और दोनों में अनेक संस्कृत छंदों का प्रयोग किया गया है।

प्रसंगवश यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि प्राकृत में चरित-काव्य की एक नई शैली का प्रारम्भ अवश्य हुआ, पर सामान्यतः प्राकृत काव्य-शैलियाँ संस्कृत काव्यशैलियों से भिन्न नहीं हैं—प्रायः वही रचना-पद्धति, वही पाण्डित्य-प्रदर्शन, वही छंद प्राकृत के प्रबन्ध काव्य में भी मिलते हैं। अलबत्ता प्राकृत के मुक्तक काव्य का सौन्दर्य निश्चय ही अपूर्व है। मुक्तकों में लोक-जीवन के विविध पक्षों की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। संस्कृत में जो कल्पना और आचार्यत्व का प्राधान्य है वह प्राकृत के मुक्तक पद्यों में नहीं है। इन में अनुभूति और कल्पना का सुन्दर सामञ्जस्य है। सत्य और सुन्दर, एवं जीवन और काव्य का सम्मिश्रण है। इसी से इन में मार्मिकता अधिक है। इन में रागात्मक वृत्तियों का चित्रण स्वाभाविक ढंग से हुआ है। इनका अधिकांश वर्ण्य विषय शृंगार, नीति, धर्म तथा प्राकृतिक सौन्दर्य है। वीर, रौद्र अथवा भयानक रस के लिए इन में स्थान नहीं है। प्राकृत मुक्तकों का-सा लालित्य, माधुर्य और उत्साह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी सी व्यञ्जना की सुन्दरता भी सर्वत्र नहीं मिलती।

प्राकृत के नाटकों में और काव्यशास्त्रों के उदाहरणों में मुक्तक गीत मिलते

हैं। स्वतन्त्र ग्रंथों में 'गाथासप्तशती,' 'वज्जालग्ग,' 'विदग्ध वाणलीला', 'मदन-मुकुट' आदि प्रसिद्ध हैं। 'गाथासप्तशती' की गणना विश्व के श्रेष्ठ काव्यों में की जाती है। इस में अनेक कवियों के सात सौ से कुछ अधिक गाथा-पद्य संगृहीत हैं। शृंगार इस का प्रधान विषय है। युवक-युवतियों, नायक-नायिकाओं, विशेषतया अनेक प्रकार की स्त्रियों—साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वेश्या, स्वकीया, परकीया, संयमशीला, चचला, वियुक्ता, संयुक्ता, परित्यक्ता, आशान्विता, निराशाकुला—की मन स्थितियों और भावनाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रेम की भूमिका में रमणीक ग्राम, लहलहाते खेत, वेतस-निकुञ्ज, पलास-कुञ्ज, निर्जन वन, निर्झर, नाले, जोहड, तालाब आदि के अनूठे और यथार्थ वर्णन इस ग्रंथ की एक विशेषता है। ग्राम-जीवन के चित्र, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, व्रत-नियम, तीज-त्यौहार, पूजापाठ आदि के काव्यपूर्ण चित्र अनुपम हैं। प्राकृतिक स्थानों के मनोहारी वर्णनों के साथ मेघ, विद्युत, पवन, मयूर-नृत्य, वारकेलि, शुकपक्ति आदि और ऋतुओं के स्वाभाविक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं नीति-व्यवहार के उपदेश और सुभाषित भी मिल जाते हैं। उपमाओं का अनूठापन भी उल्लेखनीय है। परम्परागत पिटी-पिटाई उपमाओं और रूपकों का प्रयोग प्रायः इस में नहीं मिलता। वज्जालग्ग में नखशिखवर्णन, नायक-नायिका-वर्णन, प्रेम की अनेक अवस्थाओं की व्याख्या मिलती है।

अपभ्रंश साहित्य अभी पूरी तरह प्रकाश में नहीं आया। जैन-भण्डारों में न जाने कितने ग्रंथ-रत्न पड़े हैं। इस समय तक जैनों द्वारा लिखे कुछ महापुराण, पुराण, चरित आदि (ग्रन्थ जो संस्कृत और प्राकृत के इसी प्रकार अपभ्रंश काव्य के ग्रन्थों की परम्परा में लिखे गये), बौद्धों द्वारा लिखे गये पद, गीत और दोहे (अर्थात् सिद्ध साहित्य) जिन से कुछ-कुछ नई पर-म्पराओं का उत्तरी भारत के साहित्य में प्रारम्भ होता है, संस्कृत ग्रंथों में बिखरे हुए फुटकर पद्य (जो 'गाथासप्तशती' और 'वज्जालग्ग' के मुक्तकों के अनुरूप माने जा सकते हैं), विद्यापतिकृत 'कीर्ति-लता' और अब्दुर्रहमानकृत 'सदेश-रासक' (जिन से क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी भारत के साहित्यों में नवीन काव्य-शैली का विकास हुआ)—बस इतना कुछ ही अपभ्रंश साहित्य उपलब्ध है।

यह बात विशेषत वर्णनीय है कि वैदिक साहित्य से आरम्भ करके क्रमशः काव्य का रूप और आकार बढ़ता रहा है, गद्य का घटता रहा है। अपभ्रंश तक आते-आते काव्य ही काव्य उपलब्ध होता है, कोई गद्यग्रन्थ अथवा नाटक अभी तक नहीं मिला।

जैन काव्य प्रधानतः धार्मिक है। इसके अन्तर्गत चरित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं—पउमसिरि-चरिउ, सुदंसण चरिउ, जिणदत्त चरिउ, भविसयत्त कहा आदि। अधि-

काश में प्रेमकथाएँ वर्णित हैं। इन प्रेमकथाओं को नीति और धर्मसम्बन्धी उपदेशों से समन्वित किया गया है। प्राकृत की 'समराइच्च कहा' तथा 'वसुदेव हिण्डी' जैसी धर्मकथाओं की परम्परा अपभ्रंश के इन चरित-काव्यों में चलती हुई दिखाई देती है। प्रेम का समारम्भ प्रायः गुणश्रवण, चित्रदर्शन, प्रथम साक्षात्कार, अथवा स्वप्नदर्शन से होता है और उसकी परिणति विवाह में होती है। नायिका की अपेक्षा नायक को अधिक कष्ट भोगने पड़ते हैं और उसे प्रायः सिंहलद्वीप की यात्रा भी करनी पड़ती है। कथा में आश्चर्य-तत्त्व अवश्य लाया जाता है। यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर आदि नायक-नायिका की सहायता करते रहते हैं। चरित-काव्यों में लोक-विश्वासों की पर्याप्त जानकारी मिलती है।

लगता है कि अधिकतर जैन कवियों ने किसी राजा, मन्त्री अथवा सेठ की प्रेरणा से काव्य-रचना की। कुछ एक ने अपने आश्रयदाता की विजय और वीरता का वर्णन भी किया; किन्तु वे मिथ्या यशोगान अथवा चाटुकारिता से दूर रहे।

यह बता देना आवश्यक है कि अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों के रूप-संगठन में संस्कृत-प्राकृत की परंपरा में कुछ शिथिलता आ गई है। कथातत्त्व इनमें भी कम है, वर्णन-विस्तार अधिक और कृत्रिम है। भाषा अलंकृत और कहीं-कहीं बोझिल है। भावों के चित्रण में मार्मिकता कम है। काव्य का विभाजन सन्धियों में होता है। प्रत्येक सन्धि के अन्तर्गत कुछ कडवक होते हैं जिनकी संख्या निश्चित नहीं है। प्रत्येक कड़वक की समाप्ति घत्ता से होती है। कुछ पुराण ग्रन्थों में काण्ड हैं, और काण्डों के अन्तर्गत सन्धियाँ आदि हैं।

हिन्दी के अनेक चरित ग्रंथ इस परम्परा में आते हैं।

बौद्ध सिद्धों की रचनाओं के संग्रह 'दोहा कोष', 'बौद्ध गान और दोहा' 'चर्यापद' आदि नामों से हुए हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पद भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में लिखे गये हैं। सहजयानी सिद्धान्तों की व्याख्या, प्राचीन रूढ़ियों का खंडन, मंत्रतंत्र, शास्त्रज्ञान, कर्मकाण्ड, और बाह्याचारों का निषेध, गुरु-महिमा—सिद्ध साहित्य के ये मुख्य विषय हैं।

सिद्ध साहित्य प्रमुखतः धार्मिक है, पर उस में काव्यिक सौन्दर्य का अभाव है। कहीं-कहीं काव्य-छटा है तो वहाँ पर गौण रूप में। प्राय. सिद्ध कवि काव्य-शास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ थे। भाषा और कविता का अर्थ ही इन की परिभाषा में भिन्न था—लौकिक न होकर आध्यात्मिक। अक्षर, पद, वाक्य सब को तान्त्रिक साधनाओं का अंग बना लिया गया था। सिद्ध साहित्य के रूप थे—चर्यापद, वज्रगीति, मुक्तक, दोहे तथा अर्द्धालियाँ। इन में प्रथम दो गीतिकाव्य और अन्तिम तीन मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आते हैं। गीति काव्य भावप्रधान और मुक्तक नीतिप्रधान है। चर्यापदों में गुह्यचर्या, तत्त्वचिन्तन और साधना है, दोहों

में उसी का जनता में प्रचार, साम्प्रदायिक खंडन-मंडन, एवं सैद्धांतिक विवेचन। गीति-काव्य में स्व है, मुक्तक-काव्य में पर। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि गीतिकाव्य में नीति-तत्त्व और मुक्तक काव्य में भावतत्त्व उभर आया है।

सिद्ध-साहित्य के भावपक्ष का लक्ष्य है महासुख की प्राप्ति की प्रणाली का वर्णन तथा उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति। इस प्रणाली को दाम्पत्य प्रेम के रूपक में वर्णित किया गया है। नायक भगवान् तथागत है और नायिका उनकी भगवती नैरात्मा। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक है। किन्तु ज्ञान के बिना वे शक्ति हीन है। उन्हें पथ नहीं ज्ञात, एक दूसरे का व्यक्तित्व और प्रकृति नहीं ज्ञात। अत गुरु उनके बीच में दूती का कार्य करता है और उनका मिलन करा देता है। उस मिलन से नि स्वभाव की प्राप्ति होती है। सिद्धों ने स्वकीया नायिका—गृहिणी, वधू—को ही प्रतिष्ठित किया है। बाद में वैष्णवों ने परकीया रूप का आग्रह किया। शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण मिलता है। नायक (साधक) तथा नायिका (नैरात्मा) के रूप-वर्णन में सिद्धों ने प्रतीकात्मक शैली का आश्रय लिया है। ऐसे चित्रण लौकिक दृष्टि से भी यथातथ्य है। प्रकृति का वर्णन अपेक्षाकृत कम है। सिद्ध बाह्य प्रकृति को बन्धन का कारण मानते थे। प्रकृति मिथ्या है, धर्मशून्य है। वे प्रकृति को अन्तस्थ मानते थे। ये बाहर की गंगा-यमुना असत्य है, वास्तविक गंगा-यमुना तो दोनों नाड़ियों में है जिन के मध्य से अवधूति पथ द्वारा सहजयान प्रवाहित होता है। वास्तविक कामरूप, प्रयाग, वाराणसी शरीर के भीतर है। वास्तविक पर्वत तो मेरुदंड है जिस के शिखर पर नायिका वास करती है। चन्द्र और सूर्य सब इसी देह में है। इसी में नाना रंग के कमल खिले है। ये कमल सदा खिले रहते है। हठयोग संबंधी संकेतों के लिए अनेक असंगतियाँ—कच्छपों का दूध दुहा जाना, घड़ियाल का इमली खाना, बैल का प्रसव करना आदि वर्णित है।

नाथ साहित्य और भक्ति साहित्य को समझने के लिए इन बातों की जानकारी आवश्यक है।

नीति के पदों और दोहा में धर्म प्रमुख है, लौकिक व्यवहार गौण। याद रहे कि सिद्ध समाज के विद्रोही थे। वे परम्परागत सामाजिक अनुशासन की उपेक्षा करके वैयक्तिक साधना पर बल देते है। वे अपनी रचनाओं में साधना-पथ का विवेचन करते, विरोधी साधना पथों का खंडन करते और अपने साधना मार्ग के प्रचारों का मंडन करते है। उनके खंडन में व्यंग्य के साथ अक्खड़पन, साहस और निर्भीकता है।

सिद्ध काव्य में प्रतीक-योजना एक विशिष्टता है। अगम अगोचर का ज्ञान गम्य और गोचर द्वारा कराया जाता है। प्राय प्रतीक प्रकृति और साधारण

जीवन से लिये गये हैं—मूषक और गाय इन्द्रियाँ हैं, साप मगार है, हस अथवा सिंह चित्त है। अंधेरी रात का चूहा अज्ञानी चित्त है। सोने हिरन का व्याध के जाल में फँसना मनुष्य का कालपाश में बँधना है। कहीं-कहीं विरोधमूलक प्रतीकों (और उलटवासियों) का प्रयोग भी किया गया है। इनका मुख्य उद्देश्य था जनता को चमत्कृत करना। संत कबीर आदि की शैली और सूरदास के दृष्टकूटों का बीज सिद्धों की इस सन्ध्या भाषा में देखा जा सकता है।

'कीर्तिलता' एक एतिहासिक प्रबन्ध काव्य और 'सन्देशरासक' लौकिक प्रबन्ध काव्य है। हिन्दी के प्राचीन काव्य की परम्परा के लिए 'संदेश-रासक' का महत्त्व बहुत अधिक है। इस में का नायक-नायिका भेद, नखशिख-वर्णन, षड्ऋतु वर्णन और चरित काव्य की रचना-पद्धति उल्लेखनीय शैलियाँ हैं। जिनदत्त सूरिकृत 'उपदेश रसायन रास', जिनप्रभरचित 'नेमिरास' और 'अंतरंग रास' आदि रासा ग्रंथ हिन्दी के चारण काव्य की पृष्ठभूमि में आते हैं। लोकसाहित्य के आधार पर चूनरी, चंचरी, कुलक आदि काव्यरूप भी अपभ्रंश में उपलब्ध होते है।

सामान्य रूप से अपभ्रंश की कृतियों में प्राय भाषा गौण और भाव मुख्य रहा है। भाषा की दो स्थितियाँ रही है—साहित्यिक अलकृत शैली और बोलचाल की सहज स्वच्छन्द शैली। लोकोक्तियो और मुहावरों का प्रयोग सस्कृत-प्राकृत की अपेक्षा अधिक हुआ है।

छंदों में भी नवीन प्रयोग अधिक मिलते हैं। सस्कृत वर्णवृत्तो की अपेक्षा मात्रिक छंदो की अधिकता पाई जाती है। छप्पय, कुडलिया, चन्द्रायन, रड्डा, पज्झटिका, अलिल्लह, अडिल्ला, तोटक, दोधक, चौपाई आदि अपभ्रंश के प्रिय छंद हैं। प्राकृत के गाथा और घत्ता छंद भी चलते रहे है।

उपमाओं और रूपकों में लोकजीवन की झलक स्पष्ट है।

रसो में शृंगार, वीर और शान्त रस की प्रधानता है। कभी शृंगार रस वीर रस का और कभी वीर रस शृंगार रस का सहायक होकर आया है। इन दोनों का पर्यवसान शान्त रस में होता है।

अन्त्यानुप्रास एक नई प्रवृत्ति है जो विशेष उल्लेखनीय है।

हिन्दी काव्य की शैलियो के विकास में इस पृष्ठभूमि की जानकारी बहुत आवश्यक है। १९वीं शती के अन्त तक बराबर वैदिक, सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की विभिन्न काव्यशैलियों का प्रभाव बना रहा है। २०वीं शती के काव्य में भी प्रेरणा के अनेक सूत्र इसी पूर्ववर्ती साहित्य से प्राप्त होते रहे हैं और आगामी युगों में भी इस का उत्तराधिकार बना रहेगा।

वीरकाव्य

हिन्दी साहित्य का आरम्भ वीरकाव्य से होता है। यद्यपि ऋग्वेद में सुदास और दिवोदास की विजयों के वर्णन मिलते हैं, पर भारतीय साहित्य में वीरकाव्य का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण में ही उपलब्ध होता है। लौकिक संस्कृत में रामायण को महाकाव्यों के अन्तर्गत तो माना जाता है, किन्तु उस में वीररस का अभाव सा है। रामायण का आरम्भ भी करुण रस से होता है —क्रौंचवध से—, और अन्त भी करुणरस से होता है—सीता के धरती में समा जाने से। महाभारत, अलबत्ता, वीररस-प्रधान काव्य है। इस का आरम्भिक रूप वैसा ही था जैसा होमर की 'इलियड' और 'ओडिसी' का और इसका उद्देश्य था एक वंश के योद्धाओं के वैयक्तिक पराक्रम का वर्णन। लेकिन, बाद में इस को राष्ट्रीय रूप दिया गया और इस का आर्य जाति के साहित्यिक इतिहास में वही स्थान है जो लैटिन में वर्जिल के 'ईनीड' का। महाभारत में सूत और मागधों की वही स्थिति है जो हिन्दी में चारणों और भाटों की। वीररस की दृष्टि से महाकाव्यों में भारवि का 'किरातार्जुनीय' और नाटकों में भट्टनारायणकृत 'वेणीसंहार' संपन्न माने गये हैं। प्राकृत में रामायण और महाभारत की परंपरा में तो काव्य लिखे ही गये, साथ में अनेक राजाओं, दानवीरों, धर्मवीरों और युद्धवीरों के चरितों की रचना भी हुई।

जिन दिनों हिन्दी कविता का जन्म हुआ उन दिनों संस्कृत और प्राकृत

परंपरा

कविता वृद्धावस्था में थी। अपभ्रंश का यौवन भी ढल रहा था। पश्चिमी अपभ्रंश में संस्कृत की प्रशस्तियों और 'भोज-प्रबन्ध' आदि ग्रंथ के ढंग पर राज-स्तुतियाँ, शृंगारी काव्य तथा लोक-प्रचलित कथानक लिखे जा रहे थे। सन् ६०० ईसवी से अनेक चारणों का उल्लेख मिलता है। महाराज हर्ष के दरबार में बाण कवि का बहुत सम्मान था। दक्षिण के महाराजाओं के आश्रय में भी कई कवि प्रतिष्ठित थे। इन्होंने प्रचलित भाषा में अपने-अपने आश्रयदाताओं के चरितों अथवा फुटकल वृत्तों का वर्णन अवश्य किया था—इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। मुख्य-मुख्य चारणों के नाम भी हमें प्राप्त हैं—पुष्प, केदार, अनन्यदास, मसौद, कुतुब अली आदि कई कवियों ने अपभ्रंश से निकलती हुई प्राचीन हिन्दी में कविता की थी, परन्तु खेद है कि इनमें किसी की भी रचना इस समय उपलब्ध नहीं है। 'खुमानरासो' की रचना ६वीं शताब्दी में लिखे गये एक ग्रंथ के आधार पर की गई थी परन्तु इस मौलिक ग्रंथ का भी अभी कुछ पता नहीं लग सका है। जैनाचार्य मेरुतुंग के 'प्रबन्धचिंतामणि' नामक ग्रंथ में राजा भोज के चाचा मुंज के कहे हुए दोहे संगृहीत हैं। ये दोहे प्राचीन हिन्दी के बहुत ही पुराने नमूने हैं। इससे स्पष्ट है कि महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी की चढ़ाइयों से बहुत पहले हिन्दी में वह काव्य-शैली प्रचलित थी जिसे वीरगाथा काल में इतना प्राधान्य प्राप्त हुआ। मुंज ने तैलंग देश पर आक्रमण किया तो वहाँ राजा तैलप ने उसे बन्दी बना लिया और रस्सियों से बाँध कर अपने यहाँ ले गया। वहाँ तैलप की बहन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। लगभग इसी प्रकार के वर्णन हमें हिन्दी वीर-गाथाओं में मिलते हैं। वीर रस में शृंगार का पुट भी वैसा ही मिलता है।

चारणों का राजपूत वीरकाव्य

आदि युग

मुसलमानों के आक्रमणों पर चारणों को वीररचनाएं करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इस समय देश की परिस्थिति बिगड़ी हुई थी। राजस्थान में राजनैतिक अशान्ति और विप्लव मचा था। राष्ट्र की एकता नष्ट और काव्य का ह्रास हो चुकी थी और देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। ये राज्य अपनी लघुता में भी अहंकार से अभिभूत थे, चाहे गृह-युद्धों ने इन्हें भीतर से खोखला कर रखा था। मुसलमान भारत की स्वतन्त्रता छीनने पश्चिम-द्वार पर खड़े थे और ये बेसुध आराम में मूँछें ऐंठ रहे थे।

राजनैतिक अशान्ति का प्रभाव साहित्यिक विचार-धारा पर पड़ना अनिवार्य था। जो अनुभव में आ रहा था वही वाणी द्वारा व्यक्त किया जा रहा था। इस

काल में युद्ध, विप्लव, मारकाट और वीरता का विशेष वर्णन मिलना स्वाभाविक ही है। हर एक राजदरबार में चारण अथवा भाट होते थे। अपने आश्रयदाताओं का यशोगान करना और उन्हें काल्पनिक महत्ता के स्वप्न दिखाना इन चारणों का मुख्य कर्तव्य था। यही इनका पेशा था। हिन्दी साहित्य के आदि काल में इन्हीं चारणों की रचनाएँ अधिक और महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं के कारण इस काल को चारण काल कहते हैं। इन्हों ने वीरों की गाथाएँ सुना-सुना कर और अपने राजाओं की वीरता का वर्णन कर-करके उन्हें प्रोत्साहित किया। इस कारण से इस युग का नाम वीरगाथा-काल भी है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'वीरगाथा-काल' नाम बड़ा उपयुक्त है।

प्रतिनिधि रचनाएँ

'चारण-काल' अथवा 'वीरगाथा-काल' संवत् ११०० से १४०० तक माना जाता है यद्यपि इससे पहिले और इसके बाद भी इस शैली की रचनाएँ होती रही हैं। अधिकतर इनमें प्रबन्ध-काव्य ही हैं, परन्तु स्वर्गीय राय बहादुर श्यामसुन्दरदास जी का अनुमान है कि वीर गीतों की उस समय अधिकता रही होगी। विप्लव और अशांति के उस युग में लम्बे-लम्बे चरित-काव्यों का लिखा जाना न तो सम्भव ही था और न स्वाभाविक ही। वीरों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने में तथा समय-असमय राजाओं के गुण-गान करने में फुटकर पद्यों की उपयोगिता अधिक होती है। राजा किसी लड़ाई पर चलते तो चारण लोग वीर-रस-सिक्त एक छप्पय कह देते, राजा दरबार लगा कर बैठते तो ये किसी विषय पर दोहे गढ़ कर सुनाने लगते, राजा किसी सुन्दरी पर रीझते तो ये एक उक्ति सुना देते। 'आल्ह' गीत इसी प्रकार के हैं। श्रीधर के 'रणमल्ल छंद' का उल्लेख भी इन्हीं में किया जा सकता है। 'बीसलदेव रासो' में भी गीत अधिक हैं।

रासो शब्द को तासी ने 'राजसूय' से और रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसायण' से व्युत्पन्न माना है। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति 'रास' शब्द से हुई है। हिन्दी के उत्थान से पहले भी रास ग्रंथों का उल्लेख मिलता है।

प्रबन्ध-काव्यों में दलपति विजय का 'खुमान रासो', नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो', चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', भट्ट केदार का 'जयचन्द प्रकाश', मधुकर का 'जयमयंक जसचन्द्रिका', शारंगधर का 'हम्मीर काव्य', और नल्ल सिंह का 'विजयपाल रासो' उल्लेखनीय हैं। खेद है कि राजस्थान में प्राचीन पुस्तकों की पूरी-पूरी खोज नहीं की गई, वरना वीर-कविता के भिन्न-भिन्न प्रकारों की पर्याप्त सामग्री मिल जाने पर हम इस युग की शैलियों का ठीक-ठीक विवरण दे सकते। हमारे सामने जो वीर-साहित्य इस समय का है, उसी के आधार पर कुछ विशेषताओं का विवरण दिया जा सकेगा।

काव्यशैली

वीर-काव्य के उक्त ग्रंथ हैं तो बड़े-बड़े, परन्तु महाकाव्य होने का अधिकार सभी को प्राप्त नहीं हो सका। महाकाव्य में एक ही युद्ध का वर्णन होना चाहिये और घटनाओं में एकरूपता रहनी चाहिए। परन्तु, 'पृथ्वीराज रासो' अथवा किसी अन्य रचना में न तो एक प्रधान युद्ध है और न ही वर्णित युद्धों का परिणाम व्यापक है। घटनाएँ एक दूसरे से असम्बद्ध हैं, कथानक शिथिल है और प्रायः इनका कोई आदर्श नहीं। महाकाव्य में जातीय चित्तवृत्तियों का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है, पर इन वीर-काव्यों में न तो वह व्यापकता है न गम्भीरता। ग्रंथों में तलवारों की झन-झनाहट तो है, पर राष्ट्रीय भावना नहीं। इनमें सामाजिक 'शिव' का अभाव है। अधिकांश कवियों को यह चिंता नहीं थी कि विदेशी आक्रमणों से समाज की रक्षा कैसे हो अथवा देश-प्रेम की भावना जनता में कैसे जागृत की जाय। उनका उद्देश्य था आश्रयदाताओं की प्रशंसा-द्वारा स्वार्थसाधन। यही कारण है कि जयचन्द जैसे राजाओं की भी काल्पनिक वीरगाथाएँ गढ़ने वाले चारण तो उठे पर सच्चे वीरों की पवित्र जीवनियाँ सुनाने वाले कवि नहीं जन्मे। 'इन रचनाओं को वीराभास-काव्य कहना ही उचित है'—विशुद्ध वीरकाव्य नहीं।

हमें तो इन रचनाओं के कवित्व पर भी सन्देह होता है। जो कवि अपने अधिपतियों को रिझाने ही के लिए कविता करते थे, उनके हृदय में सच्चे भावों का उद्गम नहीं हो सकता था। अनुभूति और सच्चाई के बिना उच्च कोटि के कवित्व का स्फुरण हो भी कैसे सकता था? जब केवल प्रशंसा करना ही उद्देश्य था तो इसमें अनुभूति अथवा प्रतिभा का क्या स्थान होता? साहित्यिक 'सुन्दर' बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

कथाओं में वर्णनात्मकता ही अधिक है—वस्तुओं की लम्बी चौड़ी सूची तथा सेना का वर्णन [illegible] से अधिक होता है। कवि का एक मात्र उद्देश्य अपने नायक की शक्ति और वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण परिचय देना है। उसी के ऐश्वर्य और युद्धकौशल का वर्णन करना, उसी की श्रेष्ठता और विपक्षी की हीनता सिद्ध करना कवि का मुख्य धर्म रहा है और कहीं-कहीं तो वर्णन भी नीरस हो गया है।

'सत्य' भी कहीं-कहीं ढूंढने पर ही मिलता है। प्रायः वीरगाथाओं में ऐतिहासिकता का अभाव खटकता है। अधिकांश आधार अनुश्रुतिपूर्ण है। बहुत सी घटनाएँ इतिहास से प्रमाणित नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, जहाँ युद्ध के कारण केवल राजनैतिक होते थे, उनका उल्लेख न करके कोई रूपवती स्त्री ही कारण कल्पित कर ली जाती थी।

इन त्रुटियों अथवा शैली के दोषों के रहते हुए भी, हमें यह न भूलना चाहिये

कि कुछ एक रचनाओं में ऐसे गुण भी हैं जिनके कारण हिन्दी साहित्य में इन कृतियों को अधिकृत स्थान मिला हुआ है। इस काल के कवियों का युद्ध-वर्णन अत्यन्त मार्मिक तथा सजीव है और वीर रस का सफल परिपाक हुआ है। वीर भावों से भरी हिन्दी के आदि युग की यह कविता सारे हिन्दी साहित्य में समता नहीं रखती। दोनों ओर की सेनाओं के जम जाने पर युद्ध के सामान तथा आक्रमण की रीतियों का जैसा विशद वर्णन इस युग के कवियों ने किया है, वैसा पीछे के कवियों में नहीं मिलता। इन चारणों की वचनावली में शस्त्रों की झन्कार स्पष्ट सुनाई पड़ती है और इनके युद्ध-वर्णन के सजीव चित्र अब भी पाठकों के हृदय में उल्लास पैदा करते हैं।

उदाहरण—

गही तेग चहुवान हिंदवान रानें,
गजं जूय परिकोप केहरि समानें।
करे रुण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे,
बरं सूर सामन्त हुकि गजं भारे।
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मदं तज्जिय लाज ऊमंग मग्गे।
दौरे गजं अन्ध चहुआन केरो,
करीय गिरद्दं चिहो चक्क फेरो।
गिरद्दं उड़ी भान अन्धार रैनें,
गई सूधि सुज्झे नहीं मज्झि नैनें।
सिरं नाय कम्मान पृथिराज राजें,
पकरिये साहि जिमि कुलिंग बाजं।
लै चल्यो सितावी करी फारि फौजं,
परे मीर से पञ्च तहँ खेत चौजं।
रजपुत पच्चास जुज्झे अमोरं,
बजं जीत के नद्द नीसान घोरं॥

(चन्दबरदाई)

यद्यपि जीवन की व्यापक अभिव्यंजना तत्कालीन कविता में नहीं पाई जाती, तथापि वीरों के चरित्र-चित्रण अथवा घटना के कलात्मक वर्णन में अनेक रमणीय सूक्तियाँ अथवा उद्भावनाएँ जो इस काल की कविता में मिलती हैं वे किसी अन्य साहित्य में दुर्लभ हैं। बात यह है कि ये कवि समय पड़ने पर स्वयं भी हाथ में तलवार लेकर रणक्षेत्र में कूद पड़ते थे। ये स्वयं योद्धा थे। इन योद्धा-कवियों की रचनाओं में जहाँ-तहाँ सच्चे राष्ट्रीय भाव भी दिखाई

पढ़ते हैं। जिस देशानुराग से प्रेरित होकर वे आततायियों का सामना करते थे, उसी देशानुराग को वे अपनी कृतियों में भी प्रगट करते रहे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी यह राष्ट्रीयता संकीर्ण एवं साम्प्रदायिकता-मूलक ही बनी रही।

चारणों की कविता का एक और गुण है इसकी अनेकरसता। वीररस का प्राधान्य होते हुए भी 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो', आदि वीर काव्यों में जगह-जगह शृंगार-रस मिलता है। कई बार ऐसा आभास होने लगता है कि ये ग्रंथ शृंगार-प्रधान ही हैं। वास्तव में प्रेम-गाथाओं का मिश्रण वीरों की वीरता के प्रदर्शन का साधनमात्र है। शृंगार कभी तो वीररस का उत्पादक और कभी-कभी उसका सहकारी बन कर आया है परन्तु रहा है सदा गौण रूप में ही। प्रायः राजकुमारियों के स्वयंवरों का वर्णन करते हुए ही कवि शृंगार का अवसर निकालते रहे हैं। इन स्वयंवरों को युद्ध का कारण बना कर वीरता का प्रदर्शन करना ही कवि का उद्देश्य रहा है। वीरों के हृदय में उत्साह तो सदा रहता ही है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि वे युद्ध ही करते रहते हों। युद्ध से विरत होकर वे आमोद-प्रमोद के समय शृंगारी कविता से अपना मनोरंजन अवश्य करते होंगे।

इस काल के कवि शृंगार-रस में ऐसे ही सफल रहे जैसे वीररस में, किन्तु उनका काव्य वीररस-प्रधान ही है। 'बीसलदेव रासो' में 'पृथ्वीराज रासो' की अपेक्षा शृंगार की व्यंजना अधिक सरस तथा मधुर है। 'आल्हखण्ड' में भी प्रेम-गाथा वीर कृत्यों के साथ-साथ चलती है 'आल्हखण्ड' में महोबा के वीर भ्राताओं की लगभग बावन लड़ाइयों और अनेक विवाहों का वर्णन है। उन्होंने जहाँ युद्धों में सफलता प्राप्त की वहाँ राजकन्याओं का अपहरण भी किया। ऐसी घटनाओं का वर्णन करने में कवि ने शृंगाररस का अच्छा अवसर पाया है।

वीरगाथाओं में अन्य रस भी बराबर मिलते हैं। विरह-वर्णन में तथा शत्रुओं की मृत्यु पर शत्रुओं की स्त्रियों के विलाप में करुण-रस व्याप्त रहा है। युद्धवर्णन में हम रौद्र और बीभत्स रस भी पाते हैं। हास्य और शान्त रस प्रायः नहीं मिलता। हाँ, चन्द ने अपनी कृति में स्तुतियां कही हैं जिन में शान्त रस है। अन्य चारण कवियों ने प्रारम्भिक मंगलाचरण के अतिरिक्त इस प्रकार की स्तुतियां नहीं लिखीं।

युद्ध और विवाह के अतिरिक्त मृगया, सवारी, राज्याभिषेक, नगरादि आदि विषयों के विवरण भी बहुत मनोहर और सजीव हैं। प्रकृति पर भी बड़े उत्कृष्ट और सरस वर्णन मिलते हैं—वन, उपवन, वर्षा, बसन्त, शरद्, वर्षा, आदि का वर्णन अच्छी रीति से किया गया है।

काव्य में ऐतिहासिकता की खोज करना हमारे विचार में ठीक नहीं है। चारणों की कविता में काव्योपयुक्त कल्पना का आधिक्य है और कहीं कल्पना-प्रसूत वृत्तान्त बड़े रंगीले और मनोरंजक भी हैं।

वीरगाथाओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा न थी। साहित्यिक गौरव के लिए कविगण प्राचीन भाषा का प्रयोग करना अच्छा समझते थे। इसी काल में खुसरो ने अपनी कृतियों में बोलचाल की भाषा के पश्चिमी

प्रक्रिया

रूप और विद्यापति ने पूर्वी रूप का प्रयोग किया, परन्तु चारणों ने हिन्दी के प्राचीन रूप ही को उपयुक्त समझा। वीरोल्लासमयी कविता और ओजपूर्ण भावों के लिए जिस प्रकार के कर्कश और सानुप्रास शब्दों की आवश्यकता थी ऐसे शब्दों की प्राचीन भाषा में प्रचुरता थी।

इस प्रारम्भिक हिन्दी को, जिस में वीररसात्मक काव्य-रचना के उपयुक्त परुषता विशेष रूप में थी और व्याकरण तथा छन्द शास्त्र के अनुशासन का अभाव था, 'डिंगल' कहते हैं। डिंगल का अर्थ है लम्बी-चौड़ी बात (डिम-गल), अथवा ऊंचे स्वर में पढ़ने योग्य भाषा। शक्तिशाली शब्दों के कारण यह नाम उपयुक्त ही है। इसके उल्टी 'पिंगल' साहित्यिक भाषा थी। 'पिंगला' का अर्थ लूली लगड़ी दोनों हो सकता है—इसलिए कि यह मन्द स्वर में बोली जाने वाली थी। व्रज-भाषा है भी कोमल और सरस। इसमें माधुर्य एवं प्रसाद अधिक है। 'पिंगल' का सांकेतिक अर्थ छन्द शास्त्र भी है। तत्कालीन व्रजभाषा में छन्द और व्याकरण का अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण था। हो सकता है कि 'पिंगल' के साथ जोड़ मिलाने के लिए उपहास के हेतु राजस्थान की अनियमित तथा कर्कश भाषा को 'डिंगल' कहा गया हो। कुछ लोगों का मत है कि ऊबड़ खाबड़ और असंस्कृत तथा सानु-प्रास पदावली के कारण डमरू (डिम-डिम) की ध्वनि से उस भाषा की समता ही 'डिंगल' नामकरण का कारण है। कोई विद्वान 'डींग' शब्द से 'डिंगल' का सम्बन्ध बतलाते हैं। इसमें डींगों की अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती थी। ये सब निर्वचन ठीक ही जान पड़ते हैं। डिंगल बर्बरा, अव्यवस्थित, सानुप्रास और डींग-भरी भाषा है।

अब तक अपभ्रंश भाषाओं का जितना साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि डिंगल और अपभ्रंश में अन्तर कम और एकरूपता बहुत अधिक है और कुछ उदाहरण तो ऐसे हैं कि जिन्हें अपभ्रंश भी कहते हैं और डिंगल भी। डिंगल में अनुस्वारों की भरमार है—दंडं, निरंदं, गुरेसं, नरेसं, तुसारं, मार, आदि शब्द 'पृथ्वीराज रासो' में बहुत ही अधिक हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द आए तो हैं पर अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्दों का फिर भी आधिक्य ही है। जैसे-जैसे हिन्दी का विकास होता गया, वह अपभ्रंश के बंधनों से छूटती गई

और संस्कृत के शब्दों को अपनाती गई। धार्मिक काल में आकर भाषा में यह परिवर्तन होने लगा और साथ ही साहित्य में जनसाधारण की भाषा को स्थान मिलने लगा।

इस युग की भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के अतिरिक्त अरबी, फारसी और राजस्थानी भाषाओं का विशेष प्रयोग हुआ है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी पाये जाते हैं। अरबी-फारसी के शब्द प्रायः विकृत रूप में आते हैं, जैसे कागज, नेजा, पातिसाहि, पीरोज, नीसान, साहाब इत्यादि।

चारण काव्य में अलंकारों का प्रदर्शन कम देखा जाता है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि का समावेश यथास्थान अच्छी प्रकार किया गया है। सब से अधिक प्रयोग शब्दानुप्रास का हुआ है जिसे वयणसगाई कहा गया है। इस तरह भाषा को सजाने तथा आलंकारिक उक्तियों द्वारा भावों को चमत्कारपूर्ण बनाने का प्रयत्न 'पृथ्वीराज रासो' में जितना दीख पड़ता है, अन्य ग्रंथों में उतना नहीं।

वीर-काव्य विविध छंदों में लिखे गये हैं। दोहा (दूहा), पाधड़ी, कवित्त और छप्पय को विशेष आदर मिला है। इन छंदों में प्रवाह और ओज अधिक रहता है। कवित्त में वीर-रस की भावना को समुचित आश्रय मिलता है। दूहों का व्यवहार प्राचीन परंपरा से लिया गया है। इनके अतिरिक्त मन्दाक्रान्ता, भुजग-प्रयात, तोमर आदि छंदों का प्रयोग भी हुआ है। फुटकल रचनाओं में 'गीत' छंद प्रयुक्त हुए हैं। 'रघुवर-जस-प्रकास' में ८५ प्रकार के गीतों का उल्लेख मिलता है, इन में सैणोर, वेलियो, सोहणो, जागड़ो, सुपंखड़ो, चोटीबंध, पालवणी आदि गीत अधिक प्रचलित रहे हैं। इस प्रकार वीर कवियों ने संस्कृत, प्राकृत और अप-भ्रंश की पद्धतियों को चलाये रखा है। गाथा कहने से ही प्राकृत-काव्य का बोध होता है और दूहा अपभ्रंश काव्य का विशेष गुण है। इन दोनों शैलियों के सम्मि-श्रण से तथा वीररसोचित नवीन पद्धतियों के प्रयोग से वीर-गाथा-साहित्य का निर्माण हुआ है।

इस काल के प्रायः सभी ग्रंथों में प्रक्षिप्त अंश बहुत हैं जिससे 'पृथ्वीराज रासो' और 'आल्हखंड' का कलेवर तो इतना बढ़ गया है कि अनेक विद्वानों ने

कलेवर

इन्हें किसी एक कवि की कृति मानने से इन्कार कर दिया है। यह तो स्पष्ट है कि वर्तमान 'पृथ्वीराज रासो' और 'आल्हखंड' में चंद और जगनिक की रचना नाम-मात्र को भी नहीं रह गई है। खोज और अनुसंधान करके इनके परिशोधित और प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्वानों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है।

'पृथ्वीराज रासो' ढाई हजार पृष्ठों का ग्रंथ है। इसमें ६९ समय हैं। प्रत्येक 'समय' किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। प्रत्येक घटना का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। पुराणों की शैली पर कवि ने अपनी स्त्री गौरी को सारी कथा सुनाई है। छंदों का कोई विशेष क्रम नहीं है। दोहे, कवित्त, छप्पय, तोमर, गाहा, तोटक तथा अन्य छंद किसी निश्चित ढंग से नहीं आते, न ही उनकी अपनी-अपनी संख्या नियत है। कुल १ लाख के लगभग छंद हैं। 'आल्हा-खंड' कोई १००० पृष्ठों का ग्रंथ है। इसमें २९ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में किसी लड़ाई, विवाह अथवा अन्य घटना का वर्णन है। अध्याय के आरम्भ में, गणेश, नारायण, राम, हनुमान, भवानी, जगदम्बा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि देवी-देवताओं की वंदना करके कथा सुनाई गई है। प्राय दोहा अथवा सवैया से अध्याय का आरंभ करके आल्ह-छंदों में सारी कथा कही गई है।

'बीसलदेव रासो' में चार खंड हैं। इनमें क्रमशः बीसलदेव के विवाह, उड़ीसा के प्रस्थान, राजमति के वियोग और बीसलदेव तथा राजमती के पुनर्मिलन का वर्णन है। कथा एक ही छंद में लिखी गई है। सारा काव्य लगभग १९०० करणों में समाप्त हुआ है। पृष्ठ संख्या १०० से कुछ ऊपर है।

वीरगाथाकाल के अन्य ग्रंथों का कलेवर भी अपनी शैली का आप ही उदाहरण है। गठन की दृष्टि से कोई एक रचना दूसरी से नहीं मिलती। इस प्रकार चाहे वस्तु-वर्णन में अथवा काव्य-शैली में बहुत अंतर नहीं है परन्तु इन वीर काव्यों की बाह्य रूपरेखा एक दूसरे से भिन्न अवश्य है।

वीर-कालीन कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

गाढ़ अजमेरां उत्तिम ठाई। राज करई बीसल-दे राई॥
चउरास्या जे करई भति घणां। राजकुंवर आव्या सब कोई॥
भीतर के राजा तणों। मान अधिक दीधो सब कोई॥
सोलह बीसल-दे-परधान। राय-कुंवर आयो बहुमान॥
राजकुंवर तेड़ावियो। पाट-पटोला कुसह वधाई॥
दीधो सोनो सोनहो। चोत्रफोट दीधो तिण ठाई॥
राय कुंवर धर्यो सिर मौड़। बारा गढ़ सुदुरग चितौड़॥
राइ भतीजो थापीयो। गढ़ अजमेरो उत्तिम ठाय॥
कर जोड़े 'नरपति' कहई। राज करइ तिहां बीसल-राय॥
(बीसलदेव रासो)

साहित्यिक दृष्टि से नरपति नाल्ह के 'बीसलदेव रासो' का मूल्य बहुत अधिक

नहीं है। कविता के किसी गुण की उपलब्धि इसमें कम ही होती है। छंद शिथिल, वर्णनशैली दूषित और रसाभिव्यक्ति निर्बल और असफल ही है। विचारों की कोई शृंखला नहीं, वर्ण्य विषय में किसी प्रकार की रोचकता नहीं। हाँ, भाव अवश्य कोमल है। अन्य डिंगल काव्यों की कर्कशता इसमें नहीं है। कवि ने युद्ध-वर्णन नहीं किया, केवल बीसलदेव और राजमती के विवाह, और पुनर्मिलन की कथा कही है। अलबत्तः भाषा-विकास की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्त्व का है। पुरानी हिन्दी की बनावट का अध्ययन करने वालों के लिए इसमें बहुत सामग्री है।

(२)

गुस्सा होइ कै पृथ्वीराज तब । तुरतै हुकुम दियो करवाय ॥
बत्ती दै देउ सब तोपन में । इन पाजिन को देउ उड़ाय ॥
झुकै खलासी तब तोपन पर । तुरतै बत्ती दई लगाय ॥
दगी सलामी दोनों दल में । रण में होन लाग घमसान ॥
अररर अररर गोला छूटैं । कड़ कड़ करैं अगिनियां बान ॥
रिमझिम रिमझिम गोली बरसै । सनसन परी तीर की मार ॥
तड़तड़ तड़तड़ तासे बाजे । जंगी ढोल रहे महनाय ॥
गड्ड तोरही औ रणसिंहा । जहँ जहँ दमन बैनि घहराय ॥
तीर कमनियाँ की गुनतानी । कारो नागिन सो सन्नाय ॥
जैसे साँप बाँबि में जावै । त्यों ज्वानन के तीर समाय ॥
दोनों फौजन के संगम में । धन्धाधुंध तोप की मार ॥
लागै गोला ज्यहि हाथी के । दल में डौंकि डौंकि रहि जाय ॥
गोला लागै जौन ऊँट के । दल में गिरे चकत्ता खाय ॥
लागै गोला जिन घोड़न के । चारौ सुम्म गर्द होई जाय ॥
गोला लागै जिन क्षत्रिन के । तिन की तुचा सरग मँडराय ॥

(आल्हखंड)

जगनिक-कृत 'आल्हखंड' का महत्त्व भाषातत्त्व की दृष्टि से इतना अधिक नहीं जितना इसके वीर-रस-सिक्त वर्णनों के कारण है। मौखिक साहित्य की भाषा सुरक्षित नहीं रह सकती। 'आल्हखंड' की भाषा अब बारहवीं शताब्दी की न होकर आधुनिक कन्नौजी से अधिक मिलती जुलती है। वीर-काव्यों में से 'आल्हखंड' की भाषा में सबसे अधिक परिवर्तन हुए हैं—यह भी इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। ऐसा ज्ञात होता है कि कथानकों में भी उलट-फेर होते रहे हैं। अनेक वर्णन प्रक्षिप्त, असंगत और उखड़े-पुखड़े से हैं।

(३)

मचिय मत्त मायद्द रोड़ । भर हरि दंतं सुम्भर पौढ़ ॥

हक्कं सूर अगार सार। घर घर परं तुट्टिय धार ॥
परि लर परं उट्ठं एक। लम्मी उकसि झारं नेक ॥
पट्ट पट्टो आवध सार। वाहं वीर वारं वार ॥
अन्यो अन्य लट्टं काम। आवध ग्रहं अप्पन ताम ॥
हं हं करं इष्ट संभारि। उठ्ठं विरद धारी झारि ॥
अदंभुत्त घोर मंपान। मच्चिय कंक विषम कृपान ॥
नर वर मरय हुंस रंभान। उट्टिय नेह ग्रेहंति जानि ॥
तुट्टिय सेन पल तिष तोर। इन परि जुद्ध जुट्टिय घोर ॥
तरं सांई उप्पर भ्रत्य। सेवक उद्ध सांई किरत ॥
चौसठि खंभ लोथि पयार। भर परि धरह लुम्भिय हार ॥
उप्पर भिरं सामत सूर। मत्तो जुद्ध दून करूर ॥
ठेलं एक एकं वीर। गज्जं दोन जंपं मीर ॥

(पृथ्वीराज रासो)

चंद बरदाई ने अतिशयोक्ति से अवश्य काम लिया है अनेक घटनाएँ अप्रमाणित और कल्पित हैं। फिर भी भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की जोड़ का ग्रंथ डिंगल-साहित्य में और कोई नहीं है। यह वीरगाथा-काल की सब से बड़ी और उत्कृष्ट रचना है। इसमें वीर रस का परिपाक अत्यंत सफल हुआ है। शृंगार रस का परिपाक भी बहुत अच्छा हुआ है। स्थान-स्थान पर आने वाले पौराणिक वर्णन बड़े मनोरंजक हैं और सूक्तियों ने तो इस ग्रंथ की रुचिरता को द्विगुणित ही कर दिया है। भाषा का सौष्ठव और छंदों की विविधता भी अनुपम है।

हिन्दू वीरकाव्य

जब भारतीय स्वतन्त्रता का सूर्य अस्त हो गया और हिन्दू नृपतियों का वैभव नष्ट हो चला तो अब हिन्दी कवि किस की वीरता का गुण गान करता? उसने लौकिक वैभव से निराश होकर अलौकिक ऐश्वर्य का चिन्तन

दूसरा युग

वीर-काव्य का प्रारम्भ किया। उसको अब सगुण राम और कृष्ण का आश्रय ढूंढना पड़ा। इसका यह अर्थ नहीं कि वीर-काव्य की रचना ही बन्द हो गई—कुछ कवि अपने लौकिक आश्रयदाताओं की स्तुति में, उनके शौर्य तथा प्रताप आदि के प्रसङ्ग में रुचिपालनार्थ रचना करते रहे। इस प्रकार के कई काव्य-ग्रंथ प्रस्तुत किए गए पर केवल प्रथापालनार्थ होने के कारण ध्यान देने योग्य नहीं बन पड़े।

भक्ति-काव्य में शान्तरस की प्रधानता रहते हुए भी, वीररसपूर्ण वर्णन कई

स्थलों पर बिखरे पाये जाते हैं। 'रामचरितमानस' में राम-रावण-युद्ध में राम के रोष का वर्णन देखिए—

> भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
> कोदंडधुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।
> मन्दोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
> चिक्करहिं दिग्गज दसन नहि महि देखि कौतुक सुर हँसे।

राम और खरदूषण के युद्ध का वर्णन भी वीर रस पूर्ण है।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में देश में सर्वथा शान्ति रही। उस समय हिन्दू और विशेषतया राजपूत पतनोन्मुख थे। गोस्वामी तुलसीदास ने मन्थरा के मुँह से 'कोउ नृप होय हमें का हानी' कहलाकर उस समय की जनता के विचारों की सच्ची अभिव्यंजना की है। भारतीय जनता मुगलों की कूटनीति में फँस कर अपने आपको भूलती जा रही थी। उसे अपनी स्थिति पर सतोष था। यही कारण है कि महाराणा प्रताप जैसे सच्चे वीर का स्मारक अब भी कोई न प्रस्तुत कर सका। उनकी एक भी उल्लेखनीय गाथा नहीं लिखी गई।

औरंगजेब के राज्यकाल में मुगल-साम्राज्य शनैः-शनैः आभाहीन हो रहा था। उसके कठोर तथा नृशंस शासन से हिन्दू जाति चौंक उठी थी। वह अधिक समय तक सोती न रह सकी। वह सब कुछ सह सकती थी पर धर्म पर होने वाले अत्याचारों को सह लेना उसकी शक्ति से बाहर था। इसी काल में वीर-कवियों का दूसरी बार प्रादुर्भाव हुआ। महान् देश की आत्मा क्षुब्ध हो उठी। शिवाजी तथा छत्रसाल बुंदेला भारत की पीड़ित आत्मा के विद्रोह का प्रतीक बन कर खड़े हुए और इसी विद्रोह की प्रतिध्वनि को भूषण ने अपनी वाणी में चिरन्तन रूप प्रदान किया। भूषण इस काल के प्रतिनिधि वीरकवि हैं। यह आग सुलग तो उनसे पहले भी रही थी, पर उन्होंने इस में आज्याहुति देकर और भी भड़का दिया। परन्तु यह आग कुछ समय तक प्रचंड रह कर धीरे धीरे मंद पड़ती गई।

इस काल की मुख्य रचनाएँ ये हैं—

केशवदास (सं० १६६७) के 'रतन बावनी' और 'वीरसिंहदेव चरित'; महाराज जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह की वीरता की प्रशंसा में बनवारी (संवत् १६९०) का काव्य; महोबा राजा छत्रसिंह के पढ़ोते

मुख्य रचनाएँ रायरतन (संवत् १७१०) की स्तुति में किसी अज्ञात कवि का 'रायरतन रासा'; मेवाड़ के राणा राजसिंह पर किसी चारण कवि का 'राजप्रकाश', और उनके राजकवि मान (संवत् १७२०) का 'राजदेव विलास'; तथा सदाशिव (संवत् १७२५) का 'राजरत्नाकर'; राणा राजसिंह के उत्तराधिकारी राणा जयसिंह के आश्रित कवियों का लिखा हुआ 'जयदेव विलास'

(संवत् १७५०); प्रसिद्ध कवि भूषण त्रिपाठी (१७५०–६०) के रचे हुए 'शिवराज भूषण' तथा 'शिवा बावनी', सिक्खों के अंतिम गुरु गोविन्दसिंह (संवत् १७६०) का 'चण्डी चरित्र'; बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल के समकालीन लालकवि (संवत् १७६४) का प्रसिद्ध ग्रंथ 'छत्रप्रकाश'; भरतपुर के महाराज सुजानसिंह पर सूदन (संवत् १८१०) का 'सुजान चरित'; जोधपुर के महाराजा विजयसिंह की वीरता पर 'विजय-विलास' (संवत् १८३०), दरभंगा के महाराजा नरेन्द्र सिंह की विजय के उपलक्ष में लालझा (संवत् १८४०) का 'कन्दर्पीघाट लड़ाई'; पद्माकर (संवत् १८५०) की कृति 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' जिस में अवध सेना के अध्यक्ष गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर की विजयों का वर्णन है; जोधराज (संवत् १८७५) का 'हम्मीर रासो' जिसमें रणथंभोर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव का चरित्र है, और चन्द्रशेखर वाजपेयी (संवत् १९०२) का 'हम्मीर हठ'।

इनमें केशव, मान, भूषण, लाल कवि, सूदन, पद्माकर, जोधराज और चन्द्रशेखर की कृतियां अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के आधार पर इस काल की विशेषताओं का निरूपण किया जा रहा है। इस काल की कविताओं का विशेष गुण है ऐतिहासिकता अथवा सत्यप्रियता। काल्पनिक घटनाओं का वर्णन मिलता अवश्य है, परन्तु भूषण, लाल और सूदन की तथ्यप्रियता विशेषतः प्रशंसनीय है। शिवाजी, छत्रसाल, कुमाऊँ नरेश, सुजानसिंह एवं अन्य वीरनायकों से इन्हों ने स्वतन्त्रता का व्यवहार किया और उनकी त्रुटियों तक को प्रकट कर दिया। इनकी वर्णित की गई सब घटनाएं सच्ची और ब्योरे ठीक हैं। ख्याली और भड़कीले वर्णन इन्होंने बहुत कम प्रस्तुत किये हैं। अन्य कवियों ने कवित्व लाने के लिए अथवा प्राचीन परंपरा के अनुसार वीर-रस में शृंगार का पुट देने के लिए कुछ घटनाओं की कल्पना अवश्य की है। सदाशिव, जोधराज और चन्द्रशेखर ने प्रेम-प्रसंग को युद्ध का कारण बनाकर पुरानी प्रथा का ही अनुसरण किया है।

काव्यशैली

सूदन और एक-आध और कवि के अतिरिक्त किसी ने भी वस्तुओं की लम्बी चौड़ी सूचियां देने की प्रणाली का अवलम्बन नहीं किया। सूदन के वस्तु-परिगणन के कारण तो प्रबन्ध के कथा-प्रवाह में बहुत ही बाधा पड़ती है। घोड़ों की जातियों के नाम, अस्त्रों-शस्त्रों के बड़े-बड़े ब्योरे, भिन्न-भिन्न जातियों की सूचियां, व्यक्तियों के नाम अथवा इस प्रकार के दूसरे विवरण बहुत ही अरुचिकर हो गये हैं।

हिन्दी के इतिहासकारों में एक वर्ग ऐसा भी है जो कहता है कि इस काल में भी वही सर्वांगीण जातीयता के भाव पाये जाते हैं जो रासोकाल में थे। वैसे ही

छोटे-छोटे राजाओं को युद्ध करने का प्रोत्साहन देने, विपक्षी (हिन्दू अथवा मुसलमान) से अपने चरित-नायक की श्रेष्ठता दिखाने, उनकी वीरता के अत्युक्तिपूर्ण गान गाने और उग्र उत्साह-व्यंजक उक्तियों के द्वारा वीरता के नारे लगाने की शैलियाँ इन काव्य-ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती हैं। शिवाजी और छत्रसाल के चरित्रों में हिन्दुत्व की भावना अधिक चमक उठी है। भूषण और लाल ने इस भावना की अभिव्यक्ति विशद रूप में की हैं। इनकी कविता के नायक न तो शिवाजी ही हैं न छत्रसाल, न जयसिंह हैं न अवधूतसिंह और न सुजानसिंह हैं न शंभाजी ही। इनके सच्चे नायक हैं राष्ट्रधर्मी हिन्दू। पर ध्यान रहे उस समय की राष्ट्रीयता जातीयता का ही दूसरा नाम था।

इस युग की प्रायः रचनाओं में तुर्कों के युद्धों का वर्णन है। याद रहे कि तुर्क का अर्थ विदेशी मुसलमान रहा है जो भारतीय संस्कृति, वेश-भूषा और देश का शत्रु रहा। भारत में रह कर भी तुर्क अपने को भारतीयता से पृथक मानता रहा। ऐसे ही अभारतीय मुसलमान के विरुद्ध इस काल के कवियों की लेखनी तत्पर रही। अतः इन कवियों की राष्ट्रीयता को संकुचित कहना ठीक न होगा।

प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य इस युग में प्राप्त होते हैं। प्रबन्धों में युद्धों अथवा प्रेम-गाथाओं का विवरण मिलता है और मुक्तक कविताओं में नायक की विजयों, शक्तियों और गुणावलियों की स्तुति तथा शत्रु की भीरुता, पराजय और हीनता का वर्णन होता है।

ये सब ग्रंथ रीतिकाल में लिखे गये थे। समय की छाप इन पर स्पष्ट दीख पड़ती है। अधिकतर रचनाएँ रीति बद्ध हैं।

'डिंगल' अथवा राजस्थानी भाषा का व्यवहार हिन्दी साहित्य के आदि युग के साथ ही समाप्त हो गया। वैष्णव कवियों ने ब्रजभाषा का परिमार्जन और संस्कार कर के उसे बहुत ऊंचा उठा दिया। उन्होंने इसके शब्दकोश को इतना समृद्ध बना दिया कि इसमें सब रसों की कविता की जाने लगी। इसमें शान्त और शृंगार रस में तो कविता होती ही

प्रक्रिया

रहती थी, वीर-रस की अभिव्यंजना के लिए भी अब इसमें पर्याप्त शक्ति आ गई थी। इस काल की प्रायः सब वीर-कविता ब्रजभाषा में हुई है। भाव उच्च कोटि के और भाषा ओजपूर्ण रही है। जोधराज ने चंद आदि प्राचीन कवियों की डिंगल भाषा का भी यत्र-तत्र अनुकरण किया है। भूषण ने भी कहीं-कहीं प्राकृत-अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है। बुंदेलखंडी, खड़ी बोली, पंजाबी, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्द भी जगह-जगह मिलते हैं। इस काल के कवियों ने शब्दों की तोड़-मरोड़ मन चाहे ढंग से की है। और भूषण ने तो एक-एक शब्द को कई-कई विकृत रूपों में प्रयोग किया है।

व्रजभाषा का आधिपत्य होने के कारण भाव-व्यंजना अत्यंत विशद हुई है। जिस रस का वर्णन है ठीक उसी के अनुकूल पदविन्यास रखा गया है। शृंगार रस में कोमलकांतपदावली और वीर रस में ओजस्विनी भाषा का बहुत सुन्दर सामञ्जस्य बना रहा है। यह बात चारण काल की कृतियों में नहीं थी।

अधिकतर वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार होने पर भी कुछ एक कवियों ने शब्दवैचित्र्य और चमत्कार की परवाह न करके स्वाभाविक रीति से रचना की। लाल कवि और चन्द्रशेखर ने अपनी रचनाओं में कहीं कृत्रिमता नहीं आने दी।

छंदों में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ। कवित्त और छप्पय की प्रथा को इस काल के कवियों ने सफलतापूर्वक चलाये रखा।

ग्रंथों का अधिकांश कलेवर वैसा ही बना रहा है जैसा वीर-गाथा काल में था। अलबत्तः इसको सजाने के लिए नये नये आभरणों का प्रयोग किया जाने लगा। केशव ने सवाद-शैली द्वारा, और विषयों के उपशीर्षक देकर

कलेवर

बाह्य सौंदर्य को बढ़ाने की चेष्टा की है। मान ने 'राजविलास' ग्रंथ को ८ 'विलासों' में विभक्त किया है, उपशीर्षक नहीं दिये। जोधराज ने बहुत से प्रसंगों के नीचे भिन्न-भिन्न घटनाओं अथवा वर्णनों के शीर्षक दिये हैं, परन्तु कई स्थल पुरानी शैली के अनुसार ऐसे ही चले गये हैं। लाल ने भी अपना 'छत्रप्रकाश' केवल अध्यायों में बाटा है। भूषण की शैली में अपनी ही व्यक्तिगत विशेषता है। यह याद रहे कि 'शिवा बावनी' जिस में ५२ छंद हैं और 'छत्रसाल' जो १० स्फुट छंदों का संग्रह है कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं हैं। सूदन के 'सुजान चरित्र' में सुजानसिंह की सात मुख्य लड़ाईयों का वर्णन है। अध्यायों के नाम ही उन्होंने 'पहला जग', 'दूसरा जग', 'तीसरा जग' इत्यादि रखे हैं, फिर अध्यायों को 'अंकों' में विभक्त किया है। श्रीधर और चन्द्रशेखर की रचनाएँ छोटी हैं। प्रायः सभी कवियों ने ग्रंथों के आरम्भ में देव-स्तुति के छंद लिखे हैं।

छंदों का प्रयोग और क्रम सब का भिन्न-भिन्न है।

रीतिकालीन हिन्दू-भावना-प्रधान वीर कविता के नमूने नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कुमार उवाच—

रतनसेन कह बान सुर सामंत सुनिज्जिय ।
करहु पैज पनधारि मारि सामंतन लिज्जिय ॥
धरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब ।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब ॥
मधुसाह नंद इमि उच्चरइ खंड खंड रिपु दल करहुं ।
रहहुं सुखेत हथियान के मरहुं दल यह प्रन धरहुं ॥

प्रवयत प्रमेज तरंग उतंगह रगहि जे रिपु कट्टि रहे ।।
प्रवगाढ़ सु प्रायुध ऊजीत सुपायक सत्य लिए प्रचुरं ।
चित्रकोटधनी सजि राजसी राणमु मारि उजारिय मालपुरं ।।
प्रति वट्टि प्रवाज भगी दिसि उत्तर पंग पुरंपुर रौरि परी ।
ग्रह कत सु श्रंवक नूर ग्रह ग्रह पंग महा थिति सज्जि पुरी ।।
उडि ग्रम्बर रेनु बहूदल उम्मडि सोधि नदी दह मग्गसरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण मु भारि उजारिय मालपुरं ।।
(मान—राजविलास)

इसमें संदेह नहीं कि मान कवि को शान्त या शृंगार रस में वीररस की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है। मुख्य रूप से औरङ्गजेब और उदयपुर के महाराणा राजसिंह के युद्धों का वर्णन करना ही कवि का प्रयोजन जान पड़ता है। माधुर्य गुण की रक्षा करते हुए इन्होंने वीररस का अच्छा वर्णन किया है। 'राजविलास' में प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर ढंग से किया गया है। अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण और अस्वाभाविक हैं। घोड़ों की जातियों और लूटी हुई सामग्रियों की सूचियाँ यथानुसार गिनाई गई हैं। इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी-मिश्रित व्रजभाषा है, परन्तु इसमें 'डगल' भाषा की दुर्कशता नहीं है। कवि ने टवर्ग और संयुक्ताक्षरों को यथाशक्ति नहीं आने दिया है। इनके पदविन्यास में कोमलता और अनुप्रासों में स्वाभाविता आ गई है। यत्र-तत्र तुकभंग और छंदोभंग दोष अवश्य मिलते हैं।

(४)

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन ।
जेर कीन्हों जोर सों लै हद सब मारे की ।।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब ।
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की ।।
बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे घहरात ।
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की ।।
दूल्हो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे ।
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ।।
(भूषण—शिवाबावनी)

(५)

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो ।
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को ।।

जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत।
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें।
भूषण भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को॥
और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब।
साह को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

(भूषण—छत्रसालदशक)

भूषण बड़े प्रतिभाशाली और वीर कवि थे। उनकी कविता का उद्देश्य था हिन्दुओं को जातीयता का पाठ पढ़ाना। हिन्दू जाति में जीवन और जागृति फूंकने के लिए ही उन्होंने कवित्त लिखे थे। उनकी वाणी में सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर है। इस विषय में वे हिन्दी के सर्वोत्तम कवि माने जा सकते हैं। यों तो इनकी सभी रचनाओं में वीररस का उद्रेक है, वैसे कविता की दृष्टि से 'शिवा-बावनी' सर्वोत्तम रचना है। भूषण में निरंकुशता और उद्दंडता अवश्य है और इनके ग्रंथों में मुसलमानों के विरुद्ध ऐसे उद्गार मिलते हैं जो औचित्य की सीमा लांघ गये हैं, परन्तु उस समय के इतिहास को समझने वाले उन्हें इस विषय में दोषी नहीं कह सकते। भूषण के काव्य की विशेषता है वीरता का आतंक-चित्रण। उनके युद्ध-वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य प्रमाणित होते हैं। उन्होंने अपने वीरों का कीर्तिगान अतिरंजित ढंग से किया है, पर उसमें ओज भरपूर है।

भूषण की भाषा विशेषतया ब्रजभाषा है जिसमें अपभ्रंश, बुन्देलखण्डी और खड़ी बोली के अतिरिक्त अरबी-फारसी के विकृत शब्द भी आते हैं।

(६)

दोहा

है हराल हाड़ा चल्यो, पंरनि साहसमुद्र।
दारा अरु औरंग मढ़े, मनो त्रिपुर अरु रुद्र॥

छन्द

दारा अरु औरंग उमड़े। मनो प्रलै घोर घमंड़े॥
बजे जुद्ध में निविड़ नगारे। दुहूं दिसि बजे बराबे भारे॥
गुर गंभीर घोर धुनि छाई। फटि ब्रह्मांड परै जनि भाई॥
त्यों बोले उमराउनि हल्ला। जम के भये कटीले कल्ला॥
हय गय रथ पंदल रन जूटे। छाइन सहित कवच परफूटे॥
चंपति को जब बजी बजूलं। मसहारिन की मेटी भूलं॥
दारासाह बजत रन दाग्यो। बजत पादसाही को भाग्यो॥

हाड़ा सारा धार में पैठ्यो । सूरज भेद बिमाननि बैठ्यो ।।
(लाल—छत्र-प्रकाश)

'छत्र-प्रकाश' में दोहा-चौपाई का ही प्रयोग हुआ है। लाल ने छत्रसाल का चरित्र बड़े भावपूर्ण, सरल और स्वाभाविक ढंग से किया है। बहुत सी घटनाएँ इनकी आँखों देखी थी इसीलिए इनके वर्णन विशद और स्वाभाविक बन पड़े हैं। सूची-परिगणन और वर्णन-विस्तार के भार से कविता कहीं-कहीं शिथिल हो गई है। युद्ध के वर्णन इनके बड़े ही सजीव और ओजपूर्ण हैं। चौपाइयों की अपेक्षा दोहे अधिक भावपूर्ण और प्रौढ हैं। प्राय. इनकी कविता बाह्याडम्बर और कृत्रिमता से रहित है।

इनकी शैली के दो गुण विशेष है—एक तो स्तुति करते-करते वंश का परिचय भी देते जाते हैं और दूसरे अपने नाम का वर्णन सर्वमान्य गुणों के दृष्टान्त में करते हैं।

इनकी भाषा मे ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, अवधी तीनों का समिश्रण है। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से 'छत्रप्रकाश' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(७)

दोहरा छन्द

आपणु पाप सु साहु की। चढ़े सकल सजि सैन ।।
महरम खाँ उज्जी तब। आये दिल्ली सु ऐन ।।
बमो राज सिर छत्र धरि। अलावुद्दी तिहिं काल ।।
घर घर प्रति आनन्द जुत। यह विधि प्रजा सुपाल ।।
रणत भँवर के खेत को। कीनो सकल प्रमान ।।
प्रथम हने रणधीर ने। बहरि सैन परियान ।।
दोम सवण हमो परै। दोऊ कुँवर उदार ।।
सेन आरबी को जितो। हनी जु असी हजार ।।
हनै मीर है सन सतरि। और सिकन्दर साह ।।
अट्ठ सहस पयार के। हने मीर निज आह ।।
सवा सहस गजराज धरि। दो सय बाजि प्रसिद्ध ।।
द्वादस सत सेना प्रबल। हनो हमीर सुसिद्ध ।।
मातक राव हमीर को विध सुमेर हर आप ।।
मुक्ति द्वार सबई खुले विद्या धर्म सुथाप ।।
(जोधराज—हम्मीर रासो)

'हम्मीर रासो' का ऐतिहासिक मूल्य भले ही कुछ न हो, परन्तु इसकी

कविता उच्च कोटि की है। इसकी कल्पना, मग्नता, रोचकता और भावात्मकता निर्विवाद सिद्ध है। कविता में पूर्ण ओज है। कवि को वीर और शृंगार दोनों रसों के उद्रेक में सफलता प्राप्त हुई है। प्रकृति वर्णन भी अच्छा हुआ है। कई घटनाओं के वर्णन काल्पनिक और अस्वाभाविक हैं। अलंकारों का व्यवहार भी अधिकारपूर्ण किया गया है।

इनकी भाषा ब्रजभाषा है, परन्तु इसमें कहीं-कहीं पुरानी भाषा का पुट भी मिलता है। छंदों में दोहा, चौपाई, छप्पय के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से छंदों का प्रयोग किया गया है।

सूदन और मान की भांति इन्होंने नाम-सूचियां गिनाने अथवा वर्णनों में तड़ा-तड़-भड़ाभड़ लाने की चेष्टा नहीं की।

(८)

अंगद सो अड़ो पातसाहति पलटि डारयो ।
एवी एतो आजम लों सबल बनैत मैं ॥
महा हुव भारत की अमनैंती पारथ की ।
जैसो भीम भुज बल भारयो कुरखेत मैं ॥
श्रीधर कृपान गहि मुसलैंह खान रन ।
कीनैं घमासान मों मसान हहरात हैं ॥
झंडनि झोंडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे ।
साती सरं पौरे पेलि पियत अन्हात हैं ॥
खोपरा लौं खोपरिन फोरं गलक्त गदू ।
पोरीलों पलासी लाल खैंचि खैंचि खात हैं ॥
पातर से खापरनि चहुवा चुरैलिन के ।
चाइ भरे घर घर चर्परि चबात हैं ॥
(श्रीधर—जंगनामा)

श्रीधर की कविता का विशेष गुण है प्रबल और सजीव वर्णन-कौशल। 'जंगनामा' फर्रुखसीयर को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया था जिससे जान पड़ता है कि मुगल साम्राज्य-काल के इन पिछले दिनों में भी हिन्दी कविता को प्रोत्साहन मिलता रहा। 'जंगनामा' की ब्रजभाषा मनोहर और कहीं-कहीं ओजस्विनी भी है। फलतः जगह-जगह प्रसाद गुण का अभाव खटकता है। इसका कारण यह है कि इन्होंने प्रांतीय और विदेशी शब्दों की तथा वस्तुओं की सूचियों की भरमार करके वर्णन को अरुचिकर बना दिया है। ६६ पृष्ठों के ग्रंथ में १६ पृष्ठों में केवल नाम सूचियां हैं। यत्र-तत्र कवित्वपूर्ण वर्णन मिल जाते हैं।

गहि गहि हय भटकें दिसि दिसि फटकें भू पर पटकें नहि लटकें ।
पाइन सो पीसें अरिगन मीसें जब से दीसें नहि भटकें ॥
प्रति गजनि उठेलें दंतन ठेलें ह्वै भट भेलें जोर करें ।
जुध्धन सो जूटें नेकु न हूटें फिर फिर छूटें फेर लरें ॥

× × × ×

करि करि इन टक्कर हटत न धक्कर तन ताकि तयकर तोरत हैं ।
मारे रन मुंडन भाले झुंडन तऊ न मुडन मोरत हैं ॥
इमि कुंजर लपटें दुहु दल लपटें झुकि झुकि झपटें झूमत हैं ।
भरि पटल पटा में फारस तामें सुघन घटा में घूमत हैं ॥

(पद्माकर—हिम्मतबहादुर-विरुदावली)

पद्माकर की विशेषता है उनका अनुप्रास-प्रेम । शब्दों को विकृत करने और ग्रामीण बना डालने में उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया । वे शब्दों के खिलवाड़ से ओज लाना चाहते थे, परन्तु सफल न हुए । वे शृंगार रस के कवि थे—वीर-रस के निरूपण में न तो उनकी सी प्रतिभा दिखाई देती है और न ही भाव-गम्भीरता । वर्णन अधिक है भावों का संगठन नहीं हो पाया ।

'हिम्मतबहादुर विरुदावली' उनकी सब कृतियों में निकृष्ट है । इस ग्रंथ की भाषा में भी व्रजभाषा के साथ पुरानी हिंदी का सम्मिश्रण है । कहीं-कहीं अप्रचलित शब्द और मुहावरे बहुत खटकते हैं ।

पद्माकर की इस असफलता का एक कारण यह भी है कि उन्होंने एक कापुरुष और अयोग्य व्यक्ति को अपना नायक चुना ।

(१०)

कस्तूरी केसर कसमीरी । है कपूर कचरी सुक्रीरी ॥
कुटकी किटी कपूर कलायें । कूट्कूठ कामिनी कवायें ॥
कंदुक धूर कठोर करजा । किसमिस कंथ कुलिंजन कंजा ॥
काथ करौंजी कारी जीरी । कादफरो कुचिला कनकीरी ॥
कुकरौंधा करहरी कतीरा । कनक कटाई कारो जीरा ॥
कुमयो कमलगटा कुचकेसा । ककरासिंगी कन्द सुकेला ॥
कमलमूल किरवार कसेरु । काचनून कर मूल कसेरु ॥
गिरनी बीजपरी गमजूरा । गार सोपरा सीम गुलौरा ॥
गूलानी गम गम के दानें । गडलार लूंभी गम जानें ॥
गोरोचन गेरु गोगोली । गोंद गिलोइ गोखरु खोली ॥

(सूदन—सुजान चरित्र)

'सुजान चरित्र' में भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट के ७ युद्धों का विस्तृत

वीर-काव्य का तीसरा युग

लगी। लोग अपने पूर्वजों को मूर्ख और जंगली समझने लगे। आर्य ग्रन्थों को बकवास, देवी-देवताओं को भ्रम, वीरपूजा को अन्धविश्वास और हिन्दुत्व को संकीर्णहृदयता का नाम दिया जाने लगा। इधर पाश्चात्य सभ्यता के गुलामों के ऐसे विचार थे, उधर समाज में इन्द्रियप्रिय लोगों, देश के स्वार्थी अमीरों, धार्मिक मिथ्याचार के शिकारियों के कारण भारत की दशा और भी बिगड़ती जा रही थी। देश की निर्धनता की वजह से सामूहिक भलाई की कोई आशा नहीं थी। इस समय कुछ ऐसे लोगों का ध्यान इन बुराइयों की ओर गया जिन्होंने अँगरेजी शिक्षा तो पाई थी, परन्तु जो भारत की दुरवस्था से दुःखी हुए। उन्होंने एक नया आन्दोलन खड़ा किया। चारों ओर से सुधार और प्रगति की आवाज सुनाई देने लगी। इसी उन्नति की भावना के साथ-साथ दूसरी समस्याएँ भी सामने आने लगीं। सच तो यह है सांस्कृतिक और आर्थिक प्रश्नों का राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

आगे चलकर राजनैतिक आंदोलन बढ़ता गया। देश की स्वतन्त्रता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का एक हल माना गया। कांग्रेस की स्थापना के बाद राजनीति का पक्ष प्रमुख हो गया। राजनैतिक असन्तोष बढ़ चला। और साथ ही साथ सरकार के निर्दयतापूर्ण दमन का वेग भी बढ़ा। राष्ट्रीय वीरों की परीक्षा का समय आया। उन वीर सत्याग्रहियों की सहनशीलता ने वीरता की नई परिभाषा खड़ी कर दी। गांधीवादियों की यह अहिंसात्मक वीरता चिरकाल तक जागृत रही। गत युद्ध में नेताजी सुभाष बोस ने स्वतन्त्रता के लिए हिंसावाद का प्रयोग किया और यद्यपि यह प्रयोग सफल न हुआ, तो भी 'आजाद हिन्द फौज' ने रणक्षेत्र में वीरता के वे करतब दिखाये कि भारत में एक नया उत्साह, नया गौरव और नई चेतना तथा आशा का प्रादुर्भाव हुआ।

समाज और देश में जो परिवर्तन होते रहे उनसे हिन्दी साहित्य अलग न रह सका। सब आन्दोलनों की प्रतिध्वनि कविता में मिलती है।

राष्ट्रीयता के इस युग की मुख्य-मुख्य रचनाएँ ये हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—"भारतभिक्षा", "जातीय-संगीत", "विजयिनी विजय-वैजयन्ती", तथा "भारत-जननी", "भारत दुर्दशा", "नीलदेवी" आदि नाटकों में फुटकर प्रमुख रचनाएँ पद्य।

बदरीनारायण चौधरी—"भारत सौभाग्य नाटक", "हार्दिक हर्षादर्श", "भारत बधाई", "मंगलाशा या हार्दिक धन्यवाद", "आर्याभिनन्दन", "अभिनवारायन" आदि।

प्रतापनारायण मिश्र----"कलि-प्रभाव नाटक", "मन की लहर", "लोकोक्ति

शतक", "बृहला-स्वागत", "भारत दुर्दशा", "क्रंदन", इत्यादि।

श्रीधर पाठक—"भारतगीत", "भारत-गुन", "भारतस्तव", "हिन्द वन्दना" इत्यादि।

बालमुकुन्द गुप्त—"स्फुट कविता"।

राय देवी प्रसाद पूर्ण—"भरत वासय"।

अयोध्यासिंह उपाध्याय—"कर्मवीर", "काव्योपवन" इत्यादि।

गयाप्रसाद शुक्ल "त्रिशूल"—"कृषक क्रन्दन", "मानस तरंग", "करुण भारती" इत्यादि।

मैथिलीशरण गुप्त—"भारत भारती", "स्वदेश संगीत", मातृभूमि", "मेरा देश" "उमा", "भारत का झंडा", "भारत की जय", "हिन्दू", "गुरुकुल", "मगध" इत्यादि।

माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा)—"पुष्प की अभिलाषा", "जीवन-पत्र", "बलिदान का मूल्य", "कैदी और कोकिल" इत्यादि।

सियारामशरण गुप्त—"मौर्य विजय", "एक फूल की चाह", "क्रन्दन", "करुणा", "गौरव गाथा", "उलाहना" "जागरण", "बापू", "आत्मोत्सर्ग" इत्यादि।

वियोगी हरि—"चरखे की गूंज", "असहयोग वीणा", "वीर वाणी", "वीर सतसई" इत्यादि।

रामनरेश त्रिपाठी—"जन्मभूमि भारत", "आह्वान"।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—"विप्लव गान", "पराजय गीत", "वन्दनम् कोऽहम्", "कुंकुम", "कैदी का स्वागत", "क्वासि"।

दिनकर—"हुंकार", "दिल्ली", "कस्मैदेवाय", "कुरुक्षेत्र", "रसवन्ती" इत्यादि।

नरेन्द्र—"बंगाल", "भावी संतति"।

इनके अतिरिक्त अम्बिकादत्त व्यास, नाथूरामशंकर शर्मा, राधाकृष्णदास, रामचरित उपाध्याय, सत्यनारायण कविरत्न, विश्वनाथ सिंह विद्यार्थी, रामानन्द यादव, सियारामशरण, "नेपाली", रूपनारायण पाण्डेय, अनूप शर्मा, माधव शुक्ल, सुभद्राकुमारी चौहान, शिवमंगलसिंह सुमन, प्रभात, आदि ने भी राष्ट्रीय कविताएँ लिखी हैं।

नये क्षेत्र के युवक कवियों ने 'आज़ाद हिन्द फौज' और 'भारत की स्वतंत्रता पर बहुत ओजपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। "वह मिली माँग कर आज़ादी", "चलो! दिल्ली", "आज़ादी के हम दीवाने", "क्रान्ति", "जय हिन्द", "जय सुभाष", "बलिदान", "रणभेरी", आदि शीर्षक पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः रोज़मर्रा देखने को मिलते रहे हैं। देवराज दिनेश, मोहनलाल गुप्त, प्रकाश-'चन्द्र', शंकर, विष्णु शर्मा, 'मधु', प्रभृति अनेक युवकों की कृतियों में इसी प्रकार की उद्भावना तड़-

पनी है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाने के कारण यह धारा भी अब आगे नहीं बढ़ रही।

चंद्रशेखर वाजपेयी प्रबन्ध-पद्धति के अन्तिम कवि थे। उस समय तक जितनी रचनाएँ प्राप्त हैं उनमें भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव है। हिन्दी में राष्ट्रीय कविता के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। उन्हीं ने उस धारा के प्रवाह का श्रीगणेश किया जो आज इतने जोरों से बहती चली जा रही है। इस धारा की चार शाखाएँ हमारे साहित्य में मिलती हैं।—

काव्यशैली

१—हिन्दुत्व तथा हिन्दू समाज में सुधार,
२—भारत का उज्ज्वल अतीत और दीन-हीन वर्तमान,
३—गांधी जी का अहिंसावाद, और
४—मातृभूमि के लिए प्रेम तथा उसकी स्वतन्त्रता के लिए उग्र भावना।

× × × ×

(१) मुसलमानी काल में जो आंदोलन हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिए भूषण, लाल और अन्य वीर कवियों ने उठाया था, उसकी गूंज अब तक बनी रही। आर्य-समाज, ब्रह्मसमाज तथा अन्य सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से वही भावना थोड़े भेद के साथ फिर जागृत हो उठी। हिन्दी साहित्य में सतीत्व-रक्षा, गो-रक्षा, मूर्त्ति-रक्षा आदि की पुकार मुसलमानी शासन-काल से चले आ रहे रूप में मिलती है। अधिकतर कवि हिन्दू समाज में धार्मिक और सामाजिक सुधारों के पक्षपाती थे। वे अविद्या, जूआ, नशेबाजी, स्त्रियों की अशिक्षा, विवाह के अवसरों पर अप-व्यय, वर्णभेद, बहु-विवाह, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, बाल-हत्या आदि बुराइयों का मूलोच्छेदन कर देना चाहते थे।

सुधारवादसंबंधी कविताएँ बहुत कम मिलती हैं। ऐसी कविताएँ लोक-प्रिय नहीं हुआ करतीं। इनमें कवित्व अथवा कला का अभाव बहुत खटकता है। प्रचारात्मक साहित्य के लिए गद्य ही उपयुक्त होता है। उसमें हृदय की बात न रह कर अधिकांश मस्तिष्क की अधीन रहती है। भारतेन्दु की "जनकुतूहल", प्रताप-प्रसाद दीक्षित की "विज्ञानबोध", बालाराम शास्त्री की "गो उपमा प्रकाश मंजरी" और "गोरक्षा उपदेश मंजरी", काशी के नाथ कवि की "कलयुग पचीसी" जैसी रचनाएँ बहुत साधारण सी हैं। राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, महेशप्रताप नारायण, आदि बड़े-बड़े कवियों की स्वतन्त्र रचनाओं में ही सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का उल्लेख हुआ है। उनकी कविताओं में जहाँ अन्य विषय हैं, वहाँ सुधारों के सम्बन्ध में भी कुछ कह दिया

है। हिन्दी काव्य में सुधारवाद की अभिव्यंजना गद्य में ही सफलता-पूर्वक हो पाई है। काव्य में इसका स्थान हीन ही रहा है।

नीचे हम सुधारक कवियों की रचनाओं से कुछ पद्य दे रहे हैं—

आवश्यक समाज-संशोधन करो न देर लगाओ,
हुए नवीन सभ्य औरों से अपने को न हँसाओ।
सीखो नई पुरानी दोनों प्रकार की विद्याएँ,
दोनों प्रकार के विज्ञान सिखाओ रच शालाएँ।

(प्रेमघन—आनंद अरुणोदय)

कौन करै जो नहिं कसकत सुनि बिपति बाल बिधवन की है,
तासे बढ़ि कै अन्दना कान्यकुब्ज-कन्यन की है।
बैर परे पितु मातु बनाई पुत्री बाल बृद्धन की है,
पशु सम समझी जात नहिं वनिता ऋषिवंशन की है॥

(प्रतापनारायण मिश्र—मन की लहर)

प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर।
दीनबन्धु सुदृष्टि कीजै बालविधवा ओर॥

(श्रीधर पाठक—बालविलाप)

बाल विवाह विशाल जाल रच पाप कमाया।
ब्रह्मचर्य-व्रत-ज्ञान वृथा विपरीत गँवाया॥
अबला ने चुपचाप उठाय पछाड़ा मुझ को।
बेटा जन कर बाप बनाय बिगाड़ा मुझ को॥

(नाथूरामशंकर शर्मा—सरस्वती, सन् १९१०)

भगवान हिन्दू जाति का उत्थान कैसे हो भला।
नित यह कुरीति दहेज वाली घोंटती उसका गला॥
सुकुमारियाँ ये भोगती हैं यातना कितनी बड़ी।
जो पूर्ण यौवन काल में भी हैं बिना ब्याही पड़ी॥

(गोपालशरणसिंह—सरस्वती, सन् १९०७)

(२) हिन्दुत्व को उद्बुद्ध करने वाली कविताओं का एक और महत्त्वपूर्ण लक्षण है प्राचीन हिन्दू गौरव का कीर्तन। इन कवियों के वर्णित व्यक्ति प्राचीन हिन्दू भारत के रत्न और हिन्दू-संस्कृति के प्रतीक हैं, इनकी रचनाओं में व्यक्त हुए भाव हिन्दुत्वमय हैं, इनकी कल्पनाएँ हिन्दू-जीवन और परम्परा के ही चित्र उपस्थित करती हैं। परन्तु ये कवि सम्पूर्ण भारत की उन्नति के इच्छुक हैं। अतीत की याद कराके ये भारतीयों को जागृत करना चाहते हैं। भारत का अतीत था ही हिन्दू सभ्यता से पूर्ण। भारत के अतीत देशभक्त थे ही हिन्दू। अतीत

भारत के गुण-गान करने में इन कवियों ने सच्ची राष्ट्रीयता का परिचय दिया है। पृथ्वीराज, राणा प्रताप, शिवाजी आदि राष्ट्रीय वीरों और चित्तौड़, हल्दीघाटी और पानीपत की भीषण लड़ाइयों के ज्वलन्त उदाहरण देकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जगाने का ही यत्न किया है। वैदिक काल के ऐश्वर्य, सत्यप्रेम, स्वातन्त्र्य, और महत्व का उल्लेख करके उन्होंने अध पतित भारत-वासियों को लज्जित करके उन्हें सजग करना चाहा है। काल की गति से जो भावनाएँ और संस्थाएँ विकृत हो गई थी उनका भारत और हिन्दुत्व के नाते पुनर्निर्माण करना ध्येय रहा है। वे देश की अतीत और वर्तमान अवस्था के वैषम्य पर अत्यन्त क्षुब्ध और व्यथित दिखाई देते हैं। प्राचीन वैभव के विनाश पर इन सब ने हार्दिक दुःख प्रकट किया है।

भारतेन्दु ने 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' नाटकों में अनेक पदों और गीतों में वर्तमान अवनति का गाना गाया है और "आवहु, सब मिलि रोवहु भारत भाई" में सबको इस पतन पर आँसू बहाने को कहकर लज्जित कर दिया है। कृष्ण, अर्जुन, राम और बुद्ध के देश में इतना अज्ञान, इतनी गिरावट। 'प्रेमघन' इसी कारण दुःखी हैं। इतने विशाल भारत का यों ह्रास। परीक्षित, जनमेजय आदि के वर्तमान वंशजों में उन पूर्वजों का कोई गुण शेष न देखकर राधाकृष्ण-दास सन्तप्त हैं। अम्बिकादत्त व्यास भारत के प्राचीन रत्नों को याद कर आठ-आठ आँसू रो रहे हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने भारत के प्राचीन गौरव के ह्रास पर दुःख प्रकट करते हुए प्लासी की लड़ाई और उसके भयावह परिणामों की ओर देश का ध्यान दिलाया है। भारत की वर्तमान दुर्दशा गोपालशरणसिंह को दुःखी कर रही है। गौतम, कणाद की जन्मभूमि में इतना परिवर्तन! सियारामशरण गुप्त वर्तमान की तुलना बीते दिनों से कर रहे हैं। मैथिलीशरण गुप्त भी संसार द्वारा सम्मानित प्राचीन भारत को श्रद्धा और प्रेम की दृष्टि से देखते हुए वर्तमान दुरवस्था की ओर संकेत कर रहे हैं। प्राचीन भारतवर्ष की महत्ता और उसकी वर्तमान दुर्दशा में कितना अन्तर है। रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, 'त्रिशूल' 'दिनकर' आदि अनेक कवियों ने भारत के अतीत गौरव का गान गाया है।

इन कवियों की रचनाओं में अनेक गम्भीर और भावपूर्ण बातों के अतिरिक्त तीव्र व्यंग्य भी है। पुराजनन्द से शिक्षा पाकर वे समाज के अधिक विकास में विश्वास रखते हैं। देश की सम्यक् उन्नति उन्हें अत्यन्त प्रिय है।

इस पक्ष की कविताओं में एक और विशेषता भी है। इस प्रकार की सभी रचनाओं में देश-विनय पर जोर दिया गया है। प्रायः सभी कवियों का ईश्वर-विश्वास दृढ़ है। वे ईश्वर से देश को उठाने, भारतीयों को सद्बुद्धि प्रदान करने

की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार कविताओं में भावुकता और ओज के साथ-साथ बहुत सुन्दर कवित्व का दिग्दर्शन होता है।

ऐसी रचनाओं के उदाहरण —

हाय पंचनद, हा पानीपत।
अजहूं रहे तुम धरनि विराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहूं खरो भारतहिं मझारी।।

भारतेन्दु—'विजयिनी-विजय वैजयन्ती'

× × × ×

कहां परीक्षित कहं जनमेजय कहं विक्रम कहं भोज,
नंदवंश कहं चंद्रगुप्त कहं हाय कहां वह ओज।
काल विवश हो गए नृपति वे तो क्यों उनके बालक,
ए न उनके सम काहे भारत उपजे कुलघालक।

(राधाकृष्णदास—'विजयिनी विलाप')

× × × ×

कहां आजु इक्ष्वाकु ककुत्स्थहु कहं मान्धाता।
कहं दिलीप रघु अजहूं कहां दशरथ जगत्राता।
पृथ्वीराज हमीर कहां विक्रम सक-नायक,
कहां आजु रनजीत सिंह जग विजय-प्रदायक।।
जाही दिन दुरदसा सबै भारत पै आई,
ताहि दिन क्यों नहीं गयो पाताल समाई।।

(अंबिकादत्त व्यास—'मन की उमंग')

× × × ×

हम कौन थे क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु हैं न उनमें शिष्य की भी योग्यता
जो थे सभी के अग्रगामी आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं ?
जिन पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं।

(मैथिलीशरण गुप्त—'भारत भारती')

× × × ×

संसार भर में यह हमारा देश ही सिरमौर था।
सौंदर्य में गुण शांति में ऐसा न कोई और था।

(सियारामशरण गुप्त—'हमारा हर्ष')

(३) उन्नीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य मध्यवर्ग का साहित्य था। इसमें अंगरेजी शासन के प्रति संतोष और भक्ति के भाव अधिक मिलते हैं। और तो और १८५७ ई० की महत्त्वपूर्ण क्रांति तक का उल्लेख नहीं मिलता। उन कवियों की राय में क्रांति का होना देश के हित के लिए कोई अच्छी बात नहीं थी। प्रतीत वीरों की याद में गाने गाना तो ये अच्छा समझते थे, परन्तु उन वीरों और वीरांगनाओं के विषय में जिन्होंने मरहठा युद्धों मे अथवा सन् ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम मे अपने प्राण विसर्जित किये, एक शब्द भी नहीं लिखा गया। किसानों और निम्न वर्ग की ओर ज्यों-ज्यों हमारे साहित्यिकों का ध्यान बढ़ता गया, त्यों-त्यों अंगरेजी सरकार की शोषण नीति भयंकर रूप में सामने आने लगी। इस शासन के विरुद्ध घृणा, अविश्वास और क्रोध बढ़ने लगा। स्वतंत्रता की मांग जोरों में उठने लगी। इसी समय देश को महात्मा गाँधी के नेतृत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रेरणा से कई आन्दोलन उठाये गये—सत्याग्रह, अहिंसा, असहयोग, आत्म-बलिदान, आर्थिक सुधार, स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी बहिष्कार इत्यादि। इन सब की प्रतिध्वनि हिन्दी साहित्य में मिलती है।

भारतेन्दु-युग के कवियों ने गरीब किसानों और मजदूरों की निर्धनता का उल्लेख अवश्य किया, परन्तु उस निर्धनता को दूर करने का उपाय उन्हें न सूझ पड़ा। द्विवेदी-युग में ये वर्ण्य विषय प्रधान बन गये। गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही' गाँव वालों की दीनता और दुरवस्था से पूरी सहानुभूति रखते हैं। वे जमींदारों द्वारा घर छीन लिये जाने पर किसानों की मनोव्यथा का बड़ा मार्मिक चित्रण करते हैं (देखिये 'दुखिया किसान')। रामचरित उपाध्याय भारत कृषकों की दुर्दशा से बहुत दुखी हैं (देखिये 'शून्य हृदय')। कृषकों के प्रति सब से अधिक सहानुभूति मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों में है। उनकी 'कृषक-कथा', 'किसान' 'भारतीय कृषक' आदि कई रचनाएँ किसानों पर हैं। वे जनता से इन दीनों की दशा को सुधारने और देश को इस ढंग से उन्नत करने की अपील करते हैं। ये कवि आँसू नहीं बहाते। कुछ कर गुजरने की प्रेरणा करते हैं। त्रिशूलनारायण सिंह कृषकों, मजदूरों और विद्यार्थियों को जागृत और संगठित हो कर देश की उन्नति करने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। श्रीधर पाठक, गोपालशरणसिंह, और अन्य अनेक कवि विद्यार्थियों और नवयुवकों को जनसेवा का व्रत धारण करने को कहते हैं। उनका विश्वास है कि देश और जाति का दुःख यही दूर कर सकते हैं।

इस विषय का पुनरुल्लेख प्रगतिवाद की लहर के सम्बन्ध में किया जायगा।

वर्तमान कविता में आशा की झलक पायी जाती है। इसमें उत्साह और विश्वास है।

जनता को जागृत करने और उन्नति के लिए

कवि साम्प्रदायिक सदिच्छा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और सहयोग के लिए बहुत चिंतित हैं। द्वेषपूर्ण साम्प्रदायिकता पर राय देवीप्रसाद और रामनरेश त्रिपाठी अत्यन्त दुःखी हैं। रूपनारायण पाडेय भी भ्रातृत्व का उपदेश देते हैं, क्योंकि भ्रातृत्व और सहयोग से ही लोगों में शक्ति का संचार होगा और देश स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो सकेगा। इन कवियों को विश्वास रहा है कि अधिकारों की भीख नहीं मिला करती, अधिकारों की प्राप्ति संघटन की शक्ति से प्राप्त होती है। और संघटन के रहने हीं उनकी रक्षा की जा सकती है।

आधुनिक युग के आदि कवियों को शासकों से राजनैतिक और आर्थिक सुधारों की आशा थी। परन्तु कालान्तर में यह आशा निरर्थक सिद्ध हुई। असन्तोष बढ़ने लगा। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने, सविनय अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश किया। शासकों ने दमन की नीति का अवलम्बन किया। हजारों वीर और वीरांगनाएँ इस दमन का शिकार हुईं। भारत में बलिदानों का तांता लगा, देश पर मिटने वाले युवकों ने अहिंसात्मक वीरता का नया पाठ पढ़ा। युगदेवता गांधी की आत्मा की ज्योति में हिन्दी साहित्य में नई वीर कविताएँ रची गईं। इनमें बहुत से गीत सत्याग्रही वीरों के गाने के लिए लिखे गये हैं। बहुत से गाने इन्हें उत्साह और आशा का संदेश तथा त्याग और अहिंसा की शिक्षा देते हैं। अनेक कविताएं इन वीरों की सहनशीलता, दृढ़ता, आत्म-बलिदान और साहस की प्रशंसा में लिखी गई हैं। वीरपूजा इनका प्रधान लक्षण है। महात्मा गांधी पर सियारामशरण गुप्त, पन्त, और मोहनलाल द्विवेदी की लिखी हुई कविताएँ बड़ी ही मार्मिक और ओज-पूर्ण हैं। अन्य नेताओं के प्रति भी अत्यन्त श्रद्धामय उद्गार प्रगट किये गये हैं। सामान्य सैनिकों, बन्दियों, शहीदों और दीवानों की भी अभ्यर्थना की गई है। सुभद्राकुमारी चौहान, गुप्त, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा), नेपाली, और कई दूसरे कवियों ने इन वीरों को आदर से सिर झुकाया है। सत्याग्रहियों से संबद्ध स्थानों और घटनाओं (जैसे बारडोली और जलियाँवाला बाग) का वर्णन भी सुन्दर रीति से किया गया है। कई कवि देश की उन्नति के लिए अपना बलिदान करने को तत्पर हैं।

इस प्रकार की कविताओं से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

> दीन कृषक जन और हु दया-जोग दरसाहीं;
> जिनके तन पर स्वच्छ वस्त्र सरियन कहूँ नाहीं।
> मिहनत करत अधिक पर अन्न बहुत कम पावत;
> जे निज भुजबल हल चलाय के जगत जियावत।
> तिनहिं मिटावहु कुरी कर्म जग होय बिगावन,

करि सहायता और सुखी करि देहु यथावत ।
(प्रेमघन—'स्वागत')

यदि तुम होते दीन कृषक तो आँख तुम्हारी खुल जाती ।
जेठ-घाम में अस्थि तुम्हारी तप्त स्वेद में घुल जाती ॥
(रामचरित उपाध्याय—शून्य हृदय)

पाया हमने प्रभो कौन सा त्रास नहीं है ।
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है ॥
मिला हमें क्या यहीं नरक का वास नहीं है ।
विष खाने को हाय टका भी पास नहीं है ॥
(मैथिलीशरण गुप्त—कृषक-कथा)

विद्यार्थी मजदूर कृषक ही सच्चा राष्ट्र बनाते हैं ।
उनके बिना राजा गण कहीं नहीं कुछ कर पाते हैं ॥
कृषक उठो, छात्रगण जागो, मजदूरो रोना छोड़ो ।
अपना सच्चा रूप देख लो गली गली रोना छोड़ो ॥
(विश्वनाथसिंह विद्यार्थी—छोटों के काम)

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई ।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई ॥
पुन्यभूमि है, स्वर्गभूमि है, जन्मभूमि है देश यही ।
इस से बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं ॥
(रूपनारायणपांडे—मातृभूमि)

मानचित्र भारत का अंकित कृषकों की कृश काया में ।
सब रहस्य है छिपा हमारा इस निद्रा की माया में ॥
जाकर देखो यहाँ बनता यहाँ प्रेम का विमल विमल ।
धूने में परन्दा खेत में तरु रसाल की छाया में ॥
(मित्र—उमंग)

है अपूर्व यह युद्ध हमारा हिंसा की न लड़ाई है ;
नयी दानों की लोगों के ऊपर विकट चढ़ाई है ।
तलवारों की धार मोड़ने गर्दन आगे आई है ,
गिर कर मारों से डरों की होनी यहाँ सफाई है ।
ऐसी कभी यह न लड़ाई महासमर मरदानों का ;
जिस में ... आहुति का प्राणों के बलिदानों का ।
(नेपाली—उमंग)

लिखा रहेगा जगतीतल में वह सत्याग्रह का साका,
हाथों में हथियार न थे, हाँ, बस थी यही पताका।
रोक न सका इसे बढ़ने से लोहे का भी नाका,
थी से चमत्कृत अखिल विश्व ने नया तर्क सा ताका।
है बलिदान वही तो जिससे हत्यारा भी हहरे,
निज विजय-पताका फहरे॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

टूटा कारागार आज मैं करुणागार खुले पाऊँ,
पैरों के ही नहीं शीश के द्वारा भी जाने पाऊँ।
जिन में बेड़ी थी उन में आ पड़े लिपटने के बंधन,
जिन में पड़ी हथकड़ी उनमें पड़े साधनों के कंगन।
तोड़ पड़ी थी वही कंठ मा के गुण का कब गान करे,
स्वागत का बदला बदले में वह मुझ को बलिदान करे।

(भारतीय आत्मा)

रस्सों से कसे जवान पाप प्रतीकार न जब कर पाते हैं,
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-काँप रह जाते हैं,
शस्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं,
पी अपमानों के गरल घूट शासित जब होंठ चबाते हैं,
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म-लगन।
झन झन झन झन झनन झनन॥
मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में,
मैं अहंकार-सी कड़क ठठा हँसती विद्युत की धारों में,
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में,
अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन।
झन झन झन झन झनन झनन॥

—(दिनकर 'विपथगा')

रामधारीसिंह दिनकर बिहार के राष्ट्रीय गीतकारों में अग्रणी हैं। उन्होंने राष्ट्र की प्राचीन गरिमा के अनेक गीत लिखे हैं। मगध, वैशाली, पाटलिपुत्र, नालन्दा, काशी आदि स्थानों की गौरव-गाथायें उन्होंने अपने अनेक काव्यों में गाई हैं। ब्रिटिश राज्य की दासता के चित्र भी उन्होंने अंकित किये हैं। स्वतंत्रता में लिखी गई उनकी कवितायें बड़ी ओजपूर्ण और स्फूर्तिदायक हैं।

× × × ×

(४) भारतेन्दु-युग में ही भारत भूमि की प्रशंसा के गीत गाये गये थे। भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, 'प्रेमघन' आदि सब कवियों की रचनाओं में अपनी जन्मभूमि के नाम पर प्रशस्तिपाठ मिलते हैं। द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय और रामनरेश त्रिपाठी आदि ने मातृभूमि के सौंदर्य पर बहुत कुछ लिखा है। मैथिलीशरण गुप्त के गीत बड़े व्यंजनात्मक और सजीव हैं। अपनी मातृभूमि को दासता से छुड़ाने के लिए ही वर्तमान कवियों ने क्रांति का नाद उठाया। सत्याग्रह-आन्दोलन में बहुत से कवियों का विश्वास शिथिल होने लगा। सुभाषचन्द्र बोस आदि नेताओं ने उग्र नीति का अवलम्बन करने की प्रेरणा दी। बंगाल विच्छेद के दिनों से देश में आतंक-वादियों का कोई न कोई दल इसी नीति पर काम करता आया था, परन्तु जनता का इसमें विश्वास न था। इसी-लिए हिन्दी साहित्य में इसकी प्रतिध्वनि विशेष रूप से नहीं मिलती। गत विश्व-युद्ध में सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में इसी नीति का सफल प्रयोग किया गया। आजाद हिन्द फौज के सैनिक स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर पर पहुँच गये, पर उन्हें दर्शन न हो सके। सन् १९४५-४६ की अधिकतर कविताओं में इन्हीं नेताओं और सैनिकों की प्रशस्तियाँ और भारी रचनाएँ मिलती हैं। इनका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं।

उदाहरण—

हमारे उत्तम भारत देस।
जाके तीन ओर सागर है, उत हिमगिरि अति बेस॥
श्रीगंगा यमुनादि नदी हैं विंध्यादिक परिवेस।
राधाचरण नित्यप्रति बाढ़ो जब लौं रवि-राकेस॥

(हरिश्चंद्र-चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका)

धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि,
वीर विबुध विद्वान् जाति-नरवर प्रगटावनि।
यदपि सर्व दुःख सों सब भाँति भई है आरत,
तऊ धन्य अनेक सुवन अजहूँ सों धारत।

(प्रेमघन—नागरीनीरद, सन् १८९२)

बंदहु मातृ भारत-धरनि।
सेत हिमगिरि सुभग सुरसरि तेज तरोमय तरनि।
गरित घन द्युति भरित भुजद्युति गरम करि-मनहरनि॥

(श्रीधर पाठक—मनोविनोद)

गुन-धाम अति अभिराम गुननिधि, नौमि नित प्रिय भारतम्।

(श्रीधर पाठक—नौमि भारतम्)

जय-जय भारत पुण्यनिधान।
इस त्रिभुवन में अन्य देश क्या है तेरे समान।
दुर्गम दुर्ग बने हैं तेरे विन्ध्य हिमालय अचल अभी।
अविचल खाई है वारिधि की तनिक न होना विकल कभी॥
(रामचरित उपाध्याय—भव्यभारत)

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे अंग-अंग झनझनाए।
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए।
नाश और सत्यानाशों का धुंआधार जग में छा जाए॥
नियम और उपनियमों के ये बंधन टूक-टूक हो जाएँ।
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ॥
(बालकृष्ण शर्मा नवीन—कुंकुम)

गोलियाँ जब दनदना कर धाँधली उर जायेंगी,
सामने जब तोप गोले आग के बरसायेंगी,
नोक में संगीन की, सीने पिरोये जायेंगे,
राष्ट्र की बलिवेदिका पर शीश चढ़ने जायेंगे,
दहकते अंगार पर तब पग बढ़ाता आऊँगा।
मौत से भी मैं मगन, तेरे लिए भिड़ जाऊँगा॥
(सोहनलाल—एक निश्चय)

इस सम्बन्ध में यह सूचित कर देना आवश्यक है कि कुछ रचनाओं को छोड़ कर आधुनिक युग की कविताओं में स्थायित्व-गुण नहीं है। इन में सामयिकता और वास्तविकता अधिक है—कल्पना की उड़ान कम है। इनमें शक्ति और स्फूर्ति तो है परन्तु कवित्व और कला बहुत कम है। इनमें चित्रात्मकता अवश्य है पर भावना का अभाव है। अस्तु.. इनका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है।

आधुनिक काल में प्रबन्धात्मक वीर-काव्य कोई नहीं लिखा गया। इन रचनाओं को युद्ध के गीत कहना ठीक होगा। आज के कवियों में सत्यप्रियता का भाव प्रमुख है। झूठी प्रशंसा, चापलूसी स्वार्थ-साधन और विडम्बना अथवा आडम्बर इनमें नहीं है। इन कवियों के गीतों में प्रवाह, प्रभाव, सचाई और भावुकता है। इन्होंने कोरे कवि-कर्तव्य पालन के लिए कविता नहीं की है। इनमें सच्ची अनुभूति और स्वाभाविकता है। इन्होंने समय की परिस्थितियों के अनुकूल भाव-व्यंजना की है। इनकी दृष्टि व्यापक और हृदय उदार है।

इस युग की कविताओं में वीर रस के साथ वीभत्स का पुट नहीं, बल्कि

वात्सल्य और करुणरस का सामञ्जस्य रहता है। शृंगार का तो नितान्त अभाव ही है। व्यंग्य के साथ कहीं-कहीं हास्य-रस अवश्य मिलता है।

प्रक्रिया

आधुनिक काल के आरम्भ की रचनाओं पर रीतिकाल की प्रक्रिया और प्रणाली की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इस समय पद्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का ही आधिपत्य था। पर गद्य की भाषा अर्थात् खड़ी बोली का प्रभाव भी कविता पर पड़ने लगा। देश भक्ति की कविताओं में यह प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, प्रतापनारायण मिश्र, 'प्रेमघन' आदि कवियों की भाषा खड़ी बोली के निकट आती जा रही है। भारतेन्दु-युग में शुद्ध खड़ी बोली के काव्य प्राय नहीं मिलते। इनमें ब्रजभाषा, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी शब्द भी आते हैं। देशी मुहावरे और कहावतों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु-काल के अन्तिम चरण में खड़ी बोली को एकमात्र काव्य-भाषा बनाने का आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन की सफलता द्विवेदी-युग में आकर प्राप्त हुई। ब्रजभाषा के शब्दों का तिरस्कार किया जाने लगा। अप्रचलित, रूढ़ तथा प्रभावहीन शब्दों को चुन-चुन कर बाहर निकाला गया। देश-भक्ति की अधिकांश कविताएँ स्वयंसेवकों, सत्याग्रही वीरों और साधारण जनता के गाने के लिए लिखी जाती थीं, इसलिए बोलचाल की भाषा का प्रयोग बढ़ने लगा। नाथूराम शंकर शर्मा, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने सरल और लोकप्रिय भाषा में रचना की। शुरू-शुरू में यह भाषा आडम्बर-पूर्ण, शिथिल और अव्यवस्थित थी। शब्दों की आत्मा और उनकी शक्ति से ये कवि अपरिचित थे। व्याकरण की अशुद्धियाँ इनमें अनेक जगह मिलती हैं। किन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा अयोध्यासिंह और गुप्त बन्धुओं के प्रयत्नों से काव्य-भाषा शुद्ध और साहित्यिक आदर्श पर लाई गई।

वर्तमान समय में भाषा के पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया है। लेकिन प्रायः हर एक कवि में कई ऐसे विचित्र प्रयोग प्राप्त होते हैं जिनका अर्थ वे ही समझ सकते हैं। शब्द-कोश का आदर्शीकरण भी नहीं हो पाया। किसी कवि में उर्दू की प्रचुरता है तो किसी में संस्कृत की। कोई बंगला से नये शब्दों को ग्रहण करता है, तो कोई नये शब्द स्वयं गढ़ लेता है। अंग्रेजी शब्दों के रूपान्तर विचित्र ढंग से किये गये हैं। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी की रचनाओं में किसी एक भाषा-शैली का अनुसरण नहीं पाया जाता। शैली में व्यक्तित्व और अनेकरूपता का प्रदर्शन जितना वर्तमान समय में हुआ है इतना पहले कभी नहीं हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी की शैली और शब्द-योजना में चातुर्य और प्रभाव की ओर अधिक ध्यान है, भाषा की शुद्धता पर नहीं। सियारामशरण और

मैथिलीशरण गुप्त की भाषा में शुद्धता है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की शैली बीहड़ है और अनेक स्थलों पर भाव स्पष्ट नहीं है। गया प्रसाद शुक्ल और गोपालशरण सिंह व्यावहारिक उर्दू शब्दों और मुहावरों का प्रयोग अधिक करते हैं। रामचरित उपाध्याय को संस्कृत शब्दों का मोह है। अनूप शर्मा की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है। इत्यादि, इत्यादि।

एक बात अवश्य है—वर्तमान कवियों की भाषा में प्रवाह ओज और प्रभाव पिछले कवियों से बहुत प्रबल है। भाव और भाषा का सामञ्जस्य उत्तम रीति से होता है।

छंदों के प्रयोग में भी विविधता और विभिन्नता देखने में आ रही है। भारतेन्दु-युग के कवियों ने परंपरागत छंदों का ही व्यवहार किया है। वही रोला, छप्पय, कवित्त आदि प्रयुक्त होते हैं। हाँ, दोहा और चौपाई का ह्रास अवश्य होता गया है। भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने लावनी और गजलों का समावेश भी इस समय किया। उर्दू के छंद नई कविताओं में लगाये गये। श्रीधर पाठक ने नये छंदों का निर्माण भी किया। बीसवीं शताब्दी में छंदों के चुनाव में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न रहा। राय देवीप्रसाद और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया है, गयाप्रसाद शुक्ल, सियारामशरण और मैथिलीशरण गुप्त उर्दू और हिन्दी के छंदों का व्यवहार करते हैं। अनूप शर्मा राम चरित उपाध्याय और गोपालशरणसिंह प्रायः हिन्दी के छंदों का ही अनुसरण करते हैं। अधिकतर छोटे-छोटे छंद देखने में आते हैं। अनेक नये छंदों का निर्माण हुआ है। संगीत और लय का विशेष ध्यान रखा जाता है और इन्हीं को पद्य का आधार मानकर निर्माण हो रहा है। छंदों की अनेकरूपता की वृद्धि के साथ-साथ कवित्व का विकास भी दिनों-दिन हो रहा है—भारतेन्दु-युग की नीरसता को छोड़ कर हिन्दी-काव्य कला के आदर्श पर आ रहा है।

वर्तमान समय की एक और विशेषता है अलंकारों, विशेषकर शब्दालंकारों, की उपेक्षा। उपमा और उत्प्रेक्षा के द्वारा भावों का स्पष्टीकरण अवश्य किया जाता है, परन्तु अलंकारों को भाषा की सजावट के लिए व्यवहार में नहीं लाया जाता।

[३]

धार्मिक काव्य

भारतवर्ष के इतिहास में धार्मिकता का प्राधान्य शताब्दियों से चला आया है। भारतीय जीवन में धार्मिक प्रवृत्ति युग-युगान्तर से चलती रही है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि ग्रंथों का ऐतिहासिक, **परम्परा** साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व इसी कारण से है। इनके आधार पर हम न केवल प्राचीन इतिहास का निर्माण करने में सफल हुए हैं, हम हिन्दू साहित्य में धार्मिकता के विकास का भी अध्ययन भली भांति कर सकते हैं। बौद्ध और जैन मतों की प्रेरणा से संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में बड़ा उच्च साहित्य लिखा गया है। धार्मिकता की अनेक लहरों का अनुसरण और निरीक्षण करने वालों के लिए भारतीय साहित्य एक अथाह सागर है। यहाँ अनेक मत-मतान्तर और सम्प्रदाय उठे और अपनी-अपनी छाप साहित्य पर छोड़ते गये।

भारतीय जीवन में धर्म का स्थान सब से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। हमारी राजनीति, शिक्षा, संस्कृति और हमारा सामाजिक और नैतिक संगठन सब 'धर्म' से प्रेरित और मर्यादित है। हमारी परम्परा में धर्म एक साधना है, इसी में मनुष्य के उत्तम गुणों का विकास होता है। और धर्म का सारा स्वरूप भक्ति में समाहित हो गया है। भक्ति का अधिकार भी उस को है जो धर्म का पूर्णतया पालन करता हो।

भक्ति के तीन अंग हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति में भगवान् के गुणों का ज्ञान आवश्यक है जिस से उसके स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। प्रार्थना से पाप से मुक्ति और पुण्य की प्राप्ति की चाह रहती है जिसकी सिद्धि अनवरत कर्म द्वारा होती है। ज्ञान और कर्म से उपासना (श्रद्धा) की उपलब्धि होती है। ऋग्वेद स्तुति-प्रधान है, इसीलिए उसे ज्ञान काण्ड का वेद कहा जाता है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। इस के पहले ही मन्त्र में शुभ कर्म करने का आदेश मिलता है। सामवेद उपासना काण्ड का वेद है। वेदत्रयी के आगे (ज्ञान, कर्म और उपासना के बाद) अथर्ववेद में ब्रह्म की प्राप्ति सुगम बनाई गयी है। यहीं भक्ति के इन तीनों अंगों का समन्वय होता है।

भारतीय भक्ति-साधना की अन्य विशेषताएँ हैं—

(क) प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामञ्जस्य;
(ख) द्वैत में अद्वैत (आत्म-तत्त्व) का साक्षात्कार,
(ग) साधक की अवस्था के अनुसार साधना की व्यवस्था,
(घ) गुरु की महत्ता;
(ङ) आनन्द की सिद्धि।

विचारणा, पश्चात्ताप, उद्बोधन, व्याकुलता, अभिलाषा और विनय भक्ति के सोपान हैं। साधक के लिए आचरण, आत्मसंयम, इन्द्रिय-निग्रह आदि के कड़े नियम विहित हैं।

वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में ७०–७५ प्रतिशत ग्रंथ धार्मिक हैं और उनमें अधिकतर का विषय भक्ति अथवा भक्ति का कोई उपर्युक्त अंग है।

पुराणकाल से भक्ति में निर्गुण और सगुण रूप की उपासना की जो दो धारायें प्रवाहित हुई हैं, उनका भक्ति-साहित्य में गहरा प्रभाव रहा है। प्राकृत और अपभ्रंश तक आते-आते नाना धर्मों और मत-मतान्तरों का समावेश हुआ है।

अपभ्रंश के उस रूप में जिस से प्राचीन हिन्दी का जन्म हुआ, वज्रयानियों और नाथों का योग-काव्य तथा जैनियों का धार्मिक साहित्य मिलता है। इन्हीं की परम्परा को लेकर तथा वैदिक एवं पौराणिक साहित्य से प्रेरणा पाकर हिन्दी में निर्गुणिया सन्तों की 'बानी', प्रेममार्गी सूफियों के आख्यानों, रामभक्ति या वैधी भक्तिमार्ग के अनुयायियों की कविताओं तथा कृष्णभक्तों के पदों का प्रादुर्भाव हुआ। रामभक्ति और कृष्णभक्ति सम्बन्धी काव्य के मौलिक और भारतीय होने में तो किसी को भी सन्देह नहीं। कई ऐतिहासिक मानते हैं कि

साहित्य विशेष रूप से मुसलमानों के प्रभाव की प्रतिक्रिया है। किसी ने तो कबीरदास आदि की वाणियों को 'मुसलमानी हृदयकण्ड' भी बताया है। परन्तु हमने प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि निर्गुणमतावलम्बी सन्तों के विचार, छंद और उनकी विषय वस्तुशैली, भाषा सभी पुराने कवियों की देन है। इस पर मुसलमानी धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, यह प्रभाव 'प्रभाव' ही के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये, प्रतिक्रिया के रूप में नहीं। सूफी-कवियों का सूफी मत चाहे इस देश में नहीं उठा था, परन्तु सूफी-साहित्य की शैलियों में भारतीयता परम्परागत रीति ही लक्षित होती है। अपभ्रंश-साहित्य की मुख्य विचार-धाराओं और शैलियों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

अपभ्रंश शैलियाँ

सम्वत् ६६० में सरहपाद ने अपनी कृति में अन्तस्साधना पर जोर दिया है और पंडितों को फटकारा है। गोरखनाथ ने वेद-शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराया है, और तीर्थाटन आदि को निष्फल कहा है। नाथ-साहित्य में जाति-पाँति का खंडन किया गया है। वज्रयानियों और योगियों में सद्गुरु का माहात्म्य माना गया है। सिद्धों और योगियों ने लोक-भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया है। इनकी कृतियों में जगह-जगह रहस्यभाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी बानी अटपटी और नीरस है। गोरखनाथ ने हिन्दू-मुसलमानों के द्वेषभाव को दूर करके साधना का एक सामान्य मार्ग ढूंढने की आवश्यकता अनुभव की थी। पहले प्रकरण में सिद्ध साहित्य की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है।

सन्त-साहित्य की विशेषताएँ बिलकुल यही हैं। इनके अतिरिक्त योग की अनेक बातों का प्रतिपादन निर्गुण-काव्य में हुआ है। कबीर की निर्गुण-साधना वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है जो सूफी और वैष्णव मतों से प्रभावित है। सन्त-कवि भी योगियों की तरह शास्त्रज्ञ न थे, साधक थे। कबीर ने योग-मार्ग का समर्थन किया है और पृथ्वीनाथ आदि बाद के योगियों ने कबीर के उपदेशों पर चलने का आदेश दिया है।

वज्रयानियों की योग-तन्त्र साधनाओं में स्त्रियों का योगियों के लिए आकर्षण ऐसा ही महत्त्व रखता है जैसा कृष्ण की ओर गोपियों का आकर्षण। धर्म के नाम पर दुराचार और भ्रष्टाचार का वज्रयानियों में ऐसे ही विकास हुआ जैसे बाद में कृष्ण-कवियों में। गोरखनाथ ने इस दुराचार के विरुद्ध जो आवाज उठाई थी, उसकी गूंज भक्त-कवियों की रचनाओं में बनी रही। योगियों की विचार-परम्परा के अनुसार भक्तों ने स्त्री को परीक्षा का साधन माना है, सिद्धि

का उत्पादन नहीं। स्त्री के विषय में निन्दात्मक वचन जो भक्तों की वाणियों में मिलते हैं वे योगियों से ही लिये गये हैं।

जैन साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएं हैं—आख्यानों द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार और छन्दों में से दोहा और चौपाई का विशेष उपयोग। यही शैली सूफियों ने अपनाई। दोहा और चौपाई अवधी साहित्य के पक्के छंद बन गये।

मुसलमानों ने भारतवर्ष में अपनी सत्ता की स्थापना कर ली और राजपूत आपसी फूट के कारण असफल रहे। मुसलमान शासक अपनी विनाशकारी नीति का अनुसरण करते हुए हिन्दू-मंदिरों, हिन्दूधर्म और हिन्दू-समाज को नष्ट करने लगे। स्त्री पुरुष, बालवृद्ध, देवालय-पुस्तकालय, कोई भी उनके विध्वंसक हाथों से न बच सके। हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए दृढ़ता से जूझे, पर अनेक कारणों से उन्हें पराजित होना पड़ा। मुसलमानी शासन स्थापित हो जाने पर भी हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की सीमा नहीं थी। उस युग का जातीय जीवन विरक्ति और निराशा की एक लम्बी गाथा है। हिन्दू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट चले। विरक्ति की सीमा पर पहुँच कर वे पहले तो परमात्मा की ओर मुड़े और कष्टों से त्राण पाने की आशा करते रहे पर जब स्थिति में सुधार होते न देखा तो परमात्मा की भी उपेक्षा करने लगे। नास्तिकता बढ़ने लगी। कबीर ने लोगों को भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। भक्ति और आशा का वास्तविक सहारा सगुणवाद में ही मिला, परन्तु कबीर ने तुलसी और सूर की सगुण भक्ति के लिए मार्ग तय्यार कर दिया।

धार्मिकता की लहर

हिन्दू-संस्कृति और समाज की रक्षा का भाव उठते ही वेदों, उपनिषदों, वेदान्त ग्रंथों और पुराणों के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। अब तक धार्मिक साहित्य संस्कृत में ही था और ब्राह्मण-पंडित तक ही सीमित था, साधारण लोगों में धार्मिक ज्ञान का अभाव था। इधर मुसलमानों में भी ऊपरी आडम्बर को महत्त्व दिया जाता था। इसलिए धार्मिक विरोध बढ़ गया था। सज्जन मनुष्यों के लिए तो इस समय की स्थिति असहनीय थी। सभी एक ईश्वर के पुत्र हैं, फिर एक दूसरे के शत्रु क्यों? एक ओर ज्ञानियों में इस प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे, दूसरी ओर सहृदय जन दुःखी थे। वे उस व्यापक प्रेम द्वारा जो परम प्रेम का साधक है समस्त विभेदों को मिटाना चाहते थे। यही प्रेम आगे चल कर सगुण भक्ति के रूप में परिणत हो गया। प्रेम के लिए आधार की जो आवश्यकता थी वह वैष्णव भक्तों ने पूरी कर दी।

हिन्दुओं पर हिन्दुओं के अत्याचार भी कम न थे। वर्ण-व्यवस्था ने समाज में वैमनस्य और घृणा का विस्तार किया। मुसलमानों के धर्मप्रचार से शूद्रों को अपनी

स्थिति की दयनीयता खटकने लगी। इस्लाम में सब बराबर है, किन्तु हिन्दू धर्म में विभेद क्यों? शूद्र हजारों लाखों की संख्या में इस्लाम की गोद में जाने लगे। एक ओर पददलित जातियों को उबारने की ओर उन्हें समाज में समान स्थान दिलाने की चिन्ता होने लगी, तो दूसरी ओर इन जातियों ने भेद-भाव के विरुद्ध आन्दोलन उठाया। बहुत से भक्त और समाज-सुधारक इन्हीं जातियों में से खड़े हुए।

राजनैतिक स्थिति के कारण और मुसलमानों के धार्मिक विरोध से, उत्तर भारत में मूर्तिपूजा और पौराणिक विचारों का प्रचार सम्भव नहीं था। इसी लिए भक्ति-काल के आरम्भ में उत्तरी भारत में निर्गुणमार्गी सम्प्रदायों का उत्थान हुआ। कबीर, नानक, दादू, आदि सन्तों के प्रति मुसलमानों की भी श्रद्धा थी। सूफी सन्त तो थे ही मुसलमान प्रचारक। उनका ढंग ऐसा था कि उनके प्रति हिन्दुओं की गहरी श्रद्धा थी।

सगुणमार्गी सम्प्रदायों को दक्षिण में पनपने का अधिक अवसर मिला, क्योंकि दक्षिण राजनैतिक उत्पातों और सामाजिक प्रतिक्रियाओं से बचा था। दक्षिण में भागवत (पांचरात्र अथवा सात्वत) धर्म गया तो उत्तर से ही, लेकिन आलवार सन्तों ने वैष्णव धर्म का दक्षिण में बहुत प्रचार किया। चोल राजाओं ने इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। नाथमुनि, और उनके पौत्र यामुनाचार्य वैष्णव मत के प्रकाण्ड पण्डित और प्रचारक थे। इन दोनों ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना की जिसे यामुनाचार्य के शिष्य रामानुज ने दृढ़ किया। उन्हों ने शंकर के रूखे-सूखे अद्वैतवाद की जगह प्रेममूलक सरस भक्ति का प्रसार किया। बड़े-बड़े प्रतिवादियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया, कोसियों मन्दिर बनवाये और शीघ्र ही उनके सिद्धान्त जनता में प्रचलित हो गये। निम्बार्क, आनन्दतीर्थ, मुकुन्दराज, मध्वाचार्य आदि ने दक्षिण में वैष्णव धर्म को पुष्ट किया। समय पाकर, मुसलमान शासकों में थोड़ी उदारता आ जाने पर, उत्तर भारत में भी वैष्णव भक्ति का प्रवाह हुआ। राघवानन्द, रामानन्द तथा वल्लभाचार्य के प्रयत्न से वैष्णव धर्म सारे भारत में लोकप्रिय हुआ। वास्तव में ये लोग भी दाक्षिणात्य थे जिन का जीवन धर्मप्रचारार्थ उत्तर भारत में बीता।

धार्मिक साहित्य का प्रधान विषय है ईश्वर। वह निर्गुण भी है और सगुण भी। इसी विचार-भेद से हिन्दी साहित्य में दो धाराएं चलीं। निर्गुण उपासना ने वेदान्त के ज्ञानवाद को और योगियों तथा नाथपंथी साधकों के निर्गुण

काव्य-विषय

ब्रह्म को केन्द्र बनाया और सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को। एक ने अनुभव का सहारा लिया और दूसरी ने शास्त्र का। साकार या निराकार दोनों पद्धतियों में इष्ट देव वही है यद्यपि उनके नाम और

रूप भिन्न-भिन्न प्रकार से समझे गये हैं । कबीर ने राम नाम की उपासना पर जोर दिया है तो तुलसी ने दाशरथि राम की । सूर के इष्ट देव थे बाल-कृष्ण, नन्ददास के गोपाल-कृष्ण । मीरा 'गिरधर-नागर' को अपना पति मानती थीं, सूरदास के 'कान्ह' उनके सखा थे और तुलसी के राम उनके सेव्य स्वामी थे । और भी कई भक्त कवि हुए जिन्होंने अपने इष्ट को किसी अन्य देवी देवता के रूप में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, पर साहित्य के विचार से उनका ऐसा महत्त्व नहीं है कि उनकी अलग शाखा मानी जाय ।

निर्गुणवाद की ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखाओं में तथा सगुणवाद की राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति शाखाओं में उपासनापद्धति विभिन्न होते हुए भी इनमें समानता पाई जाती है । एक ओर संतों में निर्गुणवाद के साथ सगुण-वाद आ गया है । दूसरी ओर तुलसी और कुछ एक कृष्ण कवियों ने निर्गुणवाद का निरूपण भी किया है । मीरा ने अपने विरह-विदग्ध उद्गारों में उसी परम तत्त्व का निर्देश किया है जो सगुण से निर्गुण की ओर आत्मा को प्रेरित करता है । यदि कबीर और जायसी में रहस्यवाद है तो सूर और मीरा में भी अपना-अपना रहस्यवाद है । कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम पुरुष के प्रति प्रकृति का प्रेम समझा जाता है । अथवा यों कहें कि गोपियाँ हमारी लौकिक इन्द्रियाँ हैं जो अगोचर के दर्शन गोचर कृष्ण में करना चाहती हैं । शरीर द्वारा जिस प्रकार चेतना का अनुभव होता है, उसी प्रकार सगुण द्वारा ही गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होना चाहती हैं । निर्गुणिया संतों और सूफियों ने आध्यात्मिक रहस्यवाद का प्रतिपादन किया और सगुणमतावलम्बी भक्तों ने पार्थिव रहस्यवाद का । इसका विस्तृत विवरण आगे चलकर दिया जायगा ।

इष्टदेव का गुण-गान करने के अतिरिक्त इन कवियों ने आध्यात्मिक अनुभूति के अन्य उपकरणों अर्थात् गुरु, भक्ति, साधुसंगति इत्यादि, और सामान्य धर्म—क्षमा, दया, भक्ति, विश्वास, शील आदि की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है ।

गौण रूप से समाज के प्रश्नों को भी कई एक कवियों ने उठाया है । वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, छुआछूत की समस्या तथा पर्दे की प्रथा, जाति-पाँति, रीति-रिवाज इत्यादि अनेक बातों का उल्लेख इनकी रचनाओं में मिलता है । संतों ने विशेषतया इस ओर ध्यान दिया, और न केवल हिन्दुओं में से बाह्याडम्बर को हटाने की चेष्टा की अपितु मुसलमानों की रीतियों का भी खंडन किया ।

यहाँ इतना निर्देश कर देना आवश्यक है कि निर्गुणिया कवियों का लक्ष्य ज्ञानोपपादन के साथ-साथ सामाजिक सुधार तथा सामान्य मार्ग का प्रचार भी था । इसी कारण से उनमें कवित्व की सरसता पर्याप्त नहीं थी । दूसरी ओर

सगुणोपासक कवियों में भावोद्‌भावना के कारण कवित्व की यथेष्टता है। सगुणोपासना भावप्रधान है और कला के रूप रस के अधिक निकट है। हृदय के भावों की सुन्दर और स्पष्ट अभिव्यक्ति के अतिरिक्त सगुणोपासक भक्तों ने प्रकृति का वर्णन भी मार्मिक और स्वाभाविक रीति से किया है। इन्हीं कारणों से प्रेममार्गी काव्य में ज्ञानमार्गी काव्य से कुछ अधिक कवित्व है और सगुणोपासकों की रचनाओं में काव्य और कला सब से अधिक है।

धार्मिक कवियों का ध्येय था अपने भावों को व्यक्त कर देना। वे अपने विचार जन-साधारण तक पहुँचा देना चाहते थे—उन्हीं के लिए वे लिखते थे।

भाषा

जन-साधारण की प्रचलित भाषा को अपनाना उनके लिए स्वाभाविक और अनिवार्य था। कबीर ने पश्चिमी भारत की बोलचाल की भाषा को माध्यम बनाया तो प्रेम-मार्गियों ने पूर्वी भारत की अवधी को। रामकाव्य के लिए श्रीराम की लीलाभूमि की अवधी भाषा उपयुक्त समझी गई तो कृष्ण-काव्य के लिए उनकी लीलाभूमि ब्रज की भाषा ली गई। इस प्रकार भक्त-कवियों ने विषय के अनुसार सभी प्रचलित शैलियों का उपयोग किया। अगले पृष्ठों में धार्मिकता की विभिन्न धाराओं का विस्तृत विवरण दिया जायगा जिससे उनकी अलग-अलग शैलियों का ठीक-ठीक परिचय मिल सके।

सन्त काव्य

सन्त-परम्परा का आरम्भ कब होता है, यह कहना बहुत कठिन है। सिद्धों और नाथों की परम्परा के विकास के रूप में भी इसे ग्रहण किया जाता है। हिन्दी में इस का आरम्भ जयदेव से माना जा सकता है। जयदेव (दो पद), सधना (एक पद), वेणी (तीन पद), त्रिलोचन (४ पद), नामदेव (६० से अधिक पद), रामानन्द (एक पद), सेना (एक पद), कबीर (लगभग २२५ पद और २५० साखियाँ), पीपाजी (एक पद), रैदास (४० पद), धन्ना (४ पद) की रचनाएँ सिक्खों के 'आदि ग्रन्थ' में संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त कबीर साहब की कृतियों के अनेक संग्रह हैं जिनमें बीजक, आनन्द रामसागर, गुरुनिधान, शब्दावली इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 'पीपाजी की बानी' संगृहीत तो है, पर अभी प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। रैदास जी के भी फुटकर पद इधर-उधर बिखरे मिल जाते हैं। गुरु नानक से पहले के उपर्युक्त सन्त सन्त-काव्य के प्रथम उत्थान के कवि हैं। इनके कार्यक्रम में कोई विशेष व्यवस्था दिखाई नहीं देती। उनमें किसी निश्चित सिद्धान्त का आग्रह नहीं है, किसी मत की स्थापना की प्रवृत्ति नहीं है। इन में कहीं-कहीं सगुणोपासना का मोह भी झलक जाता है। बौद्ध और नाथ सम्प्रदायों की साधनाओं का प्रभाव भी

स्पष्ट है। सं० १५५० तक समाप्त होने वाले इस काल के अन्त में हमें रामानन्द कबीर और रैदास में अपने मत के प्रचार की अभिलाषा प्रतीत होने लगती है। प्रायः सन्त छलहीन निर्द्वन्द्व और उल्लासपूर्ण हैं। कुछ इतिहासकारों ने कबीर को संतमत का प्रवर्तक माना है। उन्होंने ही वेदान्त, सहजयान, वज्रयान, शैवमत, तंत्रमत, हठयोग आदि अनेक उपकरणों के सम्मिश्रण से तथा नामदेव की परम्परा और अपने गुरु रामानन्द के अद्वैतवाद से निर्गुणधारा का उद्घाटन किया। कबीर और रैदास दो ही ऐसे कवि हैं जिनकी कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की मानी जा सकती हैं। भाषा सब की अटपटी और सम्मिश्रित है। इनकी वाणियों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

गुरु नानक से संतकाव्य का दूसरा उत्थान प्रारंभ होता है और २५० वर्ष तक यह धारा बड़ी प्रबल गति से बहती रही है। इस युग के कवियों की वाणी अधिक प्रामाणिक, विचारधारा अधिक स्पष्ट, संतसंगठन की भावना अधिक तीव्र और भाषा अधिक प्रान्तीय होती गई है। इस युग के उत्तरार्ध में पंथों का संगठन दृढ़ता के साथ होने लगा। सब ने अपनी-अपनी नियमावली बनाई, पूजन-पाठन के नियम निश्चित किये और शिष्य-परम्परा की स्थापना की। सब ने बाहरी मतों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की ताकि अपने-अपने सम्प्रदाय को अधिक व्यापक और उदार सिद्ध किया जा सके। इस युग की सक्रियता का एक परिणाम यह हुआ कि साहित्य की प्रचुर वृद्धि हुई। साहित्यिकता की दृष्टि से भी इस युग का काव्य महत्त्वपूर्ण है। फलतः अनुभूति की गहराई कम हो गई। कालान्तर में इस साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम भी निकला, संतमत अपने पूर्व रूप से विचलित हो गया और क्रमशः वैष्णव धर्म के प्राबल्य के सामने अपने प्रभाव को कायम नहीं रख सका। इस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

नानक—जपुजी, पट्टी, आरती, दखिणी ओंकार, सिद्ध गोष्ठी, आदि।
धर्मदास—फुटकर पद।
गुरु अमरदास—आदि ग्रंथ में संगृहीत 'आनंद' आदि रचनाएँ।
सिंगाजी—रसग्रह।
दादूदयाल—काया बेलि, दोहे, साखी और पद।
गुरु अर्जुनदेव—आदि ग्रंथ में संगृहीत सबद, पद, आदि।
बखना—१६० पदों और अनेक साखियों का संग्रह—'बखना जी की वाणी'।
गरीबदास (दादूपंथी)—गरीबदास जी की वाणी—साखी, चौबोले, पद आदि।
हरिदास निरंजनी—श्री हरि पुरुष की वाणी—पद, झूलने, कुंडलियाँ, साखियाँ।
मलूकदास—बानी, रतनखान, ज्ञानबोध।

रज्जबजी—बानी—साखियाँ, पद, सवैये, अरिल्ल, छप्पय, बावनी, आदि।
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रंथावली। हरिबोल, चितावनी, सवैया, ज्ञानसमुद्र, सुन्दर-विलास, अद्भुत उपदेश, इत्यादि।
अक्षर अनन्य—राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, सिद्धान्तबोध, ब्रह्मज्ञान, आदि।
यारी साहब—रत्नावली, फुटकर पद।
धरनीदास—शब्द प्रकाश, प्रेम परगास, रत्नावली, आदि।
गुलाब साहब—बानी, ज्ञान गुष्ठि, राम सहसनाम।
जगजीवनदास (सतनामी)—शब्द सागर।
वीरभान—आदि उपदेश।
दूलनदास—बानी, शब्दावली।
गरीबदास—बानी, ग्रंथ साहब—साखी, पद, रमैनी, आदि।
दरिया साहब (मारवाड़ वाले)—बानी।
दरिया साहब (बिहार वाले)—ज्ञान दीपक, दरिया सागर।
चरणदास—अनेक ग्रंथ—ज्ञान स्वरोदय आदि।
शिवनारायण—गुरु अन्यास, शब्दावली।
भीखा साहब—राम कुण्डलिया, रामजहाज, रामराग, आदि।
सहजो बाई—सहज प्रकाश।
दया बाई—दया बोध, विनय मालिका।
रामचरन (रामस्नेही)—अणभै वाणी।

सन्तकाव्य का तृतीय उत्थान पश्चिमी विचारधारा के प्रभाव का परिणाम है। इस युग के प्राय सभी सन्त सुशिक्षित विद्वान् और अनुभवी विचारक हैं। उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है और कथनशैली में तर्कपूर्णता चुटीलापन, स्पष्टवादिता आदि गुण हैं। कवित्व की दृष्टि से पलटू साहब और स्वामी रामतीर्थ की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं इनका सा भावोन्माद अन्यत्र सुलभ नहीं है। इस युग की रचनाएँ ये हैं—

पलटू साहब—कुण्डलिया, रेखते, झूलने, अरिल्ल और साखियाँ।
तुलसी साहब—घट रामायण, रत्न सागर, शब्दावली।
शिवदयाल (स्वामी जी महाराज)—पद संग्रह।
सालिगराम (हुजूर महाराज)—प्रेम बानी।
स्वामी रामतीर्थ—भजन आदि।

निर्गुणिया सन्तों में से कई एक के अलग-अलग सम्प्रदाय चले हुए हैं, जैसे कबीर पंथ, नानक पंथ, दादू पंथ, साधु सम्प्रदाय, चरणदासी मत, गरीबदासी पंथ, सतनामी पंथ, प्राणनाथी पंथ इत्यादि। इन सब में थोड़ा-थोड़ा अन्तर अवश्य

हैं, परन्तु समानता इतनी अधिक है कि इन्हें एक ही मत की विविध शाखाएँ समझना चाहिए। इन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों की निरर्थक रूढ़ियों का विरोध, और राम, कृष्ण, अल्लाह आदि की एकरूपता का प्रचार किया। हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के समय जिस शान्तिमयी वाणी की आवश्यकता थी संतों ने उसी की अभिव्यंजना की। वे साम्प्रदायिक झगड़ा मिटाना चाहते थे—इसी उद्देश्य से उन्होंने सब धर्मों की मिलती हुई साधारण बातें लेकर तथा उनकी स्पष्ट भिन्नताओं, जैसे मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि की असारता एक ओर दिखा कर तथा रोज़ा निमाज़ की दूसरी ओर दिखलाते हुए एक सामान्य भक्ति पद्धति निकाली।

संत-साहित्य में एक ईश्वर की उपासना का प्रतिपादन किया गया है। वह ईश्वर निराकार, अलख, निरंजन, ज्योति-स्वरूप, गुरुरूप, सत्पुरुष और सर्वव्यापी है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह केवल अनुभव-गम्य है। संतों की निराकार उपासना में श्रद्धा और भय नहीं, प्रेम और भक्ति है। चूंकि प्रेम और भक्ति के लिए अपने से भिन्न आराध्य की सत्ता माननी पड़ती है, इसलिए न तो ये अच्छी भांति निर्गुण का रूप स्थिर कर सके हैं और न सगुण की पूरी भक्ति ही। कबीर के परवर्ती संतों में यह अस्पष्टता बढ़ती ही गई है पर उनकी उपासनाशैली का कोई सिद्धान्त नहीं निकलता। वे कभी ब्रह्मवाद छाँटते हैं तो कभी अवतारवाद, कभी एकेश्वरवादी, अद्वैतवादी तो कभी-कभी सगुणोपासक बन जाते हैं। कभी भारतीय ब्रह्मवाद की, कभी पैगम्बरी एकेश्वरवाद की चर्चा करने लगते हैं। हमें तो कई बार सन्देह होने लगता है कि चरनदास को वैष्णव भक्त कहें अथवा निर्गुण उपासक, यारी साहब को सूफी कहें अथवा ज्ञानमार्गी, और दूलनदास और धरनीदास को भक्त कहें अथवा संत। अस्तु, संत-साहित्य में भक्ति का स्वरूप अस्पष्ट और असंगत ही रहा है।

संतों ने अपने ईश्वर को उन्हीं नामों से पुकारा है जिन नामों से सगुण-उपासक अपने इष्टदेव को पुकारते हैं। राम, गोविन्द और हरि का नाम बार-बार आता है। राम नाम की महिमा के गीत सब ने गाये हैं। कबीर, नानक, मलूक, धरमदास, दूलनदास, सबने माना है कि इस दुःखमय असार संसार जगत् में स्थायी सुख का कोई साधन है तो वह राम नाम ही है। दादू ने 'निरंजन राम' का उल्लेख बहुत अधिक किया है। चरनदास और सहजो ने 'राम नाम' के साथ कृष्ण की उपासना की है और दूलन ने हनुमान का स्मरण भी किया है। सब ने माना है कि नाम ही उस प्रभु से मिलाता है। उन सब के लिए प्रिय नाम केवल 'सत्' अथवा 'नाम' मात्र है। इन दो को मिलाकर ये कभी-कभी 'सतनाम' शब्द प्रयोग करते हैं। उस 'नाम' का महत्त्व संतों ने बताया है और उसके स्मरण का उपदेश भी दिया है। नाम-स्मरण संतों की प्रमुख साधना है। नाम को जपने से

अन्तर् में रस उमड़ता है और प्रिय के दर्शन होते हैं। वह प्रिय हमारे भीतर है—उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं। हमारे भीतर ही मस्जिद और मंदिर है—अंतर के पट खोले बिना उस प्रियतम से मिलन नहीं हो सकता।

संतों की 'नाम' साधना भी अपने ढंग की है। इसके लिए न माला की आवश्यकता है न आसन जमाकर जप करने की। जप की विधि तो स्वयं निष्पन्न होती रहती है। इसीलिए इसे 'अजपा जाप' कहा गया है। इसकी समाधि भी योगाभ्यासियों की समाधि से भिन्न 'सहज समाधि' बताई गई है। 'नामस्मरण' एक योग है, जिसे शब्द योग कहा गया है। अतः इस प्रसंग में संतों ने योगसाधना की प्रक्रिया का उल्लेख कई स्थलों पर किया है। हमारा पिंड या शरीर ब्रह्माण्ड है। जो ब्रह्माण्ड में है वही इस घट में है। परमात्मा का यह मंदिर ब्रह्माण्ड की तरह रहस्यमय है। योगियों की भाँति अधिकतर सन्त मानते हैं कि मानव शरीर की रचना में तीन नाड़ियाँ—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना,—तथा सात कमल—मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, आवाहन चक्र, विशुद्ध चक्र, और इन सब के ऊपर एक शीर्ष कमल सहस्रार चक्र—प्रधान हैं। गुदास्थान एवं जननेन्द्रिय के बीच मूलाधार या मूल नाम का कमल है जिसके चार दलों में सूर्य का निवास है। इस के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र या 'स्वाद' छः दलों का कमल है। मणिपूर या नाभिचक्र दस दलों का, हृदयचक्र या आवाहन बारह दलों का, षट्-चक्र या 'विशुद्ध' सोलह दलों का कमल है। दो भौंहों के बीच में आज्ञा चक्र है जिसके केवल दो दल हैं। शीर्षकमल या सहस्रार सहस्रदल कमल है जो मस्तिष्क प्रदेश में अवस्थित है। सहस्रार में नित्यपुरुष का वास है। सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार के सब से निचले भाग से चल कर मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में ऊपर की ओर जाती है। इड़ा और पिंगला इस के साथ लिपटी हुई है। इड़ा का अन्त बाईं नाक तक और पिंगला का दाहिनी नाक तक है। सुषुम्ना भ्रुकुटी में होकर ब्रह्मरंध्र या भवर गुफा तक चली जाती है। चक्र सुषुम्ना नाड़ी के अवस्थान माने जाते हैं। सब से निचले चक्र अर्थात् मूलाधार में कुंडलिनी सर्पिणी की भाँति सुप्त रहती है। साधक जब कुंभक प्राणायाम के द्वारा योग-प्रक्रिया आरम्भ करता है तो यह कुंडलिनी जागृत होकर सुषुम्ना के सहारे ऊपर की ओर अग्रसर होती है और क्रमशः ऊपर चक्रों को भेदती हुई तथा उनमें निहित शक्ति को उद्बुद्ध करती हुई सहस्रार तक पहुँचती है। वहाँ यह ब्रह्मरन्ध्री 'शिव' के साथ मिल जाती है और इस प्रकार समाधि लग जाती है। यहीं अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है, यहीं अमृत रस का स्वाद मिलता है। यही 'कुंडलिनी योग' का लक्ष्य है।

संतों ने अष्टांगयोग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का उल्लेख तो किया है लेकिन न तो इसका विस्तार से वर्णन

किया है और न ही 'सहयोग' के लिए हठयोग की क्रियाओं को नितान्त आवश्यक माना है। अलबत्ता प्राणायाम को सहायक साधना के रूप में एवं नामस्मरण के पूरक के रूप में स्वीकार किया है।

संतों की यह योगप्रणाली अधिकांशत: गोरखनाथ सम्प्रदाय से अपनाई गई है।

सब संतों ने अपने को प्रभु की पतिव्रता नारी के रूप में देखा है। सहजो ने ईश्वर को माँ भी कहा है। कबीर ने भी 'हरि जननी मैं बालक तोरा' कह कर हरि को माता बतलाया था। परन्तु प्रायः सबने परमात्मा को 'प्रियतम' और जीव को 'दुलहिन' कहा है। दुलहिन अपने दूल्हा से मिलने को सदा उत्सुक रहती है। पतिव्रता का सब कुछ वही है। इसी भावना में आकर मलूकदास ने कहा है—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

उनका यह आशय नहीं कि हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जायें, यद्यपि अकर्मण्यता और प्रमाद का पोषण करने वाले इसका यही अर्थ लेते हैं। वास्तव में मलूका अपने को ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण करते हैं। ऐसी निर्भरता सब संतों में पाई जाती है जिसमें 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' एकमात्र प्रभु का आश्रय लिया जाता है। सहजो कहती है कि उस स्वामी की गोद में जाकर अब किसी के सामने आँचल क्या पसारूँ, हाथ क्यों फैलाऊँ? पती को औरों से याचना करते जानकर हरि कैसे गवारा कर सकेंगे? सुन्दरदास और चरनदास का यही मत है कि 'सबै देवता छोड़ के जपिये हरि नाम'। जीव के प्रेम में वही अनन्यता होनी चाहिये जो पतिव्रता के पति-प्रेम में होती है।

संतों के इस रहस्यवाद में अद्वैतवाद और सूफी शैलियों का सम्मिश्रण हुआ है। इसमें आत्मा परमात्मा से मिलकर एक रूप धारण करती है—दोनों में कोई भिन्नता नहीं रहती। शायद निर्गुणवाद में सरसता लाने के लिए शृंगार का यह पुट दिया गया है। 'सुहाग' की घड़ी का सब सन्त-कवियों ने स्वागत किया है। सन्तों ने एक स्वर से गाया है कि जीव का तब तक कल्याण नहीं हो सकता जब तक पति के साथ उसकी 'सगाई' न हो जाय। परन्तु इस सम्बन्ध से पहले, 'सुहाग' की घड़ी आने तक, आत्मा को दीर्घकाल तक विरह की ज्वाला में जलना पड़ता है। विरह की यह ज्वाला अमृतमयी है, क्योंकि इसमें 'पिउ मिलन की आस' बराबर बनी रहती है। मिलन की निरन्तर प्रतीक्षा में विरह की घड़ियाँ सुखकर ही होती हैं। अतः सब सन्तों में अनन्त मिलन का उल्लास और अनन्त

विरह की वेदना का अपूर्व अभिव्यंजन है। संयोग और वियोग शृंगार की सजीव और मार्मिक कविता सन्त-साहित्य में प्राप्त होती है।

सन्तों ने आध्यात्मिक स्थिति अथवा मिलन के आनन्द का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रगट की है। शब्दों में उस अनुभूति का वर्णन कैसे हो? वह तो स्वयं वेद्य है, 'गूंगे का गुड़' है। इसी लिए सन्तों की वाणी जगह-जगह अटपटी सी हो जाती है। वे उस अगम्य, असीम तत्त्व को प्रगट नहीं कर पाते, केवल संकेत ही कर सकते हैं।

अविगत अकल अनुपम देख्या कहता कह्या न जाई।
सैन करै मन ही मन रहसै गूंगे जानि मिठाई॥ (कबीर)

स्वानुभूति की अस्फुट अभिव्यक्ति के कारण सन्तों की रचना रहस्यमयी बन गई है और उसकी विशेषता प्रतीकों और संकेतों के प्रयोग में लक्षित होती है।

प्रेम का मार्ग अति कठिन है। इस प्रेम के लिए सीस चढ़ाना पड़ता है। शरीर का दीपक बनाकर इसमें रक्त का तेल और प्राणों की बत्ती जलानी पड़ती है। हृदय निर्मल हुए बिना यह साधना नहीं हो सकती। हृदय पवित्र हो और भगवान् की प्यास हो तभी हरि की झांकी मिलेगी। इस दृष्टि से सन्तों ने लोक भावना पर इतना ध्यान नहीं दिया जितना व्यक्तिगत विकास पर। सन्त कवियों ने व्यक्तिगत जीवन को अत्यन्त सरल, निश्छल और स्वाभाविक बनाने का उपदेश दिया है तथा सदाचार आदि पर विशेष जोर दिया है। उनके अपने जीवन का आदर्श भी यही है। सन्त का जीवन परोपकार का जीवन है। वह द्वेष, गर्व, कपट, स्वार्थ, साम्प्रदायिकता एवं बाह्याडम्बर से दूर रहे और निष्काम भाव से सब की सेवा करे। मैं और तू अथवा ऊंच-नीच, हिन्दू-मुसलिम, शत्रु-मित्र, की क्षुद्रता से ऊपर उठकर वह सारे विश्व से भ्रातृभाव रखे। न वह किसी की निन्दा करे, न दूसरों की निन्दा की परवाह करे। उसकी ईश्वर में दृढ़ आस्था हो और वह अपनी असफलता एवं पापीपन को उसके समक्ष स्वीकार करे।

वैयक्तिक सुधार अथवा ईश्वर-प्राप्ति के लिए गुरु का सहारा अवश्य चाहिए। 'बिना गुरु होय न ज्ञान' सनातन सत्य है। कबीर, नानक, दादू, सुन्दर, मलूक, सब ने माना है कि बिना गुरु अन्धकार नहीं जाता। गुरु-मुख से 'सबद' सुनते ही अन्तर् की आंखें खुल जाती हैं। गुरु [illegible] से हमारा 'साक्षात्कार' कराता है। गुरु की कृपा से ही घोर [illegible] से [illegible] होता। गुरु की महिमा ईश्वर के बराबर है। [illegible] देखो [illegible] मानते हैं वह सब गुरु ही के [illegible] है।

सहजो और दया गुरु का गुणानुवाद करते कभी थकती ही नहीं। सब संत-कवि गुरु की वंदना करके अपने विषय का प्रतिपादन करते हैं।

साधना की राह में माया की प्रबल बाधा रहती है। इसने संसार को वश में कर रखा है—इसका सम्बन्ध कनक और कामिनी से है। इस जगत् को 'अपना' समझकर हम इससे लिपटे जो हुए हैं, इसी लिए परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता। जो जगत की उपासना करे वह भक्त या ज्ञानी कैसा! संसार के साथ संघर्ष में न लग कर मन को संसार से मोड़ लेना चाहिये। "रहना नहिं देस बिराना है", "संसार मिथ्या है", "यह जगत् पानी के बुलबुले की भांति क्षणभंगुर है"। यह हमारा शरीर, जिस का हमें बड़ा अभिमान है, एक कच्चे घड़े के समान है, जरा सी ठेस लगी और वह गया। मनुष्य का शरीर परम दुर्लभ है, जिसे भी यह मिल गया वह मुक्ति का अधिकारी हो गया। मुक्ति के अधिकारी को नरक का सामान जमा करते देख संतों को दुःख होता है।

साधना के पथ में चलते हुए संतों को अपनी कुटेवों और दुर्बलताओं का स्मरण हो आता है, परन्तु वे निराश नहीं होते। प्रभु इन अवगुणों और पापों को चित्त में नहीं लाते। वे इनको अनदेखी-अनसुनी कर के अपनाते हैं—बच्चे से सौ चूक हो जाय, फिर भी माँ उसे कैसे छोड़ेगी।

नाम की साधना में जाति, आश्रम, ब्राह्मण, चाण्डाल, पुरुष-स्त्री आदि का भेद या प्रतिबन्ध नहीं है। 'हरि को भजे सो हरि का होई।' राम-नाम लेने का सब को समानाधिकार है। संत कवि रूढ़ियों के विरोध में बहुत कह गये हैं।

संतकाव्य में प्रकृति-चित्रण का अभाव-सा है। उसमें आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक पक्ष ही प्रधान है। संत तो साधक थे, अतः उनका अन्तर्मुखी होना स्वाभाविक ही है।

निर्गुणिया संतों के सम्बन्ध में इतना कह देना आवश्यक है कि इनकी बातें परिमित हैं। बहुत कम संत हैं जिन में कुछ मौलिकता है। साधारणतः सब ने वही इनी-गिनी बातें बार-बार दुहराई हैं। और १८वीं, १९वीं शताब्दी के संत-काव्य में कोई विशेषता रह ही नहीं जाती। कुछ एक ने परम्परा का पालन ही किया है। कबीर, दादू और सुन्दर सरीखे बहुत कम कवि हैं जिनकी रचना उच्च साहित्य के अन्तर्गत आ सकती है!

अधिकांश संत कवि अशिक्षित थे। जो कुछ उन्होंने कहा है अपने अनुभव की प्रेरणा से कहा है। शिक्षित समाज में इनका बहुत कम आदर हुआ है। कबीर में तर्क और वाद-विवाद की कठोरता और कर्कशता होने के कारण इनमें मधुरता और सरसता कम ही है। फलतः धरमदास, दादू और नानक में

सरलता और सरसता कबीर से अधिक है। सुन्दरदास की रचना साहित्यिकता की कसौटी पर पूरी उतरती है। उसमें काल और देश की प्रवृत्तियों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है यद्यपि प्राय संतों ने समाज की समस्याओं की उपेक्षा की है। सुन्दर सुशिक्षित थे—इनकी बानी में व्यर्थ की तुकबंदी और ऊटपटांग की बातें नहीं हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये संत साधक थे, कवि नहीं थे; परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि इनकी कृतियों का हिन्दी-साहित्य में बड़ा महत्त्व है। साहित्य वही है जो मानव-समाज की सर्वकालीन भावनाओं का निरन्तर पोषण करता हुआ संसार के क्लेश, अशांति, संघर्ष, और उद्वेग के विचारों को प्रभावित करके मनुष्य की आत्मा में स्वाभाविक शांति, प्रेम, स्फूर्ति और सर्जना-शक्ति को उत्पन्न करता रहे। कौन नहीं समझता कि संत-साहित्य शाश्वत रूप से एक-रस आज भी यथावत जीवन-सन्देश को सुनाने में समर्थ है। संतों ने संसार के दुःख को दूर करने का जो व्रत लिया उसमें उन्हें आत्म-तृप्ति प्राप्त हुई है और उससे संसार का भी निश्चय ही कल्याण होता रहेगा। उनकी विषय-सम्बन्धिनी सुष्ठता मान भी ली जाय तो भी उनकी रचना उपादेयता से खाली नहीं है।

संतों की वाणी में अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भले ही न हो, भावना का सौन्दर्य अवश्य है। काव्य का बाह्य रूप भले ही असुन्दर मान लिया जाये उसके विषय का सौन्दर्य बहुत कुछ है। वास्तविक सौन्दर्य वही है जिसे कवि ने अपने अन्तर् में अनुभव किया है। संतों की सौन्दर्यानुभूति सत्यनिष्ठ है। अलबत्त जहाँ वे उपदेशक बनने लगते हैं, वहाँ वह सरसता नहीं मिलती जो साधनाप्रधान वाणी में है।

साहित्य का एक और उद्देश्य भी है—सत्यान्वेषण की लगन पैदा करना। दूसरे लोग जहाँ जगत् के साथ ऊपर-ऊपर का सम्बन्ध रखते हैं, वहाँ ये मर्मी या साधक कवि उसकी अन्तरात्मा में पैठ कर निकले हैं। संसार, ईश्वर, और आत्मा के विषय में जिस लगन या अन्वेषण करके इन्होंने हिन्दी-साहित्य द्वारा हमें साक्षात्कार कराया है वह किसी अन्य साहित्य में प्राप्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि संतों ने उस 'रस' का, जो साहित्य की आत्मिक चेतना है, अधिक परिमाण में संचार किया है। इस बात में काव्य-कला की कसौटी पर पूरा उतरने वाला कोई भी काव्य संत-साहित्य की रस-धारा से ईर्ष्या नहीं कर सकता।

संत-काव्य में खड़ी बोली का प्राधान्य है। संतों का ध्येय था ईश्वर-भक्ति-प्रचार, और इसके लिए जन-समाज की भाषा ही उपयुक्त थी।

भाषा

इसमें ब्रजभाषा और अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी यत्र-तत्र ... भिन्न-भिन्न जातियों, प्रदेशों

और सम्प्रदायों में होता था। उनके प्रभाव से और उनपर प्रभाव डालने के लिए वे मधुकरी भाषा का प्रयोग करते थे। कबीर की साखी बानी में राजस्थानी और पंजाबी मिली हुई है। गीतों में ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी भाषा भी है। नानक ने भी हिन्दी में पंजाबी भाषा और खड़ी बोली का प्रयोग किया है। दादू में भी पश्चिमी हिन्दी के साथ राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी का मेल पाया जाता है। मलूका में खड़ी बोली का सुन्दर रूप मिलता है। सुन्दर की कविता में ब्रजभाषा का प्राधान्य है।

संतों की कविता हिन्दू और मुसलमान, सबके लिए है। इसलिए सब ने अरबी-फारसी का भी स्वतन्त्र प्रयोग किया है। जहाँ पर इन्होंने सूफी साधना अथवा प्रेमतत्त्व का वर्णन किया है वहाँ भी फारसी और अरबी शब्द आ गए हैं।

संत-काव्य में प्रायः शिष्ट अथवा परिष्कृत भाषा का अभाव है। इन साधकों की दृष्टि भी भाषा की शुद्धता पर न थी। वे तो किसी तरह अपने भाव प्रकट करना चाहते थे। बातों में सरलता अवश्य है। भाषा में संयतता नहीं है—भावावेश बहुत है, तीव्रता और ओज खूब है।

संत-कवि न तो भाषा के आचार्य थे न छन्द-शास्त्र के। वे अपनी कविताओं को शिल्प की खराद पर चढ़ाना नहीं जानते थे। मात्राओं के घट-बढ़ जाने की चिन्ता उनके लिए व्यर्थ था।

छंदों में तो दोहा का प्राधान्य वीरकाल के बाद भी बना रहा। संतों की अधिकांश बानी दोहों में है—साखियों में दोहे का ही प्रयोग है। चौपाई का प्रयोग प्रायः शब्दों में किया गया है। सुन्दरदास और मलूका ने कवित्त का सुन्दर प्रयोग किया है। दादू की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा किसी-किसी कवि के में मिलते हैं।

निर्गुणिया संतों की कविता में रूढ़ियों और अलंकारों का अभाव है। इन्हें अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा लगाने का चाव नहीं था। जो अलंकार इनमें मिलते हैं वे उन्होंने खोज कर नहीं बैठाये हैं। कला और कलावादी संत-साहित्य में नहीं है। प्रतीकात्मक होने के कारण संत-काव्य में रूपक का प्रयोग सब से अधिक हुआ है। विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण, दृष्टान्त आदि अलंकार भी प्रयुक्त किये गये हैं। उलटबाँसियों में विरोध, यमक और अनुप्रास भी आ गये हैं। नखशिख का सरीखा उलटबाँसियों में कवि गया है। प्रायः सब प्रसिद्ध संतों के अन्तर्गत आते हैं।

संत-काव्य का प्रधान रस है शान्त और स्थायी भाव है निर्वेद। आत्मा का विरह-वर्णन करने में संयोग शृंगार रस मिलता है। संयोग शृंगार की भावना बहुत ही न्यून है, संतों की भक्ति दाम्पत्य भाव की है। कहीं-कहीं ईश्वर की जिज्ञासा

के वर्णन में तथा सृष्टि और माया के चित्रण में, अथवा 'कामिनी' का वर्णन करने में क्रमशः अद्भुत और बीभत्स रस भी पाये जाते हैं। अन्य रसों के उदाहरण भी यत्र-तत्र मिल जायेंगे। लेकिन, संतवाणी में सम्भवतः शान्त रस को छोड़कर किसी रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो पाई, क्योंकि संतकाव्य में प्रबन्धात्मक रचनाओं का अभाव है।

संत-काव्य की रचना-शैली अनेक प्रकार की है। कबीर जी का एक 'बीजक' ६००-७०० पदों का संग्रह है और दयाबाई और सहजोबाई की सारी वाणी १०० पदों से ऊपर है। किसी संत कवि के १००० पद हैं तो दूसरे के

कलेवर १२०० और किसी के १४०० भी हो गये हैं। कुल मिलाकर संत-साहित्य का कलेवर बहुत बड़ा है। कई विषयों का बड़ा विस्तार किया गया है और सिद्धान्तों की व्याख्या में बहुत कुछ बार-बार कह दिया गया है। संतों के अनुयायियों ने अपने गुरुओं को ईश्वरीय महत्त्व देते हुए पौराणिक देवताओं के साथ उनकी गोष्ठियाँ वर्णित की हैं। उन गुरुओं की स्तुतियों में बहुत-सा पर्याप्त साहित्य भरा पड़ा है। प्रयोगों की कमी भी संतसाहित्य में नहीं है।

इस में संदेह नहीं कि उत्तरकालीन संतों (प्राणनाथ, धरणीदास आदि) ने दूसरों के अनुकरण में कथाओं, मंगलवियों और चरितों की शैली को अपनाया, परन्तु संतों की प्राचीन रचनाएँ प्रायः मुक्तक हैं। कवित्व की दृष्टि से सब से सुन्दर कृतियाँ वे पद, 'सबद' या भजन हैं जिन में स्वानुभूति की गहराई है। ये पद गेय हैं और राग-रागनियों के संदर्भ में लिखे गये हैं। 'साखियाँ' दोहा छंद में हैं और इन में नित्य प्रति के प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। किन्हीं-किन्हीं परवर्ती सन्तों ने अपनी साखियों को विषयवार अंगों में विभाजित किया है, जैसे 'गुरुदेव को अंग', 'सुमिरण को अंग', 'विरह को अंग', इत्यादि। दादूदयाल की साखियों को रज्जब ने ३७ अंगों में विभाजित किया। दोहा-चौपाइयों का एक-साथ प्रयोग कबीर की रमैनी और ग्रंथ बावनी में, नानक और अन्य सिख गुरुओं की वाणी में और परवर्ती संतों की वर्णनात्मक रचनाओं में हुआ है। नागरी के बावन अक्षरों को क्रमशः आरंभ में रख कर पद्य-रचना हुई है—कबीर की ग्रंथ बावनी, और अखरावती, कबीरपंथी 'ज्ञान चौंतीसा', गुरुग्रन्थ में बावन अखरी, धरनीदास का 'ककहरा' इसके उदाहरण हैं। फारसी की वर्णमाला का व्यवहार भी हुआ है। तिथियों, वारों और बारह मासों को लेकर भी रचनाएँ की गई हैं। आदिग्रंथ में इन सब के उदाहरण मिलते हैं। इन के अतिरिक्त रज्जब, सहजोबाई और हरिदास ने तिथियों द्वारा और सुंदरदास, गुलाल साहब, भीखा साहब, धरनी साहब ने बारह मासों द्वारा सुन्दर अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत की हैं।

संतों की साम्प्रदायिक कृतियों में 'गोष्ठियाँ' भी प्राप्त होती हैं जो प्रश्नोत्तर

के रूप में हैं। ऐसी गोष्ठियों की परम्परा कम-से-कम नामपंथियों के समय से चली आती है। कबीर, नानक, दरिया साहब बिहारी और तुलसी साहब से सम्बंधित 'गोष्ठियां' महत्वपूर्ण हैं। संत तुलसी साह ने गोष्ठी की जगह 'संवाद' शब्द का प्रयोग किया है।

संतकाव्य की एक और विशेषता उसकी उलट-बासियों में पाई जाती है। उलटबासियों के शब्दों में स्वभाव-विरुद्ध एवं प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध घटनें यानी ऊटपटांग बातों का उल्लेख रहता है। कुछ समीक्षकों ने इन्हें 'अधम काव्य' कहा है। लेकिन, शब्दों के गूढ़ अर्थ को समझने वाले उनका आनंद उठाते हैं। संतों के रहस्यवाद का ये विशिष्ट अंग है। इनका सम्बंध संतों की साधना और अनुभूति की अभिव्यक्ति से है। प्राय विषयों के शीर्षक आधुनिक सम्पादकों ने दिये हैं, परन्तु प्राचीन संस्करणों में विषयों के नाम, अध्यायों के शीर्षक आदि नहीं मिलते। दोहा, कुण्डली, और कुछ एक और छन्दों को छोड़ अधिकतर शब्दों और पदों का आकार भी निश्चित नहीं है। विषयों का क्रम भी निश्चित नहीं जान पड़ता। प्रायः गुरु-वंदना आरम्भ में आती है, परन्तु अनेक वाणियों में पहले ईश-विनय की गई है। गुरु-भक्ति के पद वाणी के बीच में, अन्त में और अन्य विषयों के साथ भी रखे गये हैं। एक पद ईश्वर पर है, दूसरा जातपांत पर, तीसरा गुरु पर, चौथा फिर ईश-विनय पर, पांचवां तीर्थों पर, छठा फिर गुरु-महिमा पर इत्यादि। मन की लहर जिधर चल पड़ी, चल पड़ी। जो विषय जब और जहां सामने आ गया उसी पर कुछ कह दिया। कहीं कहीं एक ही विषय की उक्तियों में परस्पर-विरोध भी आ गया है। पुनरुक्तियां तो सैकड़ों ही मिलती हैं।

'सन्तों की कुछ वाणियां' नीचे उद्धृत की जाती हैं—

(१)

आनीले कुंभ भराईले ऊदक, ठाकुर कउ इसनान करउ।
बइआलीस लख जी जल महि होते, बीठलु भैला काइ करउ ॥१॥
जत जाउ तत बीठलु भैला। महा अनंद करे सदकेला ॥रहाउ(टेक
आनीले फूल परोईले माला, ठाकुर की हउ पूज करउ।
पहिले बासु लई है भवरह, बीठलु भैला काइ करउ ॥२॥
आनीले दूधु रीधाईले खीरं, ठाकुर कउ नैवेदु करउ।
पहिले दूधु बिटारिउ बछरै, बीठलु भैला काइ करउ ॥३॥
ईभै बीठलु ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसार नही।
थान थनंतरि नामा प्रणवै, पूरि रहिउ तूं सरब मही ॥४॥

(नामदेव;

संत नामदेव, जिन्हें कबीर तक आदर्श भक्त के रूप में मानते थे, उनुन और

निर्गुण दोनों उपासनाओं के मानने वाले जान पड़ते हैं। उनकी कथनशैली में छलहीनता, निर्भीकता और एकनिष्ठा आदि गुण व्याप्त हैं।

(२)

विरह जलाई मैं जलौं, जलती जलहरि जाऊँ।
मो देख्या जल हरि जलै, संतो कहा बुझाऊँ॥
हिरदा भीतरि दौं बलै, धुवां न परगट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ॥
कबीर सीप समुंद की, रटै पियास पियास।
समुदहि तिणका करि गिणै, स्वाति बूंद की आस॥(कबीर)

(३)

संतो सहज समाधि भली है।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली है॥

जब से दया भयी सतगुरु की, सुरति न अनत चली है॥
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा।
घर बन खंड सम लेखौं, भाव मिटायौं दूजा॥
शब्द निरंतर मनुवा राचा, मलिन वासना त्यागी।
जागत सोवत ऊठत बैठत, ऐसी तारी लागी॥
आँख न मूंदूं, कान न रूंधूं, काया-कष्ट न धारूं।
उघरे नैनन साहेब देखूं, सुन्दर वदन निहारूं॥
कहँहि कबीर यह उन्मनि रहनी, सो परगट करि गाई।
दुख-सुख के वह परे परमपद, सो पद है सुखदाई॥
(कबीर)

कबीर की रचनाओं में काव्यकला का प्रदर्शन नहीं है। उनके बहुत से पद मनोरम और सुन्दर भी बन पड़े हैं। कबीर का जो उच्च स्थान हिन्दी साहित्य में है वह इन्हीं स्पष्ट, चुटीले और सरल पदों के कारण है। ऐसे पद आचार, नीति और समाज सम्बन्धी हैं। माया, ईश्वर और अज्ञान आदि विषयों की चर्चा बोध-गम्य नहीं है। कबीर साहब वस्तुतः सत्य के पुजारी थे। इस सत्य के कथन में वे निर्भीक और निर्द्वन्द्व थे। उनकी साधना स्वानुभूति और सद्विचार से संबंध रखती है।

(४)

माधो भरम कैसेहु न बिलाइ, ताते द्वैत दरसै आई॥टेक॥
कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों, ब्रह्म जीव इति ऐसा॥१॥
बिमल एक रस उपजै न बिनसै, उदय अस्त दोउ नाहीं।
बिगता बिगत घटै नहिं कबहूं, बसत बसै सब माहीं॥२॥

निरंजन निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोविंदा।
अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ॥३॥

(रैदास)

रैदास की रचनाओं से उनका दैन्य, गहरा भगवत्प्रेम, हृदयग्राही आत्मनिवेदन और दृढ़ विश्वास प्रगट होता है। उनकी कविता में भक्ति भी है, ओज भी और कला भी।

(५)

भया दीवाणा साहु का नानक बौराना।
हउँ हरि बिनु अवर न जाना ॥रहाउ॥
तब दीवाणा जाणिये जो भय दीवाणा होइ।
एकी साहिब बाहरी दूजा अवर न जानै कोइ ॥
तब दीवाणा जाणियें जौ साहिब धरे पियार।
मंदा जाणै आपको और भला संसार ॥

(नानक)

इनकी कविता की विशेषता है इनकी सरलता, स्वाभाविकता, मर्मोत्पादकता और सहज सुन्दरता। इन्होंने नाम-साधना पर विशेष बल दिया है। इनकी कथन-शैली में भावगाम्भीर्य के साथ-साथ मस्ती की झलक भी मिलती है।

(६)

नांव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुन गाइ।
दादू सुमिरण प्रीति सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥
नांव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ ॥
नांव न आवै तब दुखी, आवै सुख संतोष।
दादू सेवक राम का, दूजा हरख न सोक ॥

(दादूदयाल)

दादू नम्र, क्षमाशील, और दयालु सत थे ही, वे प्रेमोन्मत्त कवि भी थे। इनकी रचना में कबीर की सी दुरूहता अथवा रहस्यपूर्णता नहीं है। वह ओज और चमत्कार भी नहीं है, पर माधुर्य कबीर से अवश्य अधिक है।

(७)

माई मेरो प्रीतमु रामु बतावहु री माई।
हउ हरि बिनु खिनु पलु रहि न सकउं, जैसे करहलु बेलि रिताई ॥
हमरा मनु बैराग बिरकतु भइउ, हरि दरसन मीत कै ताई।
जैसे अलि कमला बिनु रहि न सकै, तैसे मोहि हरि बिनु रहनु न जाई ॥

राखु सरणि जगदीसुर पिआरे, मोहि सरधा पूरि हरि गुसाईं ।
जन नानक कै मनु अनंदु होत है, हरि दरसनु निमख दिखाई ।।
(गुरु रामदास)

इनके सभी पद छोटे-छोटे और भावपूर्ण हैं। परमात्मा के प्रति पूर्ण अनुरक्ति और साधना इनकी अभिव्यक्ति के विशेष गुण हैं। इनकी वर्णन-शैली से जान पड़ता है कि इन्हें काव्य-रचना पर अच्छा अधिकार प्राप्त था।

(८)

सभ किछु घर महि बाहरि नाही । बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही ।
गुर परसादी जिनी अंतरि पाइआ, सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ ।।१।।
झिमि झिमि अंम्रित धारा । मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा ।
अनद बिनोद करे दिन राती । सदा सदा हरिकेला जीउ ।।२।।
जनम जनम का विछुड़िआ मिलिआ, साध क्रिपाते सूका हरिआ ।
सुमति पाए नाम धिआए, गुरमुखि होए मेला जीउ ।।३।।
जल तरंग जिउ जलहि समाइआ । तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ ।
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा, बहुड़ि न होइअै जउला जीउ ।।४।।
(अर्जनदेव)

गुरु अर्जन बड़े योग्य विचारक और तपस्वी सन्त थे। सत्यनिष्ठा, विश्वप्रेम, और सरसता उनकी कविता के विशेष गुण हैं।

(९)

अवधू आसण बैसण झूठा, जब लग मन बिसराम न पावै ।
पल तजि फिरै न पूठा ।।टेक।।
ग्यान गुफा जाणं नहिं जोगी, अगम अरथ कहा बूझै ।
पाँच अगनि में पड़ि पड़ि दाझै, या सीतल ठौर न सूझै ।।
त्रिबिध बिकार बालि करि ईंधण, धूँई ध्यान न धारै ।
कहा अगनि आकाश न भेदै, तो पारा क्यूं मारै ।।
निगम अगम तहाँ लागै आसन, गरज नाद नित बाजै ।
नमरी माहि अगति बसि भूला, जहाँ तहाँ उठि भाजै ।।
मन महि पवन अटकि के उलटा, परम जोग उर धारै ।
जन हरिदास निरवाम भरम तजि, निरगुण तत निसतारै ।।
(हरिदास निरंजनी)

इनके अनेक पद सरस और गंभीर हैं। उनमें योगसम्बन्धी साधनाओं के अतिरिक्त सन्त-मत के सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला गया है। इनकी शैली सुबोध और सरल है।

(१०)

देव पितर मेरे हरि के दास । गाजत हौं तिनके विस्वास ॥
साधु जन पूजौं चित लाई । जिनके दरसन हिया जुड़ाई ॥

× × × ×

तेरा मैं दीदार-दिवाना ।
घड़ी-घड़ी तुझे देखा चाहूँ सुन साहेब रहमाना ॥

(मलूकदास

जहाँ-जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ-तहाँ फिरै गाय ।
कहैं मलूक जहाँ संत जन, तहँ रमैया जाय ॥

(मलूकदास)

इनकी सर्वोत्तम रचनाएँ आत्मबोध, वैराग्य तथा प्रेम का उपदेश देती हैं। उनमें इनका अटल विश्वास, विश्वप्रेम और प्रगाढ़ अनुभव झलकता है। इनकी भाषा सरल ओजपूर्ण और सुन्दर है।

(११)

मैं आयें माया भई, मैं नाहीं तब नाहीं ।
रज्जब मुकता मैं बिना, बंधन मैं ही माहीं ॥
अपना पड़दा आपही, सूरज समझै नाहीं ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, यहु अंतर इस माहीं ॥

(रज्जब)

निहकामी सेवा करै, ज्यूं धरती आकास ।
चंद सूर पाणी पवन, त्यूं रज्जब निज दास ॥

रज्जब जी बड़े ज्ञानी और विद्वान् साधक थे। वे सन्त होने के अतिरिक्त अच्छे कवि भी थे। उनकी रचनाओं में दृष्टान्तों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है जिनसे उनका विस्तृत अनुभव और गंभीर चिन्तन प्रकट होता है।

(१२)

देखहु दुरमति या संसार की ।
हरि सो हीरा छाँड़ि हाथ तें, बाँधत मोट बिकार की ॥
नाना विधि के करम कमावत, खबरि नहीं सिर भार की ।
झूठे सुख में भूलि रहे हैं, फूटी आँख गँवार की ॥
कोई खेती कोइ बनजी लागै, कोइ आस हथ्यार की ।
अंध धुंध में चहुँ दिसि ध्यावै, सुधि बिसरी करतार की ॥
नरक जानिके मारग चालै, सुनि ज्ञान अवतार की ।
[illegible]

बारम्बार पुकार कहत हौं, सौहैं सिरजनहार को।
सुन्दरदास विवस करि जेंहे, देह छिनक में छार को ॥
(सुन्दरदास)

मत कवियो में सुन्दरदास की काव्यकला, प्रवीणता, प्रतिभा और साहित्यिकता निर्विवाद है। इन्होने केवल भजन और शब्द ही नहीं कहे, उच्चकोटि का साहित्य भी लिखा है। मर्यादाशून्य ऊटपटांग उक्तियों से इन्हें चिढ़ थी। इनके अधिकतर सिद्धान्त शास्त्र-सम्मत है। इन्होंने वेद, पुराण, देश काल, समाज की रीति-नीति तथा लोक, मर्यादा की अवहेलना नही की। ये बड़े विद्वान् सन्त थे। इनकी कविता में हास्य और विनोद का भी अच्छा पुट देखने में आता है। भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था।

(१३)

धरनी परवत पर पिया, चढ़ते बहुत डरांव।
कबहुँक पाँव जु डिगमिगें, पावो कतहूँ न ठाँव ॥
धरनी पलक परं नहीं, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय ॥
बहुत दुवारे सेवना, बहुत भावना कीन्ह।
धरनी मन संसय मिटी, तत्त्व परो जब चीन्ह ॥
धरनी सो पंडित नहीं, जो पढ़ि गुन कथं बनाय।
पंडित ताहि सराहिये, जो पढ़ा विसरि सब जाय ॥
(धरनीदास)

बाबा धरनीदास एक पहुँचे हुए सत थे और उनकी रचनाओं से उनकी अनुभूति की गहराई प्रगट होती है। उनकी शैली में भावगाम्भीर्य, शब्द-माधुर्य और सगीत का प्रवाह प्राप्त होता है।

(१४)

मोहि ब्रहत हैं मन माया ॥टेक॥
एकं सब्द ब्रह्म फिरि एकं, फिरि एकं जग छाया।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़ चेतन बिलमाया ॥१॥
परमारथ को पीठ दियो है, स्वारथ सनमुख धाया।
नाम नित्य तजि अनित भावं, तजि अमृत विष खाया ॥२॥
सतगुरु कृपा कोऊ कोउ बाँचं, जो सोधं निज काया।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनी हाथ बिकाया ॥३॥
(भीखा साहब)

इनकी दार्शनिक विचारधारा वेदान्त के सिद्धान्तों से प्रभावित है। इनकी वर्णनशैली सरल और भाषा मधुर एवं संगीतमय है।

(१५)

गदगद बानी कंठ में, आँसू टपकें नैन।
वह तो बिरहिन राम की, तलफत है दिन-रैन।
जाप करै तो पीव का, ध्यान करै तो पीव।
पिव बिरहिन का जीव है, जिव बिरहिन का पीव।
हाय हाय करि कब मिलै, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरसन करौं अघाय॥

(धरनदास)

कबीर की शिक्षा और विचार-पद्धति का इन पर बहुत प्रभाव है। भिन्न-भिन्न मतों की कटु आलोचना प्राय ये भी करते हैं। ये बड़े अध्ययनशील थे। ये साधना (ज्ञान समाधि) में चित्तशुद्धि, प्रेम श्रद्धा पर बहुत आग्रह करते थे।

(१६)

पिया बिन मोहि नींद न आवै ।टेक॥
घन गरजै घन बिजुली चमकै। ऊपर से मोहि झाकि दिखावै॥
सासु ननद घर दारुनि आहैं। नित मोहि बिरह सतावै॥
जोगिन ह्वै कै मैं बन ढूँढूँ। कोऊ न सुधि बतलावै॥
धरमदास बिनवै कर जोरि। कोइ मेरे कोई हूर बनावै॥

(धरमदास)

माधुर्य गुण इस कविता में बहुत अधिक है। इनकी रचना में सरसता और अनन्यभक्ति के साथ-साथ सगुणोपासक का सा भावावेश और दाम्पत्य-भक्ति विद्यमान है। भाषा भी स्वाभाविक और सधी हुई है।

(१७)

चौरासी भुगती घना, बहुत सही जमभार।
भरमि फिरे तिहूँ लोक में, तहू न मानी हार॥
तहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीन्ही।
हीरा देही पाइ, मोल माटी के दीन्ही॥
मूरख नर समझै नहीं, समुझाया बहु बार।
चरनदास कहैं सहजिया, सुमिरै ना करतार॥

(सहजो बाई)

सहजो बाई सगुण-निर्गुण में अभेद मानती थी। इनकी रचनाओं में प्रगाढ़ गुरुभक्ति, मानव जीवन की साध, नामस्मरण की महिमा वर्णित है। इनके भाव बड़े स्पष्ट, मधुर और सुन्दर हैं—भाषा भी स्वच्छ और सरल है।

(१८)

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहीं होवै। गुरु बिन चौरासी मग जोवै॥
गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागे। गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै॥
गुरु ही दीन-दयाल गुसाईं। गुरु सरनै जो कोई जाई॥
पलटै करै काग सूं हंसा। मन को मेटत है सब संसा॥

(दया बाई)

दया बाई की कविता मधुर और सुबोध है। उसमें जटिलता कहीं नहीं आने पाई। इनके भावों में वैराग्य गुरुभक्ति, दैन्य आदि सत-गुण विद्यमान हैं।

(१९)

अरे मन देहु सर्व बिसराय।
दीन ह्वै लवलीन करि कै नाम रटु लौ लाय॥
नाम अमुन जपहु रसना गुप्त अंतर पाय।
मैल छूटि कै होय निरमल सुद्धि पाछिल आय॥
निर्गुन निहारि निरखहु अनत नाहीं जाय।
सीस दुइ कर परहु चरनन छूटि नाहीं जाय॥
सदा रहहु सचेत हेत लगाई नहिं बिसराय।
जगजीवन परकास मूरति सूरति सुरति मिलाय।

(जगजीवन साहब)

इनकी कविता की विशेषता है इनकी सरलता और नम्रता। ये दैन्य भाव का परिचय बहुत कराते हैं। सगुण कवियों के से धार्मिक भाव (विनय, आत्म-निवेदन, दैन्य आदि) इनमें स्पष्ट लक्षित होते हैं। मधुरता और संगीतात्मकता इनके पदों में भरी पड़ी है।

(२०)

गगन-मंडल में रमि रहा तेरा संगी सोय।
बाहर भरमे हानि है अंतर दीपक जोय॥
जिस के अंदर चांदनी कोटि सूर ससि-भान।
जिस के अंदर देहरा काहे पूज पखान॥
झिलमिल दीपक तेज कै दसों दिसा दरहाल।
सतगुरु की सेवा करै पावै मुक्ता-माल॥

(गरीबदास)

इनकी रचना-शैली कबीर की शैली से मिलती जुलती है। पाखंड और ढोंग की कड़ी आलोचना, अनन्य भक्ति, परोपकार का उपदेश वैसा ही करते हैं, हाँ, वेद-पुराण की निंदा नहीं करते। वे 'सत पुरुष' परमात्मा को सगुण और निर्गुण से परे मानते हैं।

(२१)

संत सनेही नाम है नाम सनेही संत ॥
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावै।
वे हैं वाकिफकार मिलन की राह बतावें ॥
जप-तप तीरथ बरत करै बहुतेरा कोई।
बिना वसीला संत नाम से भेंट न होई ॥

(पलटू साहब)

इनकी रचनाओं में सब से प्रसिद्ध इनकी कुंडलियाँ हैं। पुनरुक्ति दोष इनकी कविता में और संत-कवियों से अधिक है। इनकी विशेषता यह है कि शांतरस के अतिरिक्त वीर और शृंगार-रस पर इन्होंने सुन्दर कुंडलियाँ कही हैं। पौराणिक भक्ति की व्याख्या और नीति सम्बन्धी उक्तियाँ इनकी बहुत सुन्दर हैं। इनकी भाषा सुबोध और परिमार्जित है। इनकी विचारशैली कबीर से मिलती-जुलती है। ये भी उच्च कोटि के अनुभवी सन्त, निर्भीक आलोचक और निर्द्वन्द्व महात्मा थे।

(२२)

गगन इक खोज में मौज न्यारी लखो।
पिंड बिच निरख ब्रह्मंड सारा ॥१॥
सुरति की सैल निज महल में बस रही।
निर्झरि पट खोल गई गगन धारा ॥२॥
पवन को सकल सत लोक न्यारो भई।
गई पर अपर पर सुरति सारा ॥३॥
पार को अंत पर संत पहिचानिया।
दास तुलसी अज अमर न्यारा ॥४॥

(तुलसी साहब)

तुलसी साहब सतमत के सुधारक थे और प्रारम्भिक युग की आदर्श सत परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे। वे सम्प्रदायवादियों के विरोधी थे। कबीर, नानक और दादू की विचारशैली का इन पर स्पष्ट प्रभाव है।

रामतीर्थ बड़े मौजी सन्त थे जिनकी विचारधारा में सर्वविदित 'वाशोर्निर्वाण' के साथ-साथ विश्वकल्याण की भावना भी निहित थी। वे जीवात्मा और

विश्वात्मा का एकाकार चाहते थे। उनकी शैली में भावावेश, स्वानुभूति, ओज और मानदोल्लास विशेषतया उल्लेखनीय है। भाषा फारसी-बहुल होती है।

सूफी-काव्य

सूफीमत की स्थापना इस्लाम के साथ ही हो गई थी। कुरान के ऐसे प्रसंग, जिन में सर्वव्यापी प्रेम-स्वरूप प्रभु के शील और सौंदर्य का वर्णन है, सूफीमत का आधार हुए। बसरा की भक्त रबिया ने प्रेमसागर ईश्वर की प्राप्ति में घोर तपस्या की। आठवीं शताब्दी में पैलेस्टाइन के अबुहाशम ने पहले-पहल सूफी साधना-मंदिर की स्थापना की। यहीं से सूफी साधना की वह स्वतंत्र धारा चली, जो आज तक भिन्न-भिन्न देशों में चली आ रही है। यह भी माना जाता है कि सूफी मत इस्लाम की बढ़ती हुई कट्टरता की प्रतिक्रिया में खड़ा हुआ। मुहम्मद साहब और उनके बाद की चार पीढ़ी तक के खलीफा बड़े धर्मपरायण, कर्तव्यशील, त्यागी और तपस्वी थे। धीरे-धीरे धार्मिकता की अपेक्षा राज्यविस्तार की आकांक्षा प्रबल होने लगी। उसी के साथ असुदारता, क्रूरता और द्वन्द्वता भी बढ़ी। साम्प्रदायिक भावना तीव्र हो गई। ऐसे वातावरण की प्रतिक्रिया ही में सूफियों ने तप, भक्ति, प्रेम, उदारता, एकांतप्रियता के आदर्शों का प्रचार प्रारंभ किया। इन का जीवन पश्चात्ताप (तोबा) और आत्मसमर्पण (तवक्कुल) का जीवन था। विश्वश्रुत महात्माओं में राबिया, इब्राहीम अयाज, हल्लाज, मसूर, बयाजीद अल बस्तामी, जुनैद, जलालुद्दीन रूमी, हाफिज, सादी आदि अनेक औलिया, दरवेश और फकीर हुए हैं। मिस्र, अरब और ईरान में इनके बड़े-बड़े केन्द्र रहे हैं।

भारतवर्ष में सूफी-मत का प्रचार सिंध-पतन के बाद ही शुरू हो गया था, परन्तु यह प्रच्छन्न रूप से होता था। सूफियों की अधिकतर रचनाएँ प्रारंभिक फारसी में हैं—यही उस काल में राज्यभाषा थी—इसी का सूफियों को विशेष ज्ञान था। सूफियों की रुबाइयाँ, ग़ज़लें और मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-साहित्य में इनका प्रभाव कबीर के समय में स्पष्ट रूप से प्रगट होने लगा था। यह वह समय था जब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के निकट आने लग थे। मुसलमान हिन्दुओं की कथाएँ सुनने को और हिन्दू मुसलमानों की दास्तानें सुनने को तैयार हो गये थे। चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानंद के प्रेम-प्रधान वैष्णव धर्म का प्रभाव मुसलमान फकीरों पर भी पड़ा। इस समय तक हिन्दू और मुसलमान जातियों के बीच में कुछ-एक सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गये थे। ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान अर्थात् सूफी कवि प्रेमाख्यान लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे। ये आख्यान पहले ही से हिन्दुओं में प्रचलित थे। सूफियों ने इनकी मधुरता

और कोमलता का अनुभव करके इन्हें अपने प्रभु-प्रेम और अपनी साधना का प्रतीक बना लिया।

सूफी-कवियों की प्रेममार्गी काव्य-धारा १६ वीं शताब्दी से आरम्भ हो कर २०वीं शताब्दी के आरंभ तक अखण्ड रही। इन कवियों में प्रायः सभी मुसलमान हुए हैं और प्रायः कवियों ने प्रबन्ध-काव्यों की सृष्टि की है। निम्न-प्रमुख रचनाएँ लिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं—

मुल्ला दाऊद—चंदावन।

कुतबन—मृगावती।

मझन—मधुमालती।

जायसी—पदमावत।

उसमान—चित्रावली।

जान—कनकावती, कामलता, मधुकर मालति, रतनवती, छीता।

शेख नबी—ज्ञानदीप।

कासिमशाह—हंस जवाहिर।

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, अनुराग बाँसुरी।

निसार—यूसुफ-जुलेखा।

ख्वाजा अहमद—नूरजहाँ।

शेख रहीम—प्रेमरस।

नसीर—प्रेमदर्पण।

इनके अतिरिक्त जायसी ने 'मृगावती' और 'प्रेमावती' का उल्लेख भी किया है। पिछली रचनाओं में 'धनुर्मुकुट की कथा' और 'युसुफ जुलैखा' उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ मुसलमान कवियों ने मुक्तक कविताएँ भी लिखी हैं और इनमें अपने प्रेमरसपूर्ण उद्गारों और अनुभूतियों को प्रगट किया है।

इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

अमीर खुसरो—पद और दोहे।

जायसी—अखरावट, आखिरी कलाम, सोरठे।

शेख फरीद—सलोक (दोहे)।

यारी साहब—शब्द, झूलने, साखियाँ।

बरकतुल्लाह पेमी—पद और दोहे।

बुल्लेशाह—पद और काफियाँ।

दीन दरवेश—कुंडलियाँ

नजीर—पद।

हाजी वली—दोहे।

इनमें बरकतुल्लाह, यारी साहब और दरिया साहब की रचना में सूफी सिद्धांत, वैष्णव पद्धति और ज्ञानमार्ग का मधुर सम्मिश्रण पाया जाता है।

सूफियों के प्रभाव के फलस्वरूप दादू, पुहकर कवि, नागरीदास, बावरी साहिब, बीरु साहिब, बुल्ला साहिब (बुलाकी राम), गुलाल साहिब आदि हिन्दू कवियों की रचनाओं में सूफी प्रेम-तत्व का निरूपण भारतीय ढंग से किया गया है। पुहकर का 'रसरतन' प्रबन्ध-काव्य है, शेष कवियों ने फुटकर पदों में रचना की है। इनमें भी ज्ञानमार्ग और प्रेम मार्ग दोनों के सिद्धांत आ गये हैं। भाषा और शैली का एकीकरण भी हुआ है। इनके अतिरिक्त हरराज की 'ढोला मारवणी चउपई', कासीराम की 'कनक-मंजरी' और हरसेवक की 'कामरूप की कथा' प्रसिद्ध है। परन्तु इनमें केवल प्रेम की रहस्यमयी कहानी कही गई है, किसी सिद्धांत विशेष का प्रतिपादन नहीं किया गया।

नीचे हम उसी विचार-धारा और शैली का वर्णन करेंगे जो सूफी काव्य की अपनी विशेषता है। आगे उत्तरकाल के कवियों की रचना के उदाहरण दिये गये हैं जिससे तुलना की जा सके।

'सूफी' शब्द का अर्थ है प्रेमसाधना या वह साधक जो ऊन (सूफ) की कफनी और कनटोप पहने संसार से विरक्त हो, अपने प्रियतम परमात्मा के प्रेम-मद के स्थिर और स्थायी आनन्द में मग्न रहता है। सूफियों की मान्यता हमारे वैष्णव धर्म की प्रेम-साधना से बहुत अंशों में मिलती जुलती है। सूफी मानते हैं कि जो कुछ 'सत्ता' है वह एकमात्र प्रभु की है—दृश्य-अदृश्य सभी पदार्थ उसी से निकले हैं और उसी से ओत-प्रोत हैं। अव्यक्त ईश्वर सृष्टि के रूप में व्यक्त है। इसी सृष्टि का चरमोत्कर्ष मानव है जो ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति है। प्रत्येक मानव में परिपूर्णता बीज रूप में स्वभावतः विद्यमान रहती है। उस की प्राप्ति पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि है। पूर्ण मानव ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जगत् के प्रति बनी हुई उसकी आसक्ति का लोप हो जाता है और वह ईश्वर में लीन हो जाता है। प्रभु के चरणों में सर्वात्मसमर्पण करके उस में लय हो जाना ही सूफी साधना की चरम परिणति है—मानव का लक्ष्य है। किन्तु, इस स्थिति की उपलब्धि कोई आसान बात नहीं है। 'अल्लाह सत्तर हजार पर्दों के भीतर छिपा है।' उस तक पहुँचने के लिए साधक को शरीअत, आत्म-संयम, वैराग्य, दारिद्र्य, धैर्य, विश्वास और सतोष—इन सात सोपानों (मुकामात) से होकर जाना पड़ता है। इन मुकामात तक पहुँचना भी साधक के प्रयत्नों पर निर्भर है। उसके नित्य अध्ययन, सत्कर्म,

काव्यशैली

सदाचार और सद्विवेक की आवश्यकता बताई गई है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और सिद्धावस्था है उसी प्रकार सूफी साधना की क्रमशः चार अवस्थाएँ हैं—शरीअत (कर्म धर्म), तरीकत (उपासना) हकीकत (ज्ञान) और मारफत (सिद्धि) से ही वस्ल (ईश्वर मिलन) होता है। इस साधना में पीर या औलिया (गुरु) के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। सूफी उस परमेश्वर की उपासना करते हैं जो निर्गुण निराकार तो है, परन्तु अनन्त प्रेम का भंडार भी है। परमार्थतः वह निर्गुण, निरुपाधि एवं निर्विशेष है, व्यवहारत: उस में विशिष्ट गुण भी हैं। वह हमें सदा अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। परन्तु हम इस आकर्षण से हटकर जगत के पदार्थों की खोज में लगे रहते हैं। प्रेम के द्वारा हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है, हम जगत् के प्रपञ्चों से छूट जाते हैं और प्रभु की कृपा से प्रेम-मद की पूर्णावस्था को प्राप्त होते हैं। प्रभु की ओर से हमें खींचने की जो प्रक्रिया है उसे सूफी इञ्जिजाब (आकर्षण) कहते हैं, और साधक की जो आकांक्षा प्रभु से मिलन (वस्ल) के लिए है उसे वे इश्क (प्रेम) कहते हैं।

आत्मा और परमात्मा का वस्ल (मिलन) तब तक नहीं हो सकता जब तक परमात्मा का अनुग्रह (फजलुल्लाह) प्राप्त न हो। तब तक आत्मा, विरहावस्था में रहकर, अपने प्रियतम का स्मरण-चिंतन (जिक्र) करे और 'प्रेम की पीर' का आनन्द ले। सूफी मृत्यु (फना) का बड़े उल्लास के साथ स्वागत करते हैं, क्योंकि मृत्यु ही आत्मा को शरीर रूपी पिंजड़े से निकाल कर अपने प्रियतम के आलिंगन का आनन्द प्राप्त कराती है।

इसी अलौकिक प्रेम की व्याख्या सूफीमत के हिन्दी कवियों ने लौकिक प्रेम के कथानकों द्वारा की है। धार्मिक प्रतिबन्धों के कारण सूफी कवि अपने उपास्य के प्रेम के सम्बन्ध में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कह सकते थे, अतः उन्होंने प्रेमाख्यानों को ही ईश्वर-प्रेम की अभिव्यंजना का साधन बनाया। यह अभिव्यंजना संकेत के रूप में की गई और इससे प्रेममार्गी साहित्य में भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि हुई। कथा क्या है एक अन्योक्ति है और सभी प्रस्तुत वर्णन अप्रस्तुत के प्रतीक हैं।

प्रेम की जागृति स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, सौन्दर्य-श्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से होती है। प्रेमी अपने प्रेमाधार से मिलने के लिए आतुर हो जाता है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम करने के लिए तत्पर हो जाता है। प्रलोभनों और विघ्न-बाधाओं को पार करता और अनेक कष्ट झेलता हुआ वह अग्रसर होता है। कभी-कभी तो सफल होकर वह फिर संकट में पड़ जाता है। लेकिन अन्ततः उसे अपने साध्य की प्राप्ति हो जाती है। प्रेमगाथाओं का प्रायः यही ढाँचा है।

सूफी आख्यान आत्मा की रहस्यवादी प्रेम-कथा है। ईश्वर को स्त्री और आत्मा को पुरुष मान कर पुरुष (राजकुमार चंद्रगिरि, मनोहर, रत्नसेन अथवा सुजान) की अपनी प्रेमिका (मृगावती, मधुमालती, पद्मावती अथवा चित्रावली) से मिलने की कथा प्रतीकरूप में कही गई है। यह शैली विदेशी प्रभाव के कारण है। भारतीय प्रथा के अनुसार नायिका ही नायक के प्रति आकृष्ट होती है, परन्तु इन कथाओं में प्रेमी को ही प्रेमिका की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखलाया गया है। अलबत्त किसी-किसी ने और उपसंहार में जायसी ने भी भारतीय दृष्टिकोण को लिया है। जायसी ने तो नायिका के सतीत्व तथा उत्कट पतिप्रेम का परिचय देकर अपने भारतीय होने का प्रमाण दिया है। प्रेमवर्णन में अश्लीलता का अभाव, प्रकृति के रूपों का मार्मिक चित्रण, कथा की सुखात परिणति, ये सब बातें भारतीय वातावरण के अनुकूल रखी गई हैं।

सब सूफी कवियों के कथा-प्रसंगों के बीच-बीच में प्रेमी के कष्ट और त्याग आदि के वर्णन मिलते हैं। 'प्रेम की पीर' का अत्यंत सुन्दर चित्रण इन काव्यों में मिलता है। जायसी का विरह-वर्णन विशेष-रूप से विशद है। इन्होंने विरह-ग्रस्त प्रेमी और प्रेमिका के साथ सारे संसार की सहानुभूति दिखाई है, यद्यपि वर्णन में कहीं-कहीं अत्युक्ति से भी काम लिया गया है।

साधक को प्रेम-पथ से विचलित करने के लिए शैतान उत्कट चेष्टा करता है। राजकुमार मनोहर के लिए राक्षस, रत्नसेन के लिए अलाउद्दीन, सुजान के लिए कुटीचर शैतान है जो उन्हें कष्ट देते हैं और मार्ग से हटाना चाहते हैं। इस शैतान से बचने के लिए पीर अथवा गुरु की बहुत आवश्यकता है। सूफियों में पीर की महत्ता वही है जो संतों में गुरु की। सब सूफी काव्यों के प्रारम्भ में गुरु की स्तुति की गई है।

यद्यपि सूफी कवि कथा के बहाने आध्यात्मिक तत्व का निरूपण करना चाहते हैं, तो भी वे कथा की सरसता और लय में अपने लक्ष्य को भूल-से जाते हैं। केशव की तरह उन्होंने कथा का अंग-भंग नहीं किया। उनकी कथा सघटित और सुव्यवस्थित रहती है। यह ठीक है कि कथा तो हिन्दू जीवन से ली जाती है, परन्तु हिन्दू जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व उससे नहीं हो पाता—कहीं-न-कहीं चूक हो ही जाती है।

प्रेम-कथाएँ इतिहास अथवा लोक-परंपरा से ली गई है, परन्तु इनमें कल्पना का बहुत कुछ हाथ है। इससे ऐतिहासिकता की हत्या अवश्य हुई है, पर साहित्यिक दृष्टि से अच्छा ही हुआ है क्योंकि ऐसा करने से कथा में रोचकता आ गई है।

सूफियों के प्रबंध-काव्यों में हिन्दुस्तानी और ईरानी शैलियों का सुन्दर समन्वय हुआ है। कथाओं के पात्र हिन्दू हैं, उनके आदर्श हिन्दू हैं, उनकी समाप्ति संस्कृत

नाटकों के ढंग पर सुखान्त हैं कथानकों के अन्तर्गत हिन्दू देवी-देवताओं के भी विवरण हैं। साथ ही भारतीय काव्यशैली से पूर्ण रहते हुए भी ये प्रेम-काव्य फारसी मसनवी के वर्णनात्मक रूप लिये हुए हैं। प्रारम्भ में ईश्वर-वंदना, पैगम्बर की स्तुति और उस समय के बादशाह की प्रशंसा की गई है। फिर कथा के नायक नायिका के स्थान और परिवार आदि का परिचय देकर कथा का प्रारम्भ होता है। कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं की गई, बराबर चली चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है। इन काव्यों में 'अलफ लैला' का सा घटना-वैचित्र्य भी मिलता है। मधुमालती का पक्षी बन जाना और मंत्र के प्रभाव से फिर मनुष्य-रूप ग्रहण करना हीरामन सुग्गे का दूत बनना, नायकों का मौत के मुंह में जाना और बच निकलना इत्यादि घटनाएँ अत्यन्त रोमांचकारी हैं। परन्तु इनकी अत्युक्ति कथा-प्रवाह में खटकती अवश्य है।

इन काव्यों में वस्तुवर्णन भी प्रायः अरुचिकर और शुष्क है, अलबत्ता जहां प्रेम की मधुर अभिव्यक्ति हुई है अथवा आत्मा और परमात्मा के विरह और मिलन का वर्णन किया गया है, वहां प्रकृति तथा वस्तुओं का वर्णन भी रोचक और सजीव बन गया है। यहां पर फिर यह बता देना आवश्यक है कि इनका विरह-वर्णन हिन्दू-संस्कृति और काव्यपद्धति के अनुकूल नहीं। मसनवी के ढंग का अना-वश्यक वर्णन-विस्तार जगह-जगह कथानक की सजीवता को आघात पहुंचाता है। कहीं-कहीं प्रबंध-कल्पना मनोविज्ञान और काव्य की कलात्मकता की हत्या की हुई है।

हिन्दू देवी-देवताओं और मूर्तियों की कहीं-कहीं अवमानना की गई है और इस्लामी मान्यताओं की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रायः सूफी कवि अपने चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता नहीं ला सके। अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान दिया गया, चरित्र चित्रण की चिन्ता नहीं की गई।

सूफी काव्य एकरूप, अनवरत् और अतिबद्ध सा लगता है। घटना-वर्णन में रसीलता बहुत ही कम पाई जाती है।

इन दोषों के रहते हुए भी प्रेममार्गियों की साहित्यिक देन बहुमूल्य और आदरणीय है। हिन्दी-साहित्य में अच्छे चरित-काव्य बहुत थोड़े हैं। वीरगाथाओं के बाद यही प्रेमचरित हमें प्राप्त होते हैं। इनमें अतिरिक्त 'रामचरितमानस', 'रामविलास' और एक-आध अन्य चरित-काव्य ही हमारे साहित्य-भंडार में पा जाता है। इस दृष्टि से सूफी-कवियों की रचनाओं के महत्त्व का अनुमान किया जा सकता है। धर्म के वातावरण से दूर न रहते हुए भी प्रेम-काव्य ने हमें

रोचक, भावपूर्ण और लौकिक कहानियां दी हैं। संसार के प्रेम की इतनी मधुर और कोमल अभिव्यक्ति हम को पहली बार सूफ़ी-काव्यों में मिलती है। इनमें खण्डन-मण्डन नहीं है, केवल एक जगह 'पदमावत' में रत्नसेन के मुंह से मूर्तिपूजा की बुराई हुई है—परन्तु उसने ऐसा नैराश्य में कह डाला है। प्रायः लोग निराशा में अधीर होकर देवताओं को कोसा ही करते हैं।

सूफ़ी-कवियों की दृष्टि व्यापक और तीव्र है। उन्होंने बड़े-बड़े सूक्ष्म भावों तक अपनी पहुंच दिखाई है। रति, शोक, वियोग, रोमांच, युद्धोत्साह सब का सफलतापूर्वक वर्णन इन्होंने किया है। ये लोग चिन्तन में बड़ा अभ्यास करते थे। जायसी, उसमान और नूर विशेषतया बहुश्रुत और अनुभवी फकीर थे। इन्होंने ज्योतिष, हठयोग, वेदांत, रसायन आदि का अच्छा परिचय दिखलाया है।

मुक्तक सूफ़ी काव्य की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उस में साधारणतया वही भाव लक्षित होते हैं जो सन्तों के पदों में मिलते हैं। बहुत से इतिहासकारों ने इसी लिए शेख फरीद, यारी साहब, बल्ले शाह, दीनदरवेश, बावरी साहब, वीरू साहब, गुलाल आदि की गणना सन्तों में की है।

साधारण भाषा में उत्कृष्ट भावों का प्रदर्शन करना कवित्व की सर्वोत्तम कसौटी है। इस कसौटी पर मुसलमान लेखकों की ये कृतियां उच्चकोटि के साहित्य का अंग हैं। शोक है कि ऐसे भावुक और उदार मुसलमान कवि भारतवर्ष से उठ गये हैं। इन्होंने मुसलमानों के अंदर हिन्दुओं के प्रति जो सद्भावना की लहर चलाई उसकी पुनरावृत्ति की कितनी बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी के जितने मुसलमान कवि भक्तिकाल में हुए हैं यदि इससे आधे भी आज होते तो हिन्दुस्तान के अनेक सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों का हल स्वयं हो जाता।

प्रेम-काव्य-साहित्य की भाषा मुख्यतः अवधी है। यह अवधी सरल और स्वाभाविक है। यही पूरब में जनसाधारण की बोली थी। उसमें संस्कृत के कठिन समास या दुरूह प्रयोग नहीं हैं। भाषा का जैसा सुन्दर

भाषा रूप सूफ़ी-काव्य में प्राप्त होता है वैसा पहले न था। तुलसीदास ने इसी भाषा में पाण्डित्य भर कर बाद में इसे साहित्यिक रूप दे दिया। सूफ़ी काव्य में अरबी-फारसी की शब्दावली स्वाभाविक ही है।

सूफ़ी कवि शब्दों की अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से पूर्णतः अभिज्ञ थे और उन्होंने इनका प्रचुर उपयोग भी किया है।

प्रेमकाव्य के छंद हैं दोहे और चौपाइयां। नूरमुहम्मद ने बरवै का प्रयोग भी किया है। अवधी भाषा और दोहे-चौपाई तथा बरवै का स्वाभाविक मेल लक्षित होता है। पद-साहित्य में ब्रजभाषा के दोहे अवधी के दोहों से ईर्ष्या नहीं कर सकते।

जायसी से पहले कुतबन और मंझन ने पांच-पांच चौपाइयों के पीछे एक दोहे का क्रम रक्खा है। जायसी और उसमान ने सात-सात चौपाइयों के बाद एक-एक दोहा रक्खा है। नूरमुहम्मद में फिर पांच-पांच चौपाइयों के उपरान्त दोहे का क्रम आता है।

अलंकारों में अर्थ-चमत्कार प्रधान है, शब्द-चमत्कार गौण और कम। वैसे भी इन कवियों को शब्द-चमत्कार से रुचि नहीं थी। नायिका के सौंदर्य-वर्णन में, साधक के कष्टों का चित्रण करने में, विरह की भावना को प्रगट करने में अलंकारों की सुन्दर योजना हुई है। उपमा, रूपक और हेतूत्प्रेक्षा प्रधान अलंकारों में से हैं।

प्रेम-काव्य का प्रधान रस शृंगार है और इसमें वियोग-शृंगार का आधिक्य है, क्योंकि साधक का विरह ईश्वर से बहुत दिनों तक रहता है। शृंगार का वर्णन भारतीय प्रथा के अनुसार ही होता है और इसकी पूरी-पूरी विवेचना की जाती है। पूर्वानुराग श्रवण द्वारा अथवा चित्र द्वारा उदित होता है, मान का माध्यम प्रायः गुप्त रहता है, रति-भाव रस-शास्त्र की रीति का पूर्ण अनुसरण करता है। नायिका के रूप का अत्यन्त स्पष्ट और सजीव वर्णन किया जाता है। एक रस-दोष अवश्य है। भारतीय शास्त्र के अनुसार शृंगार रस के स्थायी भाव रति से मांस और रक्त की भावना का सामञ्जस्य नहीं हो सकता, परन्तु इन कवियों ने मसनवी के ढंग पर विरह-वर्णन में मांस और रक्त का वर्णन भी किया है। ऐसे प्रकरणों में बीभत्स-रस आ गया है। वीररस तथा शांत-रस भी इन काव्यों में मिलते हैं। हां, हास्य और रौद्र रस का अभाव है।

प्रेम-काव्यों का कलेवर प्रायः एक सा है। कथाओं की पृष्ठभूमि में बहुत थोड़ा-थोड़ा अंतर है। कथा का विभाजन खंडों में किया गया है। खंडों के नाम

कलेवर

कथा-विकास की दृष्टि से रखे गये हैं। 'पदमावत' में सिंहल-द्वीप-वर्णनखंड, मानसोदकखंड, जोगीखंड, पद्मावती-सुआ-भेंटखंड, पद्मावती रत्नसेन खंड, इत्यादि कथा के ही विभाग हैं। इस प्रकार 'इन्द्रावती' में स्तुतिखंड, स्वप्नखंड, मालिनखंड, फुलवारीखंड, नहानखंड, ब्याहखंड इत्यादि और 'चित्रावली' में चित्रदर्शनखंड, परेवाखंड, हस्तीखंड, चित्रावलीविवाहखंड, परेवाबन्धनखंड, सुजानबन्धनखंड इत्यादि कथा के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न विवरणों के ही नाम हैं। 'यूसुफ़-जुलेखा' के खंड कुछ लंबे हैं। वैसे खंडों का परिमाण निश्चित नहीं है। कोई खंड छोटे हैं तो कोई बड़े, और किसी के दो पृष्ठ हैं तो किसी के ३०-४०।

काव्य-कलेवर की रूपरेखा में जितनी समानता प्रेममार्गी कवियों के काव्यों में है, उतनी किसी अन्य काव्य में नहीं पाई जाती। यदि किसी दो एक काव्य

१

ग्रंथकार का नाम न बताया जाये तो वह यही समझेगा कि ये एक ही लेखक की और एक ही काल की कृतियां हैं।

प्रेममार्गी काव्य-शैली के नमूने नीचे दिये जाते हैं।

उदाहरण

(१)

साह हुसैन अहैं बड़ राजा। छत्र सिंहासन उनको छाजा॥
पंडित औ बुधवंत सयाना। पढ़ें पुरान अरथ सब जाना॥
धरम दुदिस्टल उनको छाजा। हम सिर छांह जियौ जग राजा॥
दान देह औ' गनत न आवै। बलि औ' करन न सरबरि पावै॥

(कुतबन—मृगावती)

सूफी शैली के हिन्दी कवियों में सबसे पहले इन्हीं का नाम आता है। इनकी कविता में परमात्म-प्रेम, प्रेममार्ग की कठिनता और आत्म-समर्पण की सुन्दर अभिव्यंजना मिलती है।

(२)

विरह-अवधि अवगाह अपारा। कोटि माँहि इक परै त पारा॥
बिरह कि जगत अँबिरथा जाही। बिरह रूप यह सृष्टि सबाही॥
नैन बिरह-अंजन जिन सारा। बिरह रूप दरपन संसारा॥
कोटि माँहि बिरला जग कोई। जाहि सरीर बिरह-दुःख होई॥
रतन कि सागर सागरहि, गजमोती गज कोई।
चंदन कि बन बन उपजै, बिरह कि तन तन होई॥

(मंझन—मधुमालती)

'मधुमालती' की कथा 'मृगावती' की कथा से अधिक रोचक है और इसके आगे वर्णन भी अधिक विशद है। उपनायक और उपनायिका के चित्रण में कथा में अच्छा गौरव आ गया है। प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर हुआ है।

(३)

नागमती पदमावत रानी। दोउ महासत सती बखानी॥
दोउ सौत चढ़ खाट जो बैठी। औ सिवलोक परा तहँ पैठी॥
बैठो कोई राज औ पाटा। अंत सबै बैठे पुनि खाटा॥
चंदन अगर काढ़ सर साजा। और गति देय चले लै राजा॥
बाजन बाजहिं होय अगोता। दोउ कंत लै चाहें सोता॥
एक जो बाजा भयो बिवाहू। अब दूसर है और निबाहू॥
जियत जो कंत की आसा। मुये रहत बैठे इक पासा॥

आज सूर दिन अथवो, आज रयनि ससि बूड़ ।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड़ ॥

(जायसी—पदमावत)

(४)

छाँड़िउँ नैहर चलिउँ बिछोई । एहिरे दिवस कहँ हौं तब रोई ॥
छाँड़िउँ आपन सखी सहेली । दूरि गवन तजि चलिउँ अकेली ॥
नैहर आइ काह सुख देखा । जनु होइगा सपने कर लेखा ॥
मिलहु सखी हम तहँवाँ जाहीं । जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं ॥
हम तुम मिलि एकै सँग खेला । अंत बिछोह आनि जिउ मेला ॥

(जायसी—पदमावत)

जो किछु है सो सब, मोहि बिन नाहिन कोई
जो मन चाह सो किया, जो चाहं सो होई ॥
कोहि जोति परछाँहीं, नयौ लख उजियार ।
सुरज चाँद के जोति, उदित अहं संसार ॥

(जायसी— अखरावट)

जायसी का 'पदमावत' प्रेमगाथाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रौढ़ ग्रंथ है। क्या कलापक्ष में और क्या भावपक्ष में, क्या प्रस्तुत वर्णन में और क्या अप्रस्तुत की अभिव्यंजना में इस ग्रंथ की गूढ़ता, सरसता, गम्भीरता और रोचकता निर्विवाद सिद्ध है। इसमें स्तुति, नगशिख, ऋतु-वर्णन, स्त्री-परिचय, प्रेम, विरह, सुख, दुःख, धर्म, राजनीति, घर, दुर्ग, समुद्र, राजमंदिर, जीवन, मृत्यु, सभी विषयों का विस्तृत, हृदयग्राही और विशद वर्णन किया गया है।

अखरावट में परमेश्वर की स्तुति और संसार की असारता का वर्णन देव-नागरी-वर्णमाला के अक्षरों के क्रम से किया गया है जैसे 'ध धावहु बहु ध्यान बिचार। जेहि महँ सब समान संसार ॥' यह शैली फारसी-उर्दू की 'सी हरफी' से ली गई है।

(५)

आदि बखानौं सोई चितेरा । यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा ॥
कीन्हेसि चित्र पुरुष औ नारी । जो जग चल अगि सरइ सँवारी ॥
कीन्हेसि जोति सुर-ससि तारा । जो अगि जोति निसइ जो पारा ।
कीन्हेसि बचन बेद जेहि सोसा । जो अगि चित्र पवन पर सोना ॥
पहल चित्र लिखि आनइ सोई । जेहि बिनु मेटि सकइ नहिं कोई ॥
कीन्हेसि रंग स्याम औ सेता । राता पीना अउर जग जेता ।
यह सब बरन कीन्ह जहँ ताईं । आपु अबर्न अहन गोसाईं ॥

कीन्हा भगिनी पीन पर भाँति भाँति संसार।
आपुन सब महँ मिलि रहा को निगरावइ पार॥

(उसमान—चित्रावली)

'चित्रावली' की रचना 'पद्मावत' के ढंग पर हुई है। इसमें भी उसी प्रकार आध्यात्मिक वर्णन, राजस्तुति, नगर, सरोवर, यात्रा आदि का विशद वर्णन है। विरह-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति-वर्णन भी सरस और सुन्दर हुआ है। इनकी कविता में पौराणिकता भी है, क्योंकि नायक को शिव का अंश माना गया है।

(६)

जब लगि चारि चारि रहु चारी। राजकुँवर कहं ठग अस मारी॥
दामिनि चमक चाह अधिकाई। दुमक चितै रहे चित लाई॥
बहेउ पवन लट पर अनुरागे। लट छितरानि पवन के लागे॥
परी बदन पर लट लटकारी। तपा दिवस भै निसि अँधियारी॥
मोहि परा दरसन कर घेरा। हना बान मन अहिलिन केरा॥

(नूरमुहम्मद—इन्द्रावती)

उत्तरकालीन सूफी कवियों में 'इन्द्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के रचयिता नूरमुहम्मद का नाम भी प्रसिद्ध है। कवित्व की दृष्टि से नूरमुहम्मद की रचना बहुत अच्छी है। इनके स्वाभाविक वर्णन विस्तृत और विशद हैं, प्रेम-चित्रण सुन्दर है और इनकी भाव-व्यंजना भी उच्चकोटि की है। इनकी भाषा ठेठ अवधी है जिसमें संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्द खूब मिलते हैं। आख्यान-पद्धति के अनुसार लिखने वाले सूफी कवियों में इन्हें अन्तिम कवि माना गया है।

(७)

जोबन बिना सुमन अति लागे। तरनी भये कहाँ को भागे॥
बिनु तरनी हरनी सुख बैन। बरनी जात न कापै नैन॥
हाव भाव नहिं जानत भोरी। कबूं न चितवै चितवनि चोरी॥
जब कटाछ नैनन में धरिहैं। मानुस कहा देव बस करिहैं॥
संचार बरन किरति है घावत। ज्यों चल मनमागिर है घावत॥
बैंदी जोत बेहुरे माहिं। सोधी रही देवती नाहिं॥
छीता देखी भरिभरि नैन। चकित भयो मुख सकत न बैन॥

(जानकवि—छीता)

जानकवि के प्रबन्धों की विशेषता है उनका प्रवाह, स्वाभाविक गठन, और सरसपूर्ण प्रेमतत्व-निरूपण। 'छीता' में उनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं अन्य सूफी रचनाओं में उपलब्ध नहीं।

(८)

प्रेम फंद अरुझानो, गयउ ग्यान मति भूल ।
संवरि रूप अकुलाइ मन, उठै हिये महँ सूल ॥

उठि बैठी मुख संवरत सोई । भई मगन कहि सकै न रोई ॥
जब संवरे मुख सब बिसराई । वे सुन्दरता रोइ न जाई ॥
बिरह बान बेधा एक मारा । रोम-रोम व्याकुल तेहि मारा ॥
बिनती बिरह अगिनि कै लागी । सुलगै लागि हियें महँ आगी ॥
सखी देखि मन बदन मलीना । मन व्याकुल तन सुध-बुध हीना ॥
पूछहिं कत तुम चित्त उदासा । कवन सोच कर हिरदै बासा ॥
तुम सब कर जग प्रान अधारा । काहे लागि भई बिकरारा ॥
सब सुख तुमहिं बिधातै दीन्हा । मन मलीन केहि कारन कीन्हा ॥

(निसार—यूसुफ जुलेखा)

निसार बड़े विद्वान् कवि थे । हृदय की अनेक अवस्थाओं का चित्रण करने में उन्हें बड़ी सफलता मिली है । वे हैं तो पक्के धार्मिक, पर नूर मुहम्मद की भाँति दूसरों के प्रति कटुभाव उन में नहीं है ।

(९)

मनौ भर्ता याकूब को मानो । औ परमातमा यूसुफ जानो ॥
प्रान, स्वाद, इरपर्श करो मन । सवन शब्द नैनन का दर्शन ॥
चिता चेत संदेह परमाना । औ अनुमान, सरन औ ग्याना ॥
यही को ग्यारह हैं यहि गाना । जानों इन्हें यूसुफ के भ्राता ॥
हात और पद मालिक के जानो । औ तैमूस के पोषन मानो ॥
रिपु जुलेखा जानो अंगू । दाई जानो विराग के संगू ॥
मानो अजीज मिस्र ख्यीरो । और मिस्र को जानु सरीरो ॥

जीवन आतमा मन में जानो, है राजा रय्यान ।
अरथ 'नसीर' ग्यान का होना, कहत यही परमान ॥

(नसीर—प्रेमदर्पण)

नसीर ने भी निसार की तरह भारत से बाहर की कथा के आधार पर अपनी प्रबन्ध-रचना की । दोनों ने मिस्र के यूसुफ-जुलेखा पर कथानक चलाया । उपर्युक्त वर्णन में नसीर ने कथा के अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा की है ।

मुक्तक कविताओं के नमूने नीचे दिये जाते हैं । ये अनेक हिन्दी बोलियों में मिलते हैं ।

(१०)

बहुत रहीं बाबुल घर दुलहिन, चल, तेरे पी ने बुलाई ।

न्हाय धोय के बस्तर पहिरे, सब ही सिंगार बनाई।
विदा करन को कुटुंब सब आये, सिगरे लोग लुगाई॥
चार कहारन डोली उठाई, संग पुरोहित नाई।
चले ही बनेंगी होत कहा है, नैनन नीर बहाई॥
अंत विदाहं चलिहैं दुलहिन, काहू की कछु ना बसाई।
मौज खुसी सब देखत रह गए, मात-पिता औ भाई॥

(अमीर खुसरो)

अमीर खुसरो ने कई प्रकार के पद्य और गीत लिखे। इनके दृष्टान्त हमारे दैनिक जीवन के देखे-सुने अनुभव हैं।

(११)

नैनन आगे देखिये, तेजपुंज जगदीस।
बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस॥
आठ पहर निरखत रहौ, सनमुख सदा हजूर।
कह यारी घर ही मिलै, काहे जाते दूर॥
आतम नारि सुहागिनी, सुन्दर आपु सँवारि।
पिय मिलवे को उठि चली, चौमुख दियरा बारि॥

(यारी साहब)

इनकी कविता में भक्ति, ज्ञान और प्रेम तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने ज्ञान में भी प्रीति को ही प्रधान आधार माना है। इनकी साखियों में अप्रतिम प्रेम और गंभीर आत्मानुभूति का सौंदर्य विशेष रूप से प्राप्त होता है। भाषा, छंद, तथा वर्णन-शैली के विचार से ये अपने पहले के सूफी कवियों से भिन्न हैं। इन्होंने और इनके परवर्ती सूफी कवियों ने प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखे।

(१२)

हिन्दू कहें सो हम बड़े, मुसलमान कहें हम्म।
एक मूंग दो फाड़ हैं, कुण जादा कुण कम्म॥
कुण जादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया।
एक भगत हो राम, दूजा रहिमन सो रजिया॥
कहें दीन दरवेश, दोय सरिता मिल सिंधु।
सबका साहब एक, एक मुसलिम, एक हिंदु॥

(दीन दरवेश)

इनकी गहरी स्वानुभूति, उदार भावना, और सरल अभिव्यक्ति दर्शनीय है।

(१३)

बावल कैसे बिसरा जाई।
जदि मैं पति संग रल खेलूंगी, आपा परम समाई॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनीं, उत्तम बर परनाई।
अब मेरे साईं को सरम पड़ेगी, लेगा चरन लगाई॥
मैं जानराय मैं बाली भोली, मैं निरमल मैं मैली।
मैं बतलाएं मैं बोल न जानूं, भेद न सकूं सहेली॥
मैं ब्रह्मभाव मैं आतम कन्या, समझ न जानूं बानी।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निश्चय कर जानी॥

(दरिया साहब)

आप की कविता में ज्ञानमार्ग का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इनकी रचना में गुरु-महिमा, नाम-स्मरण, रामचिन्तन, प्रेम-अभिसार, विरह आदि विषयों का वर्णन सुन्दर है।

(१४)

जनम कुसल भैलो हो हम धनि पिया को पियारी।
सोरहो सिंगार सँवूरण पहिरल देखत रूप निहारी॥
सत तिलक के माँग सँवारल दिनमल मँचरा पसारी।
आठ पहर पुनि नौबति बाजै सहज उठे झनकारी॥
रौसि-रौसि नेवछावर वारौं मुक्ता भरि-भरि थारी।
गगन-मंडल में परमपद पावल जमहि कइल घर द्वारी॥
जन गुलाल सोहागिन पिय संग मिल लो भुजा पसारी।

(गुलाल)

गुलाल साहब सन्त प्रवृत्ति के प्रेमाश्रयी कवि थे। इनकी बानियों में वैराग्य भक्ति, संसार की असारता, ज्ञान और प्रेम के उपदेश मिलते हैं। इनकी कविताओं को देखकर ऐसा निश्चय होता है कि इनके यहाँ सन्तमार्ग और प्रेममार्ग में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

(१५)

यह बात न समझो, और सुनो, जो लकड़ी में थी आग लगी।
जब जलकर ठंडी राख हुई, तो उसकी देह कहाँ पहुँची॥
थी एक तरफ़ तो दून्हा था, और एक तरफ़ को दुलहन थी॥
जब दोनों मिलकर एक हुए, फिर बात रही क्या पर्दे की॥
माटी का माटी, आग अगिन, जल नीर, पवन को पवन हुई।

अब किस से पूछिये कौन मुआ, औ किससे कहिये कौन मुई ।।
(नज़ीर)

इनकी रचनाएँ बड़ी सजीव, प्रवाहपूर्ण चुटीली और स्वाभाविक हैं। भाषा सरल और व्यक्तित्वपूर्ण है।

सगुणवाद

परंपरा

वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया में वासुदेवधर्म का और हिंसावाद के प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्धधर्म का एक ही समय में उदय हुआ। वासुदेवधर्म का मुख्य उद्देश्य उदारता, अहिंसा और सदाचार का प्रचार तथा भगवान् की भक्ति था। इसी के विकसित रूप भागवत, नारायणी और वैष्णवधर्म हुए। बौद्धधर्म की महायान शाखा ने भक्तिमार्ग का आश्रय लिया और महायानियों ने बुद्ध की मूर्तियाँ बना कर जगह-जगह मंदिरों का निर्माण किया। इसके साथ-साथ, और कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इससे पहले ही, जैनधर्म में मूर्तिपूजा का आरम्भ हो गया था। पुराणों के अवतारवाद से भक्तिमार्ग को विशेष प्रगति प्राप्त हुई। जगत्प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य ने ब्रह्म की व्यावहारिक सगुणोपासना को स्वीकार करते हुए अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया था। परन्तु इसमें वे भक्ति का दृढ़ आधार खड़ा न कर सके। जयदेव ने 'गीतगोविन्द' में कृष्णलीला का वर्णन किया है परन्तु उसमें आध्यात्मिकता की विशेष छाप नहीं है।

सगुणवाद की प्रबल धारा बहाने का श्रेय दक्षिण के संतों को प्राप्त है। रामानुज (संवत् १०७३) ने नारायण या विष्णु नाम से हरि की उपासना का उपदेश दिया। उन्होंने राम अथवा कृष्ण की आराधना का कहीं उल्लेख नहीं किया। निम्बार्क स्वामी (लगभग संवत् १२५०) दक्षिण से वैष्णव-भक्ति का संदेश उत्तर भारत में लाये। १३५० के लगभग श्री राघवानन्द जी ने काशी में वैष्णव श्री-सम्प्रदाय का प्रचार किया। उनके शिष्य रामानन्द जी ने सारे भारतवर्ष का भ्रमण करके अपना मत फैलाया। रामानन्द ने राम को ईश्वर का अवतार माना और उनके साथ जगज्जननी सीता की आराधना का भी समावेश किया। उस समय राधाकृष्ण भक्ति का काफ़ी प्रचार हो गया था। राम और सीता की पूजा कदाचित् राधा-कृष्ण की भक्ति के ही अनुकरण में प्रचलित की गई थी। राम-भक्ति के सम्बन्ध में रामानन्द जी ने सब का अधिकार समान रूप से स्वीकार किया था।

इसी समय महाराष्ट्र में विष्णुस्वामी ने वैष्णवमत के प्रचार में अधिक योग दिया। उनके उत्तराधिकारी ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलोचन और वल्लभ थे। वल्लभा-

चार्य ने 'पुष्टिमार्ग' स्थापित किया। भगवान् के अनुग्रह पर विश्वास करने का नाम ही पुष्टि है। वल्लभ-संप्रदाय में शृंगारिकता तथा प्रेम संगीत की धारा का विशेष प्रवाह मिलता है। भगवान् कृष्ण के धर्म स्वरूप की अपेक्षा उनकी प्रेमलीला को अधिक प्रधानता दी गई। इसके साथ ही गोपियों की पूजा का भी विधान किया गया। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने राधा को गोपियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर उसकी प्रकृति-रूप में पूजा की व्यवस्था कर दी। विट्ठलनाथ ने ही अपने पिता के शिष्यों में से चार और अपने शिष्यों में से भी चार चुनकर 'अष्टछाप' की स्थापना की।

इस समय तक वैष्णव-भक्ति की दो विशिष्ट शाखाएँ हो गई थीं और हिन्दी साहित्य में इनका पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व होने लगा था। पुष्टिमार्गीय कृष्ण-काव्य की धारा के आदि प्रवर्तक सूरदास जी थे। अष्टछाप के अन्य कवि—नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी गोविन्दस्वामी भी पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे। कई प्रसिद्ध मुसलमान कवि भी विट्ठलनाथ के शिष्य थे।

पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त कृष्णभक्तों के और कई मत स्थापित हुए। इन सब के समर्थन में हिन्दी कविता मिलती है। हितहरिवंश, हरिराम व्यास और ध्रुवदास राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। स्वामी हरिदास ने टट्टी सम्प्रदाय की नींव डाली, श्रीभट्ट कवि निम्बार्क सम्प्रदाय के पोषक थे, गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे, और मीरा ने तो सगुणवाद ज्ञानमार्ग तथा प्रेममार्ग का मधुर सम्मिश्रण करके एक नई ही पद्धति की स्थापना कर डाली।

वैष्णव भक्ति की राम-काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास जी हुए हैं जो रामानन्द की शिष्य-परम्परा में थे। परन्तु रामभक्ति इतनी लोकप्रिय न हो सकी, जितनी कृष्णभक्ति। काव्य के क्षेत्र में भी तुलसी के अतिरिक्त कोई प्रसिद्ध कवि नहीं हुआ। अग्रदास, नाभादास प्राणचन्द चौहान और हृदयराम ने रामभक्ति की परंपरा में कविता अवश्य की, परन्तु वह उस कोटि की नहीं बन सकी जैसी कृष्ण कवियों की।

अगले पृष्ठों में हम पहले कृष्ण काव्य और रामकाव्य की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे और फिर उनकी अपनी-अपनी शैली पर विचार करेंगे।

समस्त भक्ति-साहित्य में जिन विषयों की चर्चा में समानता पाई जाती है, वे ये हैं—(१) ईश्वर-भक्ति (२) आत्मसमर्पण (३) ईश्वर के अनुग्रह पर विश्वास (४) नाम-स्मरण-कीर्तन और (५) गुरुभक्ति। भक्त का भगवान्

सामान्य प्रवृत्तियाँ

सर्वशक्तिमान् है। वह अरूप होते हुए भी जन्म ले सकता है, निर्गुण होते हुए भी वह प्रेम कर सकता है, सर्वव्यापक होते हुए भी

वह भक्त के लिए एकदेशीय बनकर लीला कर सकता है। भक्त के लिए वह सब कुछ कर सकता है। भक्त और भगवान् का व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है—चाहे वह सम्बन्ध स्वामी सेवक का हो, माता अथवा पिता और पुत्र का हो, मित्र-मित्र का हो या पति पत्नी का। भक्त को भगवान् की अपार कृपा पर विश्वास रहता है। तुलसी, सूर, नन्ददास सब ने व्यक्तिगत भक्ति का ही आदर्श उपस्थित किया है।

निर्गुणिया कवियों की भांति सगुणवादियों में भी अनन्यता पाई जाती है। तुलसी का दृढ़ निश्चय है कि राम यदि उसे दुत्कार भी दें तो उन्हीं के चरणों में लिपटे रहने में गति है, किसी अन्य से मुक्ति की आशा नहीं है। 'तुव तजि और कौन पै जाऊँ' कह कर सूर ने भी वही भाव प्रगट किया है। वास्तव में अनन्य भाव के बिना भक्ति सम्भव ही नहीं है। यद्यपि तुलसी और सूर ने राम कृष्ण के साथ अन्य अवतारों का भी वर्णन किया है और उनके प्रति भक्ति-भावना प्रगट की है, तथापि तुलसी ने राम को और सूर ने कृष्ण को जिस आसन पर बिठाया है, उसके बराबर वे किसी को स्थान नहीं देते। मीरा का अनन्य-भाव तो प्रसिद्ध ही है। भक्त अपने इष्ट को छोड़कर वैकुण्ठ का सुख भी नहीं चाहते। न केवल पुष्टिमार्गियों ने, अपितु सब भक्त-कवियों ने इष्टदेव के अनुग्रह की याचना की है और उस अनुग्रह में अनन्य विश्वास पूर्णरूप से व्यक्त हुआ है।

भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान मूर्त रूप धारण करके उनके संकटों का निवारण करते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है भगवान् के लीलावतारों और विग्रह-रूप (मूर्ति) की कल्पना भक्ति का आवश्यक अंग है बिना किसी मूर्त आधार के भक्ति नहीं हो सकती। हमारे भक्त कवियों ने विष्णु के राम और कृष्ण अवतार रूपों में जिस आकर्षण, सम्मोहन और सौन्दर्य की कल्पना की है, वह वास्तव में अत्यंत सजीव, मार्मिक और अद्वितीय है। ऐसे विशद, विस्तृत और विभिन्न शब्द-चित्र किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलेंगे। सूरदास ने कृष्ण के बाल्यपन और यौवनावस्था के अगणित सुन्दर चित्र बनाये हैं। तुलसी ने राम और लक्ष्मण की छवि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। रूप का ध्यान करना वैष्णव भक्ति-पद्धति का एक विशिष्ट अंग है। मीरा, हितहरिवंश, रसखान, ललित-किशोरी, बिहारी, देव, हरिश्चन्द्र सब ने श्रीकृष्ण और राधा के रूप का सरस वर्णन किया है। सगुणवादी कवि केवल चिन्तनशील भक्त ही नहीं बल्कि भावना-शील कवि भी थे। उनके काव्य में आलंकारिकता, कला तथा कवित्व का सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। एक बात अवश्य है कि कृष्ण-कवियों की कृतियों में राम-कवियों की अपेक्षा प्रणय की रसमाधुरी कहीं अधिक है।

नाम की महत्ता को वैष्णव कवियों ने स्वीकार किया है। राम-भक्त और

कृष्ण-भक्त कवियों ने गुरु को बहुत ऊंचा स्थान दिया है। उनकी कृपा के बिना इष्ट के दर्शन नहीं होते।

भगवान् का रूप और सौंदर्य भक्त के हृदय में प्रेम का सञ्चार करता है। भगवान् का रूप रति-भाव का आलम्बन है। यह रति पांच प्रकार की होती है— शान्ति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा और मधुरा। इसी क्रम में भक्त भी शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर स्वभाव के होते हैं। सगुण उपासना में शान्त-रस अधिक मात्रा में नहीं रहता। राम-भक्तों में कहीं-कहीं इसके उदाहरण मिलते हैं। तुलसी में दास्यभाव की प्रधानता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने शांति और प्रीति को नहीं अपनाया। उनकी भक्ति अधिकतर सख्य, वात्सल्य-और मधुर भाव की है। मधुरा रति का महत्त्व सब से अधिक माना गया है। कृष्ण-काव्य शृंगार रस से भरा पड़ा है।

गीता, श्रीमद्भागवत, नारदभक्तिसूत्र और शांडिल्य भक्तिसूत्र में सगुण भक्ति की व्याख्या बड़े विशद रूप से की गई है। सगुणवादियों के लिए इन ग्रन्थों में वर्णित भक्ति-पद्धति मान्य रही है, अत नीचे नारदभक्तिसूत्र के अनुसार भक्ति के ११ प्रकार उद्धृत किये जाते हैं—

१. गुण माहात्म्य

सोई सच्चिदानंदघन रामा। अज विज्ञान रूपबलधामा (तुलसी)

तुम अनादि अविगत अनन्त गुण पूरण परमानन्द (सूरदास)

२ रूपासक्ति

भाल विशाल तिलक झलकाहीं।

पीत चतौनी सिरन्ह सुहाई॥ (तुलसी)

नैननि निरखि स्याम स्वरूप ॥(सूर)

३ पूजासक्ति

बन्दौं चरन सरोज तुम्हारे। (सूर)

४. स्मरणासक्ति,

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे। (तुलसी)

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। (सूर)

५. दास्यासक्ति

प्रभु के साथ मोहि उधारि। (सूर)

ऐसो हरि करत दास पर प्रीति। (तुलसी)

६ सख्यासक्ति

हरि सौं मीत न देख्यो कोई। (सूर)

७. आत्मनिवेदनासक्ति

जो हम भले बुरे सो तेरे। (सूर)
और मोहि को है काहि कहिहौं। (तुलसी)

८ *तन्मयतासक्ति*
नाहिनै नाथ अवलंब मोहि आन की। (तुलसी)
मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।(सूर)

९ परमविरहासक्ति
चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग। (सूर)

१० कान्तासक्ति
जनक जननि सिय राम प्रेम के। (तुलसीदास)

११ वात्सल्यासक्ति
बन्दउँ बालरूप सोइ रामू। (तुलसी)

नवधा भक्ति इस प्रकार है—(१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन, (७) दास्य, (८) सख्य, (९) आत्मनिवेदन।

रागात्मिका भक्ति के प्रेमी मन, वाणी और क्रिया इन तीनों का सच्चा उपयोग करने के लिए मन से प्रेम, वाणी से जप और कीर्तन तथा क्रिया से सत्संग करते रहने की सदैव सलाह देते हैं। सच्ची भक्ति के लिए वैराग्य, विवेक, श्रद्धा, विश्वास आदि आवश्यक है।

राम-काव्य

राम-चरित्र का आदि ग्रंथ वाल्मीकि-कृत रामायण है। रामायण में इन्द्र, कार्तिकेय, लक्ष्मी, उषा, विष्णु, शिव आदि देवी-देवताओं का उल्लेख मिलता है। राम में देवत्व की छाया भी नहीं दिखाई गई—वे मनुष्य हैं और मानवता की सीमाओं के भीतर विचरते हैं। 'मानवधर्मशास्त्र' में राम को विष्णु का अवतार माना गया है। इसी समय बुद्ध में ईश्वरत्व का समावेश किया जाने लगा था। हमने पहले भी संकेत किया है कि रामावतार की भावना बुद्धमत की महायान शाखा से प्रभावित हुई थी और राम की वीरपूजा में परिणत हो गई थी। 'नारायणी' में इष्ट देव के रूप में विराजमान है। 'संहिता' में विष्णु के साथ शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। रामभक्ति में इस शक्ति ने सीता का रूप धारण किया। राम का पूर्ण रूप गुप्तकाल में विकसित हुआ। इस समय 'विष्णु-पुराण' की रचना हुई। परन्तु राम-चरित्र पुराणों का प्रिय विषय न बन सका। केवल 'अध्यात्म-पुराण' और 'आनन्द रामायण' में राम का भक्ति-भाव-समन्वित वर्णन

परंपरा और साहित्य

मिलता है। इस समय तक राम-भक्ति ने एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया था। रामानुजाचार्य की 'सहस्रगीति' में और रामानन्द की 'रामार्चन-पद्धति' में राम की अनन्य और विशिष्ट भक्ति पाई जाती है।

यह तो रहा संस्कृत का राम-साहित्य। हिन्दी में तुलसी ही राम-काव्य के सम्राट् हैं। उनसे पहले भूपति (संवत् १३४५), भगवतदास और चन्द (१५-वीं शताब्दी) ने राम-चरित्र का वर्णन किया था। रामानन्द ने भी फुटकर पद हिन्दी में कहे थे। परन्तु इनकी सब से बड़ी देन कबीर और तुलसीदास हैं।

'सूरसागर' में वाल्मीकीय रामायण के क्रमानुसार कुछ घटनाओं को ले कर भक्ति-पूर्ण पद पाये जाते हैं।

तुलसीदास जी की अनेक रचनाएँ हैं। इनमें 'रामचरितमानस', 'राम-ललानहछू', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली' इत्यादि में राम कथा का वर्णन है।

१७ वीं शताब्दी विक्रमी में ही स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान और हृदयराम हुए हैं। स्वामी अग्रदास की बनाई 'ध्यानमंजरी', 'कुंडलिया' इत्यादि पुस्तकें मिलती हैं। नाभादास के रचे हुए रामसम्बन्धी पदों का एक संग्रह मिलता है। 'अष्टयाम' में 'रामचरितमानस' की शैली पर राम-चरित कहा गया है।

प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक' संवाद-शैली का काव्य-ग्रंथ है। इसी शैली पर हृदयराम का 'हनुमन्नाटक' है।

केशवदास की 'रामचन्द्रिका' रीति-पद्धति के अनुसार लिखी गई है। इस में प्रबन्ध-संगठन की कमी है।

सगुणदास के 'रत्नखान', और 'ज्ञानबोध', मानदास का 'रामचरित्र', शम्भुनाथ का 'कृपारामविलास', तुलसी साहब का 'घटरामायण', मधुसूदन दास का 'रामाश्वमेध', और मनियारसिंह के 'सौन्दर्यलहरी', 'हनुमान-छब्बीसी' उल्लेख-योग्य हैं।

१९वीं शताब्दी विक्रमी में बाबा रामचरणदास, बाबा रघुनाथदास राम-सनेही और महाराज रघुराजसिंह ने कृष्णकाव्य की शृंगारिकता से प्रभावित होकर राम-काव्य की रचना की। बाबा रामचरणदास के रचित 'अमररामायण', 'भुशुंडी-रामायण', 'कोसलसंहिता', 'हनुमत्संहिता', 'महारामायण', 'कौसलखंड', 'महारामोत्सव' आदि अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनमें राम की विलास-क्रीड़ा का ही वर्णन अधिक है। बाबा रघुनाथदास का 'विश्राम सागर' इसी प्रकार का ग्रंथ है। महाराज रघुराजसिंह ने 'राम-स्वयंवर', 'रामाष्टयाम' आदि काव्य रचकर रामभक्ति-धारा को बीसवीं शताब्दी तक पहुँचा दिया है।

सिंह और निराला में शृंगार और वीररस की प्रधानता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का करुणरस प्रमुख है।

रामकाव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है। केशव की 'रामचन्द्रिका' में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। बाद के शृंगारी रामकवियों ने भी प्रायः ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। तुलसीदास की रामकविता में ब्रजभाषा का सम्मिश्रण है। उन्होंने न तो शुद्ध अवधी का प्रयोग किया है और न ही शुद्ध ब्रजभाषा का। यही हाल अन्य भक्त कवियों का है। सच तो यह है कि उन्होंने परिमार्जित भाषा का स्वरूप दिखलाने के लिए अपने काव्य नहीं लिखे थे।

अभिव्या

राम-काव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भारतीय भाषाओं के शब्द मिलते हैं। खड़ी बोली के शब्द और मुहावरे सब में आते हैं। 'साकेत' तो है ही खड़ी बोली में। अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। तुलसी ने अनेक ऐसे शब्दों को हिन्दी की पोशाक पहनाकर भारतीय शब्दों के साथ बराबर का दरजा दिया है।

तुलसीदास जी ने भाषा का परिष्कृत रूप उपस्थित किया है। उसमें न तो वीरगाथा-काव्य की कर्कशता है, न प्रेमकाव्य की ग्रामीणता और न ही असंगति तथा विश्रृंखलता। तुलसी का शब्द-चयन पाण्डित्यपूर्ण है। उनमें वह शब्द-चमत्कार तो नहीं जो केशव अथवा सूर में है, परन्तु उनकी भाषा की भावात्मकता, रसानुकूलता अथवा उपयुक्तता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। तुलसी की भाषा-शैली अलंकृत न हो करके स्वाभाविक, सरल और भाव-व्यंजक है। तुलसी की प्रतिभा इतनी उच्चकोटि की है कि उसमें अलंकार स्वयं भावानुगामी हो गये हैं। अलंकारों के लिए भावों की अवहेलना नहीं करनी पड़ी। अलंकार का जहाँ कहीं प्रयोग हुआ है कुशलतापूर्वक हुआ है। तुलसी अनुप्रास को आदर नहीं देते, उपमा और रूपक से अधिक काम लेते हैं। अन्य कवियों ने भी कई प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया है। परन्तु इनमें केशव को छोड़कर, शब्दालंकारों को महत्त्व नहीं दिया गया।

रचना-भेद, भाषा-भेद, विचार-भेद, अलंकार-भेद के साथ ही साथ रामकाव्य में छंदभेद भी पाया जाता है। वीर-गाथाओं का छप्पय, सन्तकाव्य के दोहे, प्रेम-काव्य के दोहे-चौपाई, और इनके अतिरिक्त कुण्डलियाँ, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि प्रयुक्त हुए हैं। दोहा-चौपाई का मुख्य प्रयोग हुआ है। तुलसी ने इनका अधिकारपूर्ण प्रयोग किया है। केशव ने अनेक छंदों में कला का प्रदर्शन किया है, परन्तु उनमें भावानुकूलता नहीं है। गुप्त ने भी छंद बदल बदल कर रखे हैं, परन्तु उनके छंदों में पूरी शक्ति नहीं आ पाई। अस्तु:

छोटे-छोटे छंदों में कला प्रकट होती है और कहीं-कहीं उत्कृष्ट छंदरचना भी मिलती है।

रामभक्ति-काव्य में से कुछ नमूने नीचे दिये जा रहे हैं—

उदाहरण—

(१)

अवधेस के द्वार सकार गई सुत गोद में भूपति लै निकसे ।
अवलोकत सोच-विमोचन को ठगि-सी रही जे न ठगे धिक से ।।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सु खंजन जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे ।।

(तुलसीदास—कवितावली)

जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार ।।
की तुम्ह अखिल भुवन-पति लीन्ह मनुज-अवतार ।।
कोसलेस दसरथ के जाये । हम पितु-बचन मानि बन आये ।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ।।
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ।।
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ।।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।।
पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष कै रचना ।।

(तुलसीदास—रामचरितमानस)

तुलसीदास का हिन्दी महाकाव्य में वही स्थान है जो महर्षि वाल्मीकि का संस्कृत में। गोस्वामी जी हिन्दू-संस्कृति के पूरे प्रतिनिधि तथा परिपोषक हैं। आपने सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक तथा नैतिक सभी प्रकार की दशाओं का सफल चित्रण किया है। आपकी दृष्टि अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् दोनों की ओर खूब गई है। भक्ति, ज्ञान, प्रेम, माया, वैराग्य, ब्रह्म, सत्संग आदि का बहुत अच्छा स्पष्टीकरण आपने किया है। आपकी भाषा, वाक्य-रचना, शब्द-विन्यास और वर्णनशैली सभी सुन्दर और स्वच्छ हैं।

(२)

पहरे राम तुम्हारे सोवत । मैं मतिमंद अंध नहीं जोवत ।।
अपमारग मारग महि जान्यों । इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो ।।
औरनि के बल अनत प्रकार । अगरदास के राम अधार ।।

(अग्रदास)

आप की कविता भी तुलसीदास की शैली की है और उसमें ब्रजभाषा की ही पूरी प्रधानता है। इनके शिष्य नाभादास भी ब्रजभाषा में राम-भक्ति-कविता

लिखते थे। इन दोनों की पद्यरचना में एक सी शैली और निपुणता पाई जाती है।

(३)

ए हो हनू! कह्यो श्रीरघुवीर कछू सुधि है सियकी छिति माँहो ?
है प्रभु लंक कलंक बिना सुबसै तहँ रावन बाग की छांहो।
जीवति है ? कहिवेई को नाथ, सु क्यो न मरी हमतें बिछुराहो ?
प्रान बसै पदपंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं ॥
(हृदयराम—हनुमन्नाटक)

हनुमान-भक्ति का सकेत रामानन्द और तुलसीदास में मिलता है। उनका मतव्य है कि राम-भक्ति हनुमान जी के प्रसाद से ही प्राप्त होनी है। हृदयराम ने संस्कृत के हनुमन्नाटक की शैली पर ही अपने ग्रंथ की रचना की। इनके बाद रायमल्ल पाडे ने 'हनुमान चरित' नामी एक काव्य लिखा किन्तु हनुमान जी का चरित लिखने की प्रणाली बहुत आगे नहीं चल पायी। हाँ, मुक्तक अवश्य लिखे गये।

(४)

देहि अंगद राज तो कहँ मारि बानर-राज को,
बाँधि देहिं विभीषनहि अरु फोरि सेतु समाज को
पूंछ जारहिं अक्षरिपु की पायँ लागहिं रुद्र के
सीय को तब देहु रामहिं पार जाय समुद्र के
(केशव—रामचंद्रिका)

कहा कुंभकर्नो कहा इंद्रजीतो,
करै सोहबौ वा करै युद्ध भीतो।
सु जौ लौं जियौं हौं सदा दास तेरो,
सिया को सकै लै सुनो मंत्र मेरो।
हतौं राम स्यौं बंधु सुग्रीव मारौं,
अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं ॥
(केशव—रामचंद्रिका)

केशवदास की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने कई शैलियों में कई प्रकार की रचनायें की हैं। 'रामचंद्रिका' में अपने विविध छंद-रचनाशैली का शास्त्रीय और पाण्डित्यपूर्ण नमूना दिया है। यह प्रबन्ध-काव्य भी है मुक्तक भी है। इसके संवाद, इसकी वर्णनशैली शानदार है। हाँ, कथाओं के सम्बन्ध-निर्वाह में कहीं-कहीं शिथिलता आ गई है। केशव का शब्द-कौशल, चमत्कार-चातुर्य और सांगोपांग प्रसिद्ध है।

(५)

भए विकल अति पवनकुमारा। लगे करन तब हृदय विचारा ॥

यह अजीत बालक अर जोरा । अब न चलै कछु विक्रम मोरा ।।
मैं सब भाँति भयों बेहाला । केहि विधि उबरहुं रण विकराला ।।
भाजि जाहुं जो समर बिहाई । तौ प्रभु अग्र लाज अधिकाई ।।
कहहि सकल-जन करि उपहासा । भजे भरतसुत बालक त्रासा ।।

(मधुसूदनदास—रामाश्वमेध)

इनकी शैली 'रामचरित-मानस' के ढंग की है । दोहे-चौपाइयों के बीच में कहीं-कहीं गीतिका आदि दूसरे छंद भी आये हैं । इनकी भाषा भी प्रायः अवधी है । नायकों के शीलगुण भी इन्होंने तुलसीदास जी के समान रखे हैं । इनकी कवित्व शक्ति और प्रबन्ध-कुशलता प्रशंसनीय है ।

(६)

अर्क कामो रौद्र अट्टहास किलकारें,
ललकारें हाँक मानो काल घटा घहरात है ।
लंक जारि ठाढ़े सिन्धु तट के निकट,
कोटि-कोटि बिज्जु छटा छहरात है ।
पार कहं प्रातकाल बार-रवि मंडल,
बिसाल मुख-मंडल टवनि ठहरात है ।
तामें ओति ज्वाल जाम भाल की लपट भरी,
काल कैसी जीभ पूंछ लाल लहरात है ।।

(मनियारसिंह—सुन्दरकांड)

यह एक अच्छे कवि की रचना है । इनकी भाषा सानुप्रास और शिष्ट ब्रज-भाषा है जिसमें संस्कृत शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है 'सौंदर्यलहरी' और 'सुन्दर कांड' की शैली रामायण के अनुसार रखी गई है । रीतिकाव्य में अनेक कवियों ने संस्कृत से अनुवाद करके अथवा स्वतन्त्र रचना करके रामकाव्य की न्यूनाधिक श्रीवृद्धि की है, परन्तु साहित्यिकता बहुत कम में आ पाई है ।

(७)

अनल अखंड को प्रकाश नव-खंड छायो,
ज्वाला चंड मानो ब्रह्माण्ड फेरें जाय-जाय;
पुरी में ललात ज्वालमालै करगीन एक,
लोहित पयोधि भयो छाना एक छाय-छाय ।
देवता मुनीस सिद्ध चारण गंधर्व जेते,
भाजि भहराने देखि व्योम ओर धाय-धाय
हेरि रामराज हैन दौर्‌यौ लंक लाय रावे,

घाव भरे चले कपि राय यश गाय-गाय ॥

(म० रघुराजसिंह)

महाराजा रघुराजसिंह जी ने अनेक विषयों पर कविता लिखी है जो बहुत विशद और मनमोहिनी हैं। इनका रामाष्टयाम उत्तम ग्रन्थ है। इसमें छंदों की छटा और अनुप्रास दर्शनीय है, तथा युद्ध, मृगया और भक्ति के वर्णन सुन्दर हैं। इनकी भक्ति दास-भाव की रही है। इनकी कविता में कहीं-कहीं तुलसी की छाप भी लक्षित होती है।

(८)

"यह वीर क्या कहने चला ?
कह अरे, क्या चाहिए तुम को भला ?"
"जनकपुर की राज-कुञ्ज-विहारिका,
एक सुकुमारी सलोनी सारिका।
देख निज शिक्षा सफल लक्ष्मण हँसे,
ऊर्मिला के नेत्र खंजन से फँसे।
"तोड़ना होगा धनुष उस के लिए"
"तोड़ डाला है उसे प्रभु ने प्रिये ॥"
"सुतनु, टूटे का भला क्या तोड़ना!
वीर का है काम दाड़िम फोड़ना।
होड़ दाँतों की तुम्हारे जो करे,
जन्म मिथिला या अयोध्या में धरे!"

(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत)

आधुनिक काल की राम-कविताओं में 'साकेत' अत्यन्त प्रसिद्ध है—परन्तु इसमें राम और सीता का वर्णन अधिक न हो करके लक्ष्मण और ऊर्मिला का वृत्तान्त है। इसमें भक्ति भी नहीं है।

कृष्ण-काव्य

वैष्णव साहित्य में कृष्ण-काव्य का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। महाभारत के कृष्ण राजनीतिज्ञ और नीतिनियामक नेता हैं। वे राधा और गोपियों के प्रिय नायक नहीं हैं। महाभारत में तो राधा का नाम तक नहीं आता। पुराणों में कृष्ण को ईश्वरत्व प्राप्त हुआ है, लेकिन प्रायः पुराणों में राधा का नाम नहीं मिलता। कृष्णभक्ति के प्रमुख आधार श्रीमद्भा-

परम्परा

गवत तक में राधा का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ। हाँ, एक गोपी का निर्देश

अवश्य है जिसने पूर्व जन्म में भी कृष्ण की आराधना की। 'आराधना' शब्द में ही 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति हुई। कृष्णभक्ति में राधा का स्थान प्रधान है। निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी सम्प्रदायों में कृष्ण का ब्रह्मत्व और राधा की विशिष्टता स्वीकार की गई है। आगे चलकर गौड़ सम्प्रदाय की राधा-वल्लभी शाखा और निम्बार्क सम्प्रदाय की सखी शाखा ने राधा को अधिक महत्त्व दिया। निम्बार्कों में संस्कृत के प्रसिद्ध गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव ने राधा-कृष्ण-विहार के गीत गाये हैं। यहीं से हमारे साहित्य में कृष्ण-भक्ति का प्रारम्भ होता है। हिन्दी में वैष्णव साहित्य के जन्मदाता विद्यापति हैं। परन्तु उनकी कविता में जयदेव के भौतिक प्रेम की छाप स्पष्ट है। इसमें ईश्वरीय अनुभूति की भावना अथवा भक्ति नहीं मिलती। राधा-कृष्ण का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आलोचकगण इस लौकिक शृंगार में भले ही आध्यात्मिकता का संकेत मान लें पर राधा का यौवन-विकास, उसकी वयःसन्धि, कृष्ण से मिलन, मान, विरह आदि इस ढंग से लिखे गये हैं कि इनसे भक्ति की प्रेरणा नहीं हो सकती। वैष्णव भक्ति की सात्विक धारा दक्षिण से बहती हुई आई और इसका प्रचार सब से अधिक बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने और उत्तर भारत में वल्लभाचार्य ने किया।

हिन्दी में कृष्ण के पावन चरित्र से भक्तिभावना के सामञ्जस्य का समस्त श्रेय वल्लभाचार्य को है क्योंकि इन्हीं के चलाये हुए पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-काव्य की रचना की। कृष्ण-भक्त कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि सन्तों, प्रेममार्गियों और राम-कवियों को मिला कर भी उतनी नहीं है। संतकाव्य में कबीर, प्रेमकाव्य में जायसी और रामकाव्य में तुलसी अन्य सब पर छा गये हैं; परन्तु कृष्ण-काव्य में सूर, नन्ददास, मीराबाई, हितहरिवंश, रसखान, रत्नाकर आदि अनेक प्रसिद्ध कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

इनकी कृतियों पर हम काल-क्रम के अनुसार विचार करेंगे।

भक्तिपूर्ण कृष्णकाव्य

भक्तिकाल की अनन्यतम कृष्ण-सम्बन्धी रचनाओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

प्रमुख रचनाएँ सूरदास—'सूरसागर', 'भ्रमरगीत'।

नन्ददास—'रास पञ्चाध्यायी', 'भ्रमरगीत', 'सुदामा चरित' इत्यादि।

कृष्णदास—'प्रेम-तत्व-निरूपण', 'भ्रमरगीत'।
परमानन्ददास—'परमानन्द सागर'।
कुम्भनदास—फुटकर पद।
चतुर्भुजदास—'द्वादशयश', 'भक्ति प्रताप'।
छीत स्वामी—फुटकर पद।
गोविन्द स्वामी—पद।
हितहरिवंश—'हित चौरासी'।
ध्रुवदास—रसरत्नावली, ब्रजलीला, वनविहार, रसविहार, आदि ४० ग्रंथ।
गदाधर भट्ट—अनेक ग्रंथ।
सूरदास मदनमोहन—फुटकर पद।
मीराबाई—'नरसी का मायरा', 'गीतगोविन्द टीका', 'राग गोविन्द', 'राग सोरठा के पद'।
स्वामी हरिदास—पद और बानी।
श्रीभट्ट—'युगल शतक', 'आदि बानी'।
हरिराम व्यास—'रासपञ्चाध्यायी', 'पद'।
रसखान—'प्रेम वाटिका', 'सुजान रसखान'।
ध्रुवदास—'रसरत्नावली', 'रहस्य मंजरी', 'रस विहार', 'भजन' आदि अनेक ग्रंथ।

× × × ×

कृष्ण-काव्य में वैयक्तिक और साम्प्रदायिक शैलियों के कितने ही भेद मिलते हैं।

१—अष्टछाप के कवियों का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इन्होंने कृष्ण के अनुग्रह (पुष्टि) की प्राप्ति के लिए भक्ति का प्रतिपादन किया है। गोपीजनों ने अपने प्रेम से कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था, इस लिए भक्त को गोप-गोपियों के कृत्यों का ही अनुकरण करना चाहिए। अष्टछाप के कवियों में सूरदास और नन्ददास की कविता उच्चकोटि की है। इनके अतिरिक्त पुष्टिमार्ग के अनुयायियों में रसखान का नाम कृष्ण-साहित्य में अमर रहेगा।

काव्य-शैली

२—हितहरिवंश, हरिराम व्यास और ध्रुवदास राधावल्लभी सम्प्रदाय में थे। इनके मत में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति की भक्ति आदर्श भक्ति है। इन्होंने राधा-कृष्ण की विशुद्ध शृंगार-केलि का सरस वर्णन किया है। इन्होंने राधा का महत्व कृष्ण से भी अधिक माना है और राधा के दिव्य शृंगार का मोहक वर्णन किया है। राधा का रूप अधिक रसमय तथा मोहक बन पड़ा है।

३—निम्बार्कमतानुयायियों में स्वामी हरिदास और श्रीभट्ट जी प्रसिद्ध हैं।

मीराबाई की भक्ति-भावना स्वतन्त्र होती की थी, फिर भी उस पर निम्बार्क मत का प्रभाव स्पष्ट है। निम्बार्क के मत में परब्रह्म कृष्ण प्रकृतिरूप राधा के साथ उपास्यदेव हैं। ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी कृष्ण के चरणकमलों की आराधना करते हैं। समस्त जीव उनके आश्रित हैं। जो भक्त उनके निवास, स्वरूप, कृपा और प्रमोद को जानते हुए उनकी शरण में आते हैं, उन्हीं को कृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है।

४—गौड़ीय सम्प्रदाय के संस्थापक श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन हुए हैं। इन्होंने गोपाल कृष्ण की आराधना पर जोर दिया है और उपासना तथा पूजा को प्राधान्य न देकर कृष्ण-लीला तथा नाम-कीर्तन का प्रचार किया है।

इनके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के सिद्धान्त भी हिन्दी काव्यों में मिलते हैं, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनका महत्त्व अधिक नहीं है।

मीरा और रसखान के अलावा बहुत से कवि ऐसे हुए जिनमें किसी मतवाद का आग्रह नहीं है।

एक-दो आवश्यक बातें यहाँ बतलाकर हम कृष्ण-काव्य का समष्टिरूप से अवलोकन करेंगे। पहली बात यह है कि सिद्धान्तों में न्यूनाधिक अन्तर रहते हुए भी सब ने सूरदास के काव्य का अनुसरण किया है और सब ने 'पुष्टि' पर अपनी धारणा प्रकट की है। दूसरी बात यह है कि कृष्ण और व्रजभूमि के सौंदर्य और इनके प्रति प्रेम का वर्णन सब सम्प्रदायों में मिलता है। सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण के रास और प्रकृति की शोभा का चित्रण किया है, मीरा का स्थान इन सब से अलग है। उसने कृष्ण-लीला की अपेक्षा कृष्ण के प्रेममय स्वरूप का वर्णन किया है। वह राधा को बीच में नहीं लाई। वह स्वयं राधा-रूप थी।

भक्त कवियों ने कृष्ण का वह मनोरंजक रूप उपस्थित किया जो बाल-लीलाएँ करने वाला और गोपिकाओं को रिझाने-खिझाने वाला था। राम-भक्तों ने तो राम के लोकरक्षक रूप को ही हृदयंगम किया था। कृष्ण का लोकरक्षक रूप भी अवश्य है जिसकी अभिव्यक्ति महाभारत में हुई है, जो पूतना-संहार, बकासुर-वध, कंस-नाश आदि में दीख पड़ती है, परन्तु कृष्णभक्ति के हिन्दी कवियों ने उस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। महाभारत का नीतिज्ञ, वीर कृष्ण हिन्दी काव्य में नहीं है—वहाँ है सौंदर्य की मूर्ति और प्रेम का प्रतीक राधावल्लभ, गोपीनाथ कृष्ण। सुनते हैं कि रसखान सर्व-प्रथम किसी से यह सुनकर कि श्रीकृष्ण उनकी प्रेयसी से कहीं अधिक सुन्दर हैं, भगवान् की ओर आकृष्ट हुए थे। कृष्ण के लावण्य को चित्रित भक्ति का आवरण पग गमाता गया है। आगे चलकर राधाकृष्ण के नाम पर नायक-नायिका-भेद की सृष्टि भी होने लगी। भक्तिकाल

में ही राधाकृष्ण की शोभा को लेकर नखशिख-वर्णन की प्रथा भी चल पड़ी थी। श्रीकृष्ण के रास का आधार लेकर ऋतु-वर्णन भी प्रारम्भ हो गया था। वैसे तो सूर ने भी स्थान-स्थान पर नायिका-भेद दिया है, और ऋतु-वर्णन भी किया है, परन्तु रीति-कवियों की भाँति नहीं।

वैसे तो साकार उपासना में रहस्य की सम्भावना नहीं है पर कहीं-कहीं सगुणवाद में निर्गुण की ओर भी आत्मा को प्रेरित किया गया है अथवा प्रतीकवाद आ गया है। मीरा में रहस्यवाद स्पष्ट है। इन पंक्तियों की कबीर और जायसी के रहस्यवाद से तुलना करनी चाहिए—

सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोना होई ?
गगन मण्डल पै सेज पिया की किस विधि मिलना होई ?

(मीरा)

सूरदास ने अपनी रहस्यात्मक अन्योक्तियों में चकई, मनि, भृङ्ग और सुवे को सम्बोधन किया है। ये सब आत्मा के प्रतीक हैं। इस प्रकार के रूपक अनेक कवियों में मिलते हैं। राधाकृष्ण हमारे सगुण काव्य में प्रकृति और ब्रह्म, अथवा शरीर और आत्मा के प्रतीक-मात्र हैं। गोकुल और मथुरा अनादि जीवन के दो दार्शनिक ओर-छोर हैं। श्रीकृष्ण की मुरली 'योगमाया' है। इस मुरली की ध्वनि से गोपियों रूपी आत्माओं का आह्वान होता है। सोलह सहस्र गोपियों में श्रीकृष्ण ऐसे हैं जैसे असंख्य आत्माओं के बीच में परमात्मा। नन्ददास की 'रासपञ्चाध्यायी' में इस विषय को सरस ढंग से समझाया गया है।

कृष्ण-भक्त-कवियों में रामभक्तों की अपेक्षा तन्मयता अधिक है, उनमें प्रेमानुभूति की मात्रा भी बहुत अधिक है। इसी कारण इस परम-भाव की भक्ति का बाहुल्य मुक्तक-काव्य में प्रगट हुआ है। प्रबन्ध काव्य के उपयुक्त यह भक्ति-भावना नहीं है। इस जगह यह भी दोहरा देना आवश्यक है कि राधाकृष्ण की भक्ति कई रूपों में प्रकट हुई है। सूर की भक्ति सखा-भाव की है तो मीरा की दाम्पत्य भाव की। इनके अतिरिक्त दास्यभाव और वात्सल्य भाव की भक्ति के नमूने भी मिलते हैं।

राधाकृष्ण के बाल और यौवन तथा गोपियों के विरह-वियोग के वर्णन के अतिरिक्त कृष्ण-काव्य में आत्म-निवेदन और विनय, गुरु-प्रशंसा, प्रकृति, नीति, उपदेश आदि अनेक विषयों पर रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

कृष्ण-साहित्य में दो रस प्रधान हैं—वात्सल्य और शृंगार। वात्सल्य बाल्यावस्था का और शृंगार यौवनावस्था का रस है। वात्सल्य के क्षेत्र में जितनी मनोवैज्ञानिकता सूर को प्राप्त हुई है उतनी और किसी कवि को नहीं। वे बालक के सरल से सरल कार्यों को बारीकी से वर्णन करते हैं। माँ और बच्चे की सूक्ष्म

भावनाओं और प्रवृत्तियों का स्वाभाविक चित्रण सूर से बढ़कर किसी हिन्दी कवि ने आज तक नहीं किया। माखन चोरी में, सखाओं के साथ खेल-कूद में, लड़ाई-झगड़े में, यशोदा को शिकायतों का उत्तर देने में, माता द्वारा दंडित किये जाने में इत्यादि अनेक परिस्थितियों में बालकृष्ण के लौकिक आचार का ठीक-ठीक और सजीव चित्रण सूर ने ही किया है। व्यास जी का बाल-लीला-वर्णन भी उत्कृष्ट है।

शृंगार-रस कृष्ण-काव्य का सर्वप्रधान रस है। इसका प्रवाह अन्य सब रसों का अतिक्रमण करके स्थायी रूप से रहता है। छोटी अवस्था से ही कृष्ण गोपियों के साथ शृंगार-क्रीड़ा करते दिखाई देते हैं। राधाकृष्ण की प्रेम-कहानी का विकास अथवा वर्णन प्रायः सब कवियों ने किया है। शृंगार-रस के अन्तर्गत जितने भी संचारी भाव होते हैं वे सब कृष्ण-काव्य में चित्रित किये गये हैं। कृष्ण का रति-भाव, गोपिकाओं का आलम्बन, कृष्ण-शोभा का उद्दीपन कृष्ण-गोपिका-मिलन में स्वेदकम्प और रोमाञ्च का अनुभव, मोह और चपलता के संचारी भाव-सभी शृंगाररस के सहायक उपस्थित किये गये हैं। रस की इतनी व्यापकता कहीं कम ही मिलती है। संयोग और वियोग दोनों प्रकार के शृंगार का साहित्यिक वर्णन कृष्ण-काव्य में मिलता है। भ्रमर-गीतों में विरह-वर्णन अत्यन्त भावात्मक है। इस वर्णन में प्राचीन परंपरा का पालन किया जाता है और स्थान-स्थान पर उपालम्भ के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। हिन्दी में सर्वोत्तम विरह-वर्णन सूरदास का है। बल्कि यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि विप्रलम्भ का जैसा वर्णन 'सूरसागर' में है वैसा संसार के किसी साहित्य में दुर्लभ है। मीरा का विरह-निवेदन सब से अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि वह स्त्री के अपने ही हृदय का उद्गार है। मिलन के वर्णन में सौन्दर्य-रतिक्रीड़ा केलि, विलास, राग, छेड़-छाड़ आदि की व्यंजना भी भावपूर्ण है। शुरू-शुरू में कुछ कवियों में वासना की सामग्री रहते हुए भी अश्लीलता नहीं आने पाई और राधाकृष्ण आराध्य बने रहे हैं। बाद के कवियों के हाथ में श्रीकृष्ण और राधा साधारण नायक-नायिका बन कर रह गये हैं और आगे चलकर मनोरंजन-लीला, विलासिता, वेश्यों की वह धारा बहाई गयी जो रीतिकाल में शृंगारिक नदी-नालों के रूप में उमड़ निकली।

अनुग्रह-भावना में शान्त-रस की सृष्टि हुई है। कृष्ण का ऐश्वर्य और अलौकिक कार्य-व्यापार, अद्भुत-रस की सृष्टि का कारण हुआ है। हास्य और वीर-रस गौण रूप में मिलते हैं। भ्रमर गीतों में गोपियों के वचनों में हास्य का सुन्दर समावेश है। नन्ददास जी का 'भँवरगीत' हास्यरस की सृष्टि में सफल हुआ है। 'सूरसागर' में वीर-रस के अनेक उदाहरण हैं। सच तो यह है कि कृष्ण-चरित्र के अनुवर्ती आख्यानों में सब रसों की सामग्री मिलती है, पर कोमल

रसों का चित्रण अधिक उपयुक्त, सुन्दर और स्वाभाविक है।

कवि का मुख्य धर्म है विषय की तल्लीनता। इस दृष्टि से कृष्ण-साहित्य उच्चकोटि का साहित्य है। इसमें भावों का जितना सूक्ष्म, सजीव और रसानुकूल चित्रण हुआ है उतना कहीं और सुलभ नहीं है। सूर, नन्ददास, मीरा और रसखान की भी सहृदयता, सरसता और तल्लीनता कृष्ण-काव्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी आदरणीय रहेगी।

प्रक्रिया

तत्कालीन कृष्ण-काव्य एकमात्र ब्रजभाषा में लिखा गया है। जिस प्रकार राम की जन्मभूमि की अवधी भाषा राम काव्य के लिए उपयुक्त हुई है, इसी प्रकार कृष्ण की ब्रजभूमि की भाषा कृष्ण चरित्र की व्याख्या के लिए समर्थ हुई है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के बाल और किशोर जीवन में कोमल भावनाओं का साम्राज्य होने के कारण ब्रजभाषा जैसी ललित और श्रुतिमधुर भाषा ही उसके चित्रण में योग दे सकती थी। सारे कृष्ण-साहित्य में एक ही भाषा के प्रयोग के कारण उसका भली भांति परि-मार्जन और परिष्करण हो सका है। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने में सूर का बहुत हाथ है। उस समय तक अधिकांश साहित्य राजस्थानी खड़ी बोली अथवा अवधी में लिखा गया था। सूरदास ने साधारण बोलचाल की ब्रजभाषा लेकर अपनी सब से पहली साहित्यिक रचना का माध्यम बनाया। उसमें संस्कृत पद भी हैं, परन्तु बहुतायत से नहीं। उसमें ठेठ शब्द भी आ गये हैं पर उसकी साहित्यिकता निश्चित है। सूर के लिखने का ढंग पाण्डित्यपूर्ण है। अन्य अष्ट-छाप के कवियों ने भी शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है—अन्यत्त नंददास 'जड़िया' ने अपनी भाषा को तद्भव शब्दों से अधिक अलंकृत कर दिया है। मीरा की भाषा में वह एकरूपता नहीं है जो ब्रजभाषा-कवियों में है। मीरा का जीवन मारवाड़, मेवाड़, गुजरात और ब्रज में व्यतीत हुआ था, इस लिए उनकी भाषा में राजस्थानी का पुट है। फिर भी भाषा का स्वरूप ब्रजभाषा ही रहा है। रसखान की भाषा अधिक सरल है—सरसता में वह सूर और मीरा की बराबरी पर रही है।

इस काल की भाषा-शैली की यह विशेषता है कि भावों का स्पष्टीकरण सीधे और स्पष्ट ढंग से किया गया है। अर्थ को छिपाने अथवा उक्ति में कृत्रिमता लाने का प्रयत्न नहीं किया गया। रसखान को ही ले लें। चाहे उनके समय में कविता को अलंकृत करने की प्रवृत्ति आने लगी थी, फिर भी वे कृत्रिम अलंकारों पर नहीं रीझे। अलंकारों के बिना ही इन कवियों के चित्र सजीव और सुन्दर हैं! जहां कहीं अलंकार आये हैं, वे स्वाभाविकता को बढ़ाते हैं। उपमा और दृष्टान्त का उपयोग भावों को अधिक सरल बनाने के लिए किया गया है।

कृष्ण-कवियों की कविताओं का एक और लक्षण है उनका संगीत। बहुत से भक्तों ने पद ही लिखे हैं जिनको वे मूर्ति के आगे गाते थे। सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों के पद प्रसिद्ध हैं। मीरा के गीत आज भी घर-घर गाये जाते हैं। रसखान के संगीत का प्रवाह भी अनूठा है। नंददास और कुछ दूसरे कवियों ने रोला, दोहा आदि का प्रयोग भी किया है और सूरदास ने भी रोला और चौपाई लिखे हैं; परन्तु कृष्ण काव्य में राग-रागनियाँ ही अधिक हैं।

प्राचीन कृष्ण-काव्य के उदाहरण—

उदाहरण

(१)

मैया मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मो सों मेरे पाइँ पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवै मन बहराइ।
" सूर " स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाई॥

(सूरदास)

बिन गोपाल बैरिन भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत-किरन भानु भईं भुंजैं॥
ए, ऊधौ! कहियो माधव सों, बिरह करद कर मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोहत, अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

सूरदास जी की कृष्ण कविता सर्वोत्कृष्ट है और इस कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है। भक्ति के साथ-साथ इन्होंने मानव-चरित्र, प्रकृति और संसार के अनुभवों का विशद प्रदर्शन किया है। वर्णन-सौष्ठव, साहित्य-सौरभ, भाव-गांभीर्य, भाषा-माधुर्य और प्रभावपूर्णता इनकी कविता के विशेष गुण हैं। इनकी भक्ति वात्सल्य, सख्य और सखीभाव की है। इन्होंने राम, कृष्ण और विष्णु को एक ही माना है।

'सूरसागर' की प्रेरणा उन्हें श्रीमद्भागवत से है, पर उसकी रचना में सूरदास की काव्यकला मौलिकता स्पष्ट है। कृष्ण की बाललीला में वात्सल्य-रस और भ्रमरगीत (गोपी-विरह-वर्णन) में शृङ्गार-रस की अनुपम धारा बहती है।

(२)

ऊधव को उपदेश, सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सब गुन आगरी॥

रगों का चित्रण अधिक उपयुक्त, सुन्दर और स्वाभाविक है ।

कवि का मुख्य धर्म है विषय की तल्लीनता । इस दृष्टि से कृष्ण-साहित्य उच्चकोटि का साहित्य है । इसमें भावों का जितना सूक्ष्म, सजीव और रसानुकूल चित्रण हुआ है उतना यहाँ और सुलभ नहीं है । सूर, नन्ददास, मीरा और रसखान की सी सहृदयता, सरसता और तल्लीनता कृष्ण-काव्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी आदरणीय रहेगी ।

तत्कालीन कृष्ण-काव्य एकमात्र ब्रजभाषा में लिखा गया है । जिस प्रकार राम की जन्मभूमि की अवधी भाषा राम काव्य के लिए उपयुक्त हुई है, इसी प्रकार कृष्ण की ब्रजभूमि की भाषा कृष्ण चरित्र की व्याख्या के लिए समर्थ हुई है । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के बाल और किशोर जीवन में कोमल भावनाओं का साम्राज्य होने के कारण ब्रजभाषा जैसी ललित और श्रुतिमधुर भाषा ही उसके चित्रण में योग दे सकती थी ।

अभिव्यंजना

सारे कृष्ण-साहित्य में एक ही भाषा के प्रयोग के कारण उसका भली भांति परिमार्जन और परिष्करण हो सका है । ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने में सूर का बहुत हाथ है । उस समय तक अधिकांश साहित्य राजस्थानी खड़ी बोली अथवा अवधी में लिखा गया था । सूरदास ने साधारण बोलचाल की ब्रजभाषा लेकर अपनी सब से पहली साहित्यिक रचना का माध्यम बनाया । उसमें संस्कृत पद भी हैं, परन्तु बहुतायत से नहीं । उसमें ठेठ शब्द भी आ गये हैं पर उसकी साहित्यिकता निश्चित है । सूर के लिखने का ढंग पाण्डित्यपूर्ण है । अन्य अष्टछाप के कवियों ने भी शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है—अलबत्ता नंददास 'जड़िया' ने अपनी भाषा को तद्भव शब्दों से अधिक अलंकृत कर दिया है । मीरा की भाषा में वह एकरूपता नहीं है जो ब्रजभाषा-कवियों में है । मीरा का जीवन मारवाड़, मेवाड़, गुजरात और ब्रज में व्यतीत हुआ था, इस लिए उसकी भाषा में राजस्थानी का पुट है । फिर भी भाषा का स्वरूप ब्रजभाषा ही रहा है । रसखान की भाषा अधिक सरल है—सरसता में वह सूर और मीरा की बराबरी कर रही है ।

इस काल की भाषा-शैली की यह विशेषता है कि भावों का स्पष्टीकरण सीधे और स्पष्ट ढंग से किया गया है । अर्थ को छिपाने अथवा उक्ति में कृत्रिमता लाने का प्रयत्न नहीं किया गया । रसखान को ही ले लें । यद्यपि उनके समय में कविता को अलंकृत करने की प्रवृत्ति आने लगी थी, फिर भी वे कृत्रिम अलंकारों पर नहीं रीझे । अलंकारों के बिना ही इन कवियों के चित्र सजीव और सुन्दर हैं ! जहाँ कहीं अलंकार आये हैं, वे स्वाभाविकता को बढ़ाते हैं । उपमा और दृष्टान्त का उपयोग भावों को अधिक सरल बनाने के लिए किया गया है ।

कृष्ण-कवियों की कविताओं का एक और लक्षण है उनका संगीत। बहुत से भक्तों ने पद ही लिखे हैं जिनको वे मूर्ति के आगे गाते थे। सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों के पद प्रसिद्ध हैं। मीरा के गीत आज भी घर-घर गाये जाते हैं। रसखान के संगीत का प्रवाह भी अनूठा है। नंददास और कुछ दूसरे कवियों ने रोला, दोहा आदि का प्रयोग भी किया है और सूरदास ने भी रोला और चौपाई लिखे हैं; परन्तु कृष्ण काव्य में राग-रागनियाँ ही अधिक हैं।

प्राचीन कृष्ण-काव्य के उदाहरण—

उदाहरण

(१)

मैया मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मो सों मेरे पाइं पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कूं आवै मन बहराइ।
"सूर" स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिगाई॥

(सूरदास)

बिन गुपाल बैरिन भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत-किरन भानु भईं भुंजैं॥
ए ऊधो! कहियो माधव सों, बिरह करद कर मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोहत, अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

सूरदास जी की कृष्ण कविता सर्वोत्कृष्ट है और इस कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है। भक्ति के साथ-साथ इन्होंने मानव-चरित्र, प्रकृति और संसार के अनुभवों का विशद प्रदर्शन किया है। वर्णन-सौष्ठव, साहित्य-सौरभ, भाव-मार्मिकता, भाषा-माधुर्य और प्रभावपूर्णता इनकी कविता के विशेष गुण हैं। इनकी भक्ति वात्सल्य, सखा और सखीभाव की है। इन्होंने राम, कृष्ण और विष्णु को एक ही माना है।

'सूरसागर' की प्रेरणा भले ही श्रीमद्भागवत से है, पर पदों की रचना में सूरदास की काव्यगत मौलिकता स्पष्ट है। कृष्ण की बाललीला में वात्सल्य-रस और भ्रमरगीत (गोपी-विरह-वर्णन) में शृंगार-रस की अनुपम धारा बहती है।

(२)

ऊधव को उपदेश, सुनो ब्रजनागरी।
रूप शील लावन्य, सब गुन आगरी॥

प्रेम सुधा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुञ्ज ।
सुन्दर श्याम विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज ।।
सुनो व्रजनागरी ।।
सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम बेलो द्रुम फूली ।।
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आये जल नैन ।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन ।।
व्यवस्था प्रेम की ।।

(नन्ददास-भँवरगीत)

इनकी कविता भी बड़ी मनोहारिणी है। 'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमर-गीत' की कविता उच्चकोटि की है। इसमें धाराप्रवाह, ओज, गंभीरता, विशदता आदि अनेक गुण हैं। रसों में शृंगाररस की प्रधानता है। अनुप्रासों और संस्कृत पदों का प्रयोग सुन्दर हुआ है। भाषा अत्यन्त मधुर, कोमल और प्रसाद-गुणपूर्ण है। शब्द-चयन में इन की जोड़ के कवि बहुत कम हुए हैं। 'नंददास जड़िया' इसीलिए उनका नाम पड़ा। रोला चौपाई आदि छंदों में आपने विशेष चमत्कार दिखाया है। मानव-हृदय का विश्लेषण प्रकृति-चित्रण की अपेक्षा इन्होंने अधिक किया है।

(३)

रासरस गोविंद करत बिहार ।
सूरसुता के पुलिन रम्य महं फूले कुंद मंदार ।।
प्रफुलित मलदल बिकसत कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार ।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार ।।
सुघर राय संगीत कलानिधि मोहन नंदकुमार ।
ब्रजभामिनि संग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार ।।
उभै स्वरूप सुभगता सीवाँ कोक कला गुन सार ।
कृष्णदास स्वामी गिरधर पिय पहिरे रस में हार ।।

(कृष्णदास)

आपकी कविता सूरदास और नंददास की कविता के समान तो नहीं, परन्तु है। इसमें अनुराग, भावपूर्णता और गंभीरता है। इसमें भक्ति और शृंगार का प्राधान्य है। काव्य में प्रयास अधिक और स्वाभाविकता कम है।

(४)

भाजि गयो मेरी भाजन फोरि ।
कहा कहौं सन मान जसोदा, घर ल्यायी माखन सब चोरि ।।

लरिका सात-पाँच संग लीन्हें, रोकें रहत गाँव की खोरि।
मारग में कोउ चलन न पावत, लेत दोहिनी हाथ मरोरि॥
समुझि न परे है या ढोटा की, रीति धोष गोरस ढंढोरि।
आनंद फिरत फागु सी खेलत, तारी दै-दै हँसत मुख मोरि॥
को यह कुँवर, कौन को ढोटा, सब ब्रज बाँध्यो प्रेम की डोरि।
'परमानंद दास' को ठाकुर, खेलि मलैयाँ भंवर डोरि॥

(परमानंददास)

अष्टछाप के कवियों में काव्य-श्रेष्ठता की दृष्टि से सूरदास और नन्ददास के बाद परमानन्ददास का नाम आता है। इन की रचना बड़ी सरल, सरस और भावपूर्ण है। पदों के लालित्य और माधुर्य के कारण इन्हें विशेष सफल कवि माना जाता है।

(५)

खेलत नंदकिसोर, व्रज में हो-हो होरी।
गौरी राग अलापत गावत मधु मुरली कल घोरी॥
कटि पियरी पट-पीत, बनी छबि, सीस चंद्रिका मोर।
मनमथ मान हरत मन चितवनि, चपल नैन की कोर॥
ग्वालवृंद स्यामघन सोभित, उत समूह व्रज-नारि।
विविध सिंगार सजे मिलि छुंदन देत भामिनि गारि॥
देखि समाज मदनमोहन को, धाईं सब मिलि सहित हुलास।
तिनमें मुख्य राधिका नागरि, सकल सुजन की रास॥
मगन भईं तन की सुधि बिसरी, हृदै गड्यौ अनुराग।
यह सुख तीनि लोक में नाहीं, गोपिन के बड़ भाग॥
चोर हार अंग चंदन भीजें, कीच मचो ब्रज-खोर।
मानों प्रेम-समुद्र अधिक बन, उमँगि चल्यौ मनि छोर॥

(चतुर्भुजदास)

आपके कीर्तन-पद बहुत मधुर और संगीतमय बन पड़े हैं। इनमें भक्ति-भावना और शृंगार की अच्छी छटा दिखाई देती है। आपके पदों में कृष्ण के जन्म से लेकर गोपी-विरह तक की व्रजलीला का वर्णन है।

(६)

आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिन मंडल मध्य स्यामघन सारंग राग जमायो।

ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिन्धु बढ़ायो ।
विविध विसद वृषभान नंदिनी श्रंग सुगंध दिखायो ।।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायो ।
तातायेई तायेइ धरि नवगति पति व्रजराज रिझायो ।।

(हितहरिवंश)

आप की कविता का विशेष गुण है मधुरता । इसी कारण से आप श्रीकृष्ण की बाँसुरी के अवतार माने गये हैं । आप संस्कृत के पंडित थे, इस लिए आप की कविता में सरसता, कला और भावपूर्णता अधिक है ।

(७)

नंद कुल चंद, वृषभानु कुल कौमुदी,
उदित वृंदाविपिन विमल आकासे ।
निकट वेष्टित सखी वृंद वरतारिका,
लोचन चकोर निज रूप रस प्यासे ।
रसिकजन-अनुराग-उदधि तजी मरजाद,
भाव अगनित कुमुदिनीगन विकासे ।
कहि गदाधर, सकल विस्व असुरनि बिना,
भानु भव ताप अग्यान न विनासे ।।

(गदाधर भट्ट)

भट्ट जी चैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र थे । वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे । उनकी भाषा में विद्वत्ता की छाप स्पष्ट है । पद-विन्यास का सौन्दर्य, भक्त-सुलभ हृदय-सारल्य, और भावगांभीर्य उनके पदों के विशिष्ट गुण हैं ।

(८)

गोविंद कबहुँ मिलै पिया मेरा ।
चरन-कमल को हँसि-हँसि देखौं, राखौं नैनन नेरा ।
निरखन कौं मोहि चाव घनेरो, कब देखौं मुख तेरा ।।
व्याकुल प्रान धरत नहिं धीरज, मिल तू मीत सबेरा ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ।।

(मीरा)

मीराबाई के पदों में अगाध प्रेम और हार्दिक भक्ति प्रगट होती है । आपका प्रभाव स्त्री-समाज और भक्त-समाज पर इतना गहरा पड़ा है कि अन्य किसी भी कवयित्री का उतना नहीं पड़ा । आपकी भक्ति में माधुर्य-भाव का ही प्राधान्य है । मीरा के सभी पद गेय हैं । भक्ति की तल्लीनता में मीरा ने न भाषा की सजावट

की चिंता की ओर न छंदों के गठन का प्रयत्न किया। भाषा में राजस्थानी का पुट है।

(६)

मोहत है चंदवा सिर मौर के जैसिये सुन्दर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल विराजति जैसी हिये बनमाल लसी है॥
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूंदि कै ग्वाल पुकारि हंसी है।
खोलिरी घूंघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन मांझ बसी है॥
(रसखान)

मुसलमान होते हुए भी रसखान पूरे पक्के वैष्णव थे। इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। पूरे भक्त होने पर भी ये शृंगार-रस की भी उत्कृष्ट कविता कर सकते थे। ब्रजभूमि के प्रति इनकी श्रद्धा अनुपम थी। कृष्ण और कृष्णभूमि पर लिखे गये इनके सवैये बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा चलती, सरस और शुद्ध ब्रजभाषा है। अनुप्रास का इन्होंने अत्यधिक प्रयोग नहीं किया।

रीतिकालीन कृष्ण-काव्य

रीतिकाल तक आते-आते हमारे काव्य की प्रकृति एकदम परिवर्तित हो गई। भक्ति का स्थान शृंगार ने ले लिया। आध्यात्मिकता के स्थान पर विलास ने अपना आसन जमाया। रीतिविवेचन के रेले में राधा और कृष्ण भी घसीटे गये। कृष्ण और राधा के मोहक सौंदर्य, उनकी काम-क्रीड़ा और गोपियों के विलास का लौकिक रूप सामने आया। कृष्ण-राधा की भक्ति में शृंगारिकता की प्रधानता हुई। रीति-प्रधकार कवियों ने प्रायः राधाकृष्ण के प्रेम का सहारा लेकर ही लौकिक शृंगारिकता की सृष्टि की। परन्तु इनका मुख्य विषय कृष्ण न था। बहुतों ने मंगलाचरण में राधा-कृष्ण का स्मरण अवश्य किया है। कृष्ण-चरित का प्रभाव इतना व्यापक था कि इस युग की कोई ही रचना होगी जिस में राधा-कृष्ण का उल्लेख न हुआ हो। बिहारी, देव, रघुनाथ, मतिराम, कुलपति मिश्र, मदन, कृष्ण कवि, सोमनाथ, पद्माकर, ठाकुर, और नवलसिंह सब की कृतियों में कृष्ण की सत्ता स्वीकृत हुई है। श्रीधर (मुरलीधर), ग्वाल और चन्द्रशेखर जैसे वीरकवियों ने भी कृष्णलीला का उल्लेख किया है।

इनके अतिरिक्त इस युग के कवियों का एक वर्ग ऐसा भी है जिनके काव्य में भक्ति-भावना की प्रधानता है। वास्तव में यही कवि भक्तिकालीन धार्मिक परम्परा के उत्तराधिकारी हैं। यह ठीक है कि इन की भी भक्ति में सामन्तीयता

का, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का, उत्तराधिकार नहीं मिला। मिला तो बस बाहरी ढांचे मात्र का उत्तराधिकार।

प्रमुख रचनाएँ

जिन काव्यों का एकमात्र विषय कृष्ण-चरित्र रहा है, उनके नाम काल-क्रमानुसार ये हैं—

घनानन्द—'कृपाकाड निबन्ध', 'रसकेलिवल्ली', 'सुजानसागर', 'बानी'।
नागरीदास—'गोपीप्रेमप्रकाश', 'व्रजसार', 'बिहार-चन्द्रिका', 'रास-रसलता', 'राग के कवित्त', 'गोविन्द परचई', 'भक्तिमगदीपिका' इत्यादि।
बख्शी हंसराज—'स्नेह-सागर'।
अलबेलि अलि—'समय प्रबन्ध पदावली'।
चाचा हितवृन्दावनदास—'रागरत्नाकर' आदि।
भगवत् रसिक—फुटकर।
श्रीहठी जी—'राधासुधाशतक'।
गोकुलनाथ—'गोविन्द सुखद विहार', 'राधाकृष्ण विलास'।
मञ्चित कवि—'सुरभिदानलीला', 'कृष्णायन'।
कृष्णदास—'माधुर्य लहरी'।
रसिक गोविन्द
बाबा दीनदयाल गिरि—'अनुराग बाग'।

× × × ×

काव्य-शैली

इस काल के कवियों में चाचा हितवृन्दावनदास और श्रीहठी जी राधावल्लभी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे और घनानन्द और भगवत् रसिक निम्बार्क-मतानुयायी थे। अन्य कवियों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। परन्तु कृष्ण-लीला-वर्णन सामान्य रूप से सब में रहता है। अधिकांश रचनाएँ पूर्ववर्ती भक्तों के भावों का पिष्टपेषण ही हैं। किन्तु इनमें बहुत से कवि भक्त थे और उन्हें मौलिकता अथवा नवीनता से सरोकार न था। घनानन्द का इनमें वही स्थान है जो सूरदास का पहले युग के कवियों में। इनके अतिरिक्त नागरीदास, चाचा हितवृन्दावन, भगवत् रसिक और बाबा दीनदयाल गिरि में अपनी-अपनी नवीनता और विशिष्टता है। घनानन्द ने संयोग और वियोग का वर्णन पाण्डित्यपूर्वक किया है। घनानन्द में मनोवैज्ञानिकता बहुत अधिक है। इनकी रचना की प्रवृत्ति अन्तर्वृत्ति-निरूपण की ओर है। इनमें बिहारी से अधिक गम्भीरता है। बिहारी में उछल-कूद, नटखट और भावोन्माद हैं, घनानन्द का उन्माद गूढ़, शान्त और

गम्भीर है। नागरीदास में फारसी काव्य का प्रभाव लक्षित होता है—उसमें सूफियाना ढंग का इश्क (प्रेम) प्रतिपादित किया गया है। भगवत् रसिक ने भी प्रेमतत्त्व का निरूपण करते हुए कृष्ण-भक्ति का प्रतिपादन किया है।

यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि इस समय रीति-शैली का दबदबा होते हुए भी इन कृष्ण-कवियों ने यथासम्भव अपने को उसके प्रभाव से बचाया है। श्रीहठी, गोकुलनाथ, और दीनदयाल गिरि ने कलापक्ष पर अवश्य जोर दिया है, और चाचा हितवृन्दावनदास तथा भक्ति ने नखशिख, छद्मलीला, ऋतुवर्णन आदि पर उत्कृष्ट पद लिखे हैं, किन्तु उन सब में हृदयपक्ष ही प्रधान है। अन्यथा यह मानना पड़ेगा कि इस काल की कविता कुछ शिथिल और हीन है। भावुकता और हृदय की सच्ची अनुभूति का उसमें अभाव ही है। भक्तिकाल के अध्यात्म-दर्शन का परिचय एक दो कवियों में ही मिल सकेगा।

इस युग की कविताओं में शृंगार-रस ही प्रधान है और प्रायः वह शृंगारिकता अश्लीलता और नग्नता में परिणत हो गई है। रीति-ग्रन्थकारों ने विशेष करके राधाकृष्ण को मुझे सरीखे स्त्री-पुरुषों से भी नीचे गिरा दिया है। इस तथ्य की ओर हम पहले भी संकेत कर चुके हैं। कृष्ण की लीलाओं और उनके विहार ने तथा समय की साहित्यिक प्रवृत्तियों ने उन कवियों को मोहित कर रखा था। लीलाओं में भी जलविहार, वनविहार, मानलीला, दानलीला, झूला होली कलेवा आदि निकृष्ट लीलाओं का वर्णन ही अधिक है।

भक्तिकाल के समान इस समय भी मुक्तक-काव्य की रचना ही अधिक हुई है। राम की अपेक्षा कृष्ण की ओर प्रबन्धकारों का बहुत कम ध्यान गया है। प्रबन्ध-रचना का उद्योग अवश्य हुआ, पर वह सफल न हो सका।

इस काल में भी कृष्ण-काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही है; कुछ इनी-गिनी रचनाएँ अवधी में लिखी गईं जो बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि

अभिव्या इस समय भाव-सौंदर्य की अपेक्षा भाषा-सौंदर्य पर अधिक जोर दिया गया है परन्तु भाषा निस्सन्देह स्निग्ध और स्वाभाविक हो गई है। घनानन्द की अर्थवत्ता तथा प्रयोग-विचित्रता, नागरीदास की सरसता, हठराज की सरलता और मधुरिमता, बाबा दीनदयाल गिरि का पाण्डित्य ध्यानयोग्य है। इस काव्य की भाषा अर्थगौरव से भरी हुई, मधुर और रसीली है। उसकी साहित्यिकता में किसी को सन्देह नहीं है।

श्रीहठी जी, गोकुलनाथ और बाबा दीनदयाल जी की रचनाओं में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यमक, अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का इनकी रचनाओं में विशेष बाहुल्य पाया जाता है, परन्तु इनके प्रयोग में ...

कवियों ने लढ़डपन अथवा हठ से काम नहीं लिया। अधिकतर कविताओं में अलंकार स्वाभाविक और यथास्थान आये हैं।

छंदों में भी विविधता पाई जाती है। कवित्त, सवैया, अरिल्ल, रूप-माला, घनाक्षरी आदि मधुर छंद अधिक उपयुक्त हुए हैं। दोहे और चौपाइयाँ भी हैं। भक्तिकाल के पदों का प्रयोग भी मिलता है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इन छंदों में केशवदास की तरह का तमाशा नहीं है। छंदों का निर्वाह प्राय अच्छा हुआ है।

इस काल की कृष्ण-भक्ति-कविता से कुछ अवतरण दिये जाते हैं—

उदाहरण

(१)

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो,
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत महि-मंडल परे ते परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे॥
आनंद को घन छायो रहत निरंतर हो,
सरस सुदेय सों पपीहा-पन वहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसो,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे॥

(घनानन्द)

घनानन्द के समकालीन बहुत से कृष्ण-भक्त कवि पहले लौकिक प्रेम में लीन रहे, बाद में भगवद्भक्ति की ओर मुड़े। यही कारण है कि उनकी कविता में प्रेम और शृंगार का प्राधान्य है। वियोग-शृंगार लिखने में इन्होंने कमाल कर दिया है। शुद्ध व्रजभाषा लिखने में ये प्रसिद्ध हैं।

(२)

कलह कल्पना काम कलेस निवारनी।
परनिन्दा परद्रोह न कबहुँ विचारनी॥
जग प्रपंच चटसार न चित्त चढ़ाइये।
व्रजनागर नंदलाल सु निसिदिन गाइये॥
अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों।
तिनके गृह नहिं रहें सन्त सनमान सों॥
उनकी संगति भूलि न कबहूँ जाइये।
व्रजनागर नंदलाल सु निसिदिन गाइये॥

कहूँ न कबहूँ चैन जगत दुख कूप है ।
हरि भक्तन को संग सदा सुखरूप है ॥
इनके ढिग आनंदित समै बिताइये ।
व्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइये ॥

(नागरीदास—अरिल्लपचीसी)

आप की कविता प्रेम-भाव से ओत-प्रोत है । आपने कृष्ण लीला और झांकी आदि उत्सवों का बड़ा ही विशद और रोचक वर्णन किया है । आप की भाषा व्रजभाषा ही है जिस में फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं ।

(३)

इत तें आली राधिका गोरी सौंपन अपनी गैया ।
उत तें अति आतुर आनंद सों आए कुँवर कन्हैया ॥
कसि भौंहैं कुँवर राधिका कान्ह कुँवर सों बोलीं ।
अंग-अंग उमगि भरे आनन्द सों दरकति छिन छिन चोली ॥

(बख्शी हंसराज)

बख्शी जी की कविता भाव-प्रधान है । भाषा मधुर, सरल तथा प्रसादयुक्त है । शब्दचयन भावानुगामिक होता हुआ भी सरल और भावोत्पादक है ।

(४)

सोभा केहि बिधि बरनि सुनाऊँ ।
इक रसना, सोउ लोचन हीनी, कहो पार क्यों पाऊँ ॥
अंग-अंग लावन्य-माधुरी बुधि बलि किती बताऊँ ।
अतुलित सुखनि कहिं गये क्यों दृग पल रति भरि जु अघाऊँ ॥
लोक न सुनी स्रवन नहिं देखी, ऐसी रूप निकाई ।
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-मति प्रेम बिकाई ।
कबहूँ गौर स्याम तन कबहूँ, मोहन प्यारी ध्यावें ॥
कहूँ घटि जात लिपु कौ, पंछी चौंधन भरि भावें ।
सुन्दरता की हद मुरलीधर, बेहद छबि की राधा ।
गावैं बहु अनंत मति सारद, तऊ न पूजैं साधा ॥
ध्याइ काम बरबट है निजगन हिय छद रुप गुमानी ।
'वृन्दावन' हितरूप कियो जग, सो कानन की रानी ॥

(हित वृन्दावन)

हितरूप इनके गुरु थे । 'चाचा जी' बड़े गुणज्ञ और प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थे । कहते हैं इन्होंने एक लाख पद लिखे थे । इतनी अधिक कविता होने पर भी इनकी रचना साधारण नहीं है । उसमें यत्र-तत्र भाव-वैचित्र्य, अलंकार-सौन्दर्य और

काव्य-सौंदर्य आदि गुण मिलते हैं। इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदुराज का नहीं। इनके वर्णन में नख-शिख, अष्टयाम, छद्मलीला आदि प्रसंग बहुत सुन्दर हैं। वैराग्य और सिद्धान्त-सम्बन्धी पद भी अनूठे हैं।

(५)

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमराज कोऊ,
कोऊ रामचंद, सुखकंद नाम नाथे में।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति सुरपति, कोऊ,
देवन ध्याय फल लेत पल आधे में॥
'हठी' को आधार निराधार को आधार तू ही।
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे में।
कटै कोटि बाधे मुनि धरत समाधे ऐसे,
राधे, पद रावरे सदा ही अवराधे में॥

(हठी—राधा सुधाशतक)

हठी जी भगवद्भक्त होने के साथ साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। इनकी रचना का कलापक्ष भी समृद्ध है। इस में उपमाओं और अनुप्रासों का अच्छा प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा भी मधुर और सुन्दर है। राधा का प्राधान्य मानते हुए इन्होंने अन्य देवी-देवताओं को हीन दिखाया है।

(६)

मुकलित पल्लव फूल सुगंध परागहि झारत।
जुग मुख निरखि बिपिन जनु राई लोन उतारत॥
फूल फलन के भार डार झुकि यों छवि छाजै।
मनु पसारि वह भुजा देत फल पथिकन काजै॥
मधु मकरंद पराग-लुब्ध अलि मुदित मत्त मन।
बिरद पढ़त ऋतु राज नृपति के मनु बंदीजन॥

(रसिक गोविंद)

इनकी रोला-छंद में लिखी 'जुगल-रस-माधुरी' बड़ी सरस और प्रसिद्ध रचना है जिसमें राधाकृष्ण-विहार और वृन्दावन-वर्णन बड़ी भावपूर्ण और कवित्वपूर्ण शैली में हुआ है।

(७)

चल चकई तेहि सर बिषै जहँ नहिं रैन-बिछोह।
रहत एक रस दिवस ही, सुहृद हंस संदोह॥
सुहृद हंस-संदोह कोह और द्रोह न जाको।
भोगत सुख संदोह, मोह दुख होय न ताको॥

बरनै दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई।
पिय मिलाय नित रहै, ताहि सर चल तू चकई॥

(दीनदयाल)

दीनदयाल जी बड़े भावुक, विद्वान् और कलाप्रिय कवि थे। इनकी भाषा विशेषतः सुन्दर, परिपक्व और सुलझी हुई रहती थी। इनकी प्रसिद्धि अन्योक्तियों के कारण अधिक है।

(८)

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयाग॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलौने गात।
मनो नीलमनि-सैल पर, आतप परयो प्रभात॥

(बिहारी)

राजदरबारों की स्वार्थपरता से तंग आकर जब बिहारी विरक्त हुए तो उन्होंने भगवत्-सम्बन्धी अत्यन्त भव्य और ऊँची कविता की। वे साम्प्रदायिक मत महात्मा नहीं थे, पर इन्द्रिय-लोलुप केवल शृंगारी कवि भी नहीं थे। बिहारी के दोहे हिन्दी साहित्य के रत्न हैं।

भक्ति में शृंगारिकता का नमूना भी देखिये —

(९)

आई जो चलि गुपाल धरें ब्रजबाल बिसाल मृणाल सी बाहीं।
त्यों पदमाकर मूरति में रति छ्वै न सकै कितहूँ परछाहीं॥
सोभित शम्भु मनो उर ऊपर सीस मनोभव को मन माहीं।
लाज बिराज रही अँखियन में प्रान में कान्ह जबान में नाहीं॥

(पद्माकर)

वह कंज सों कोमल अंग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हौं।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतौऊ नहीं पहिचानती हौं॥
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहिं मानती हौं।
दृग बान पै भौंह कमान कहौ अब कान लौं कौन पै तानती हौं॥

(ठाकुर)

वास्तव में ये कवि शृंगार-रस का ही वर्णन करते थे। अन्य नायक-नायिकाओं में कृष्ण और राधा का उल्लेख भी कर जाते थे। इनमें धार्मिकता का लेशमात्र भाव नहीं है।

काव्य-सौंदर्य आदि गुण मिलते हैं । इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदुराज का नहीं । इनके वर्णन में नख-शिख, अष्टयाम, छद्मलीला आदि प्रसंग बहुत सुन्दर हैं । वैराग्य और सिद्धान्त-सम्बन्धी पद भी अनूठे हैं ।

(५)

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमराज कोऊ,
कोऊ रामचंद, सुखकंद नाम साधे में ।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति सुरपति, कोऊ,
देवन ध्याय फल लेत पल आधे में ।।
'हठी' को आधार निराधार को आधार तू ही ।
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे में ।
कटैं कोटि बाधैं मुनि धरत समाधे ऐसे,
राधे, पद रावरे सदा ही अवराधे में ।।

(हठी—राधा सुधाशतक)

हठी जी भगवद्भक्त होने के साथ साहित्य-मर्मज्ञ भी थे । इनकी रचना का कलापक्ष भी समृद्ध है । इस में उपमाओं और अनुप्रासों का अच्छा प्रयोग हुआ है । इनकी भाषा भी मधुर और सुन्दर है । राधा का प्राधान्य मानते हुए इन्होंने अन्य देवी-देवताओं को हीन दिखाया है ।

(६)

मुकलित पल्लव फूल सुगंध परागहि झारत ।
जुग मुख निरखि विपिन जनु राई लोन उतारत ।।
फूल फलन के भार डार झुकि यों छवि छाजै ।
मनु पसारि दइ भुजा देत फल पथिकन काजै ।।
मधु मकरंद पराग-लुब्ध अलि मुदित मत्त मन ।
बिरद पढ़त ऋतु राज नृपति के मनु बंदीजन ।।

(रसिक गोविंद)

इनकी रोला-छंद में लिखी 'युगल-रस-माधुरी' बड़ी सरस और प्रसिद्ध रचना है जिसमें राधाकृष्ण-विहार और वृन्दावन-वर्णन बड़ी भावपूर्ण और कवित्वपूर्ण शैली में हुआ है ।

(७)

बसत सदाई तेहि सर विषै जहं नहिं रंग-विछोह ।
रहत एक रस दिवस हो, सुहृद हंस संदोह ।।
सुहृद हंस-संदोह कोह और द्रोह न जानै ।
भोगत सुख संदोह, मोह दुख होय न तावै ।।

बरनं दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई।
पिय मिलाय नित रहै, ताहि सर चत तू चकई ।।

(दीनदयाल)

दीनदयाल जी बड़े भावुक, विद्वान् और कलाप्रिय कवि थे। इनकी भाषा विशेषत. सुन्दर, परिपक्व और सुलझी हुई रहती थी। इनकी प्रसिद्धि अन्योक्तियो के कारण अधिक है।

(८)

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयाग।।
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलौने गात।
मनों नीलमनि-सैल पर, आतप परयो प्रभात ।।

(बिहारी)

राजदरबारो की स्वार्थपरता से तग आकर जब बिहारी विरक्त हुए तो उन्होने भगवत्-सबन्धी अत्यन्त भव्य और ऊँची कविता की। वे साम्प्रदायिक सत महात्मा नहीं थे, पर इद्रिय-लोलुप केवल शृगारी कवि भी नही थे। बिहारी के दोहे हिन्दी साहित्य के रत्न है।

भक्ति में शृगारिकता का नमूना भी देखिये —

(९)

आई जो चलि गुपाल धरं ब्रजबाल बिसाल मृणाल सो बाहीं।
त्यों पदमाकर मूरति में रति छू न सकें कितहूँ परछाहीं ।।
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव को मन माहीं।
लाज बिराज रही अँखियन में प्रान में कान्ह जबान में नाहीं ।।

(पद्माकर)

वह कंज सो कोमल अंग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हौ।
बलि नेक दयाई धरे कुम्हलात इतौऊ नहीं पहिचानती हौ ।।
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै मनं नहिं मानती हौ।
दृग बान पे भौंह कमान कहौ अब कान लौं कौन पै तानती हौ ।।

(ठाकुर)

वास्तव मे ये कवि शृगार-रस का ही वर्णन करते थे। अन्य नायक-नायिकाओ में कृष्ण और राधा का उल्लेख भी कर जाते थे। इनमें धार्मिकता का लेशमात्र भाव नही है।

आधुनिक काल की कृष्ण-कवितायें

मुगलकाल के उत्तरार्ध से ही धार्मिक भावना का ह्रास हो चला था। पश्चिमी जातियों के आगमन के बाद उनकी संस्कृति के सम्पर्क से भारतीयों में भी धीरे-धीरे भौतिकता का विकास होने लगा। धर्म को ढोंग और धर्म-परायण व्यक्ति को उल्लू, बगुला या बैल कहा जाने लगा। प्राचीनता को दुर्गुणयुक्त पिछड़ापन बताया जाने लगा। रोटी-कपड़े, घर-द्वार, जगत् और शरीर की समस्याएँ सामने आईं और हमारा साहित्य भी इन समस्याओं की पेचीदगियों से भरने लगा। कृष्णकाव्य की पुरानी तानें अलापने वाले इने-गिने ही रह गये।

प्रमुख रचनाएं

आधुनिक काल का भक्ति-साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध है—

महाराज रघुराजसिंह—' रघुराजविलास ', 'भ्रमरगीत', 'रुक्मिणीपरिणय'।
शाह कुन्दनलाल ' ललित किशोरी '—विविध पद।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—' भक्त सर्वस्व ', ' प्रेम फुलवारी ', ' प्रेम मालिका ', ' प्रेमाश्रु-वर्षण ', ' प्रेम-प्रलाप ', ' रागसंग्रह ', ' मधुमुकुल ', ' विनय-प्रेम-पचासा ', इत्यादि।
जगन्नाथदास ' रत्नाकर '—' उद्धव-शतक '।
सत्यनारायण कविरत्न—' भ्रमर दूत '।
वियोगी हरि—फुटकर पद।
अयोध्यासिंह उपाध्याय—' प्रियप्रवास '।
मैथिलीशरण गुप्त—' जयद्रथ-वध ', ' द्वापर ', आदि।

यह बात उल्लेखनीय है कि एक-दो कवियों को छोड़कर किसी में भक्ति या धार्मिकता दिखाई नहीं देती। वास्तव में इस स्वच्छंद युग में अन्य बीसियों विषयों के अन्तर्गत ' कृष्ण ' भी आ जाते हैं। और तो और रामभक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त भी इधर खिंच पड़े। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे कवि हैं जिनके विविध-विषय काव्य में कृष्ण-चरित का उल्लेख मिल जाता है। इनमें रामभक्त महाराज रघुराजसिंह के दो ग्रंथ और रामानुजी बाबा रघुनाथदास सनेही का ' विश्राम सागर ' (दूसरा भाग) उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक कृष्ण-काव्य में मौलिकता बहुत कम है। वहाँ पिष्टपेषण प्रायः सब में पाया जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के एक ही कवि हैं जिन में वैष्णव काव्य का गीति-तत्त्व स्वाभाविक और सुन्दर रूप में पाया जाता है। इन्होंने लगभग डेढ़ हज़ार पद लिखे हैं जिन

काव्यशैली

में विनय, बाल-लीला और गोपियों के खेलों का वर्णन है। ऐसा जान पड़ता है कि इस युग की राजनीतिकता और अशांति में भक्ति-भावना दब गई। बीसवीं शताब्दी में आकर भक्ति का नितान्त ह्रास हो गया है। आज की जनता देवता में नहीं मनुष्य में विश्वास रखती है। 'प्रियप्रवास' के कवि ने कृष्ण के देवत्व को मनुष्यत्व में परिणत करके दिखाया है। कवि ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को इस ग्रंथ में महापुरुष की भांति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। 'प्रिय-प्रवास' की महत्ता इसी आदर्श मानव-चरित्र-चित्रण में है। मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध' में आधुनिक बुद्धिवाद का प्रभाव कम है—उन्होंने राम को तो ईश्वर माना है, परन्तु कृष्ण के अतिमानुषिक और अलौकिक चरित्र का चित्रण नहीं किया।

रत्नाकर और कविरत्न के काव्य में रमणीयता स्पष्ट लक्षित होती है। उन्होंने उद्धव और गोपियों के पिष्टपेषित संवाद को लेकर अपने भ्रमर-गीतों में उच्च कविता की सृष्टि की है। सत्यनारायण कविरत्न की कविताओं में आधुनिक सुधारवाद का निर्देश भी मिलता है। वियोगी हरि के आत्मनिवेदन में शांत-रस गौण होकर वीर-रस प्रधान हो गया है। उनकी विनय में वीरवाणी है।

इस युग के कृष्ण के कवियों में शृंगारी काल की प्रवृत्ति रही है, परन्तु भारतेन्दु के बाद फिर वही प्राचीन सात्विकता लाने का प्रयत्न होता रहा है। शृंगार रस के साथ ही शांत, हास्य और वीर रस की सृष्टि की गई है।

यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि काव्य के विषय, स्वरूप, रस और भाषा की परंपरा का जितना लगातार पालन कृष्ण-साहित्य में हुआ है उतना हिन्दी-साहित्य की किसी काव्यधारा में नहीं हुआ। सत्यनारायण संवत् १६७५ तक उसी ढंग से कविता करते रहे हैं जैसे नन्ददास १६२५ के लगभग। वियोगी हरि उसी रूप में पद-रचना करते आये हैं जिस में उनसे ४०० वर्ष पहले अष्टछाप के कवि करते रहे हैं। रत्नाकर तक सूर के भ्रमरगीत की आवाज बराबर गूंजती रही है। कृष्ण-काव्य की गीति-परम्परा अक्षुण्ण रही है।

कृष्ण-काव्य की भाषा व्रजभाषा ही रही है। अभी कुछ थोड़े ही वर्ष हुए अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में खड़ी बोली का प्रयोग शुरू किया है। इस काल के कवियों की व्रजभाषा में

प्रक्रिया प्रांतीय शब्द और प्रयोग पहले से अधिक मिलते हैं। कारण यह है कि भारतेन्दु से पहले के कवि अधिकतर भक्त थे और व्रज-भूमि में अथवा उसके निकट ही रहते थे। आधुनिक कवियों पर संस्कृत, उर्दू, अंगरेजी भाषाओं का प्रभाव भी पड़ा है। शुद्ध और चलती व्रजभाषा इनमें बहुत कम मिलती है। रत्नाकर और कविरत्न की कृतियों में अंग्रेजी के अनेक रूपान्तर

प्राप्त होते हैं। यह होते हुए भी इनकी भाषा में सरसता और कोमलता अवश्य है। प्रवाह में कहीं कमी नहीं आने पाई। महाराज रघुराजसिंह और ललित-किशोरी को भी भाषा पर पूर्ण अधिकार रहा है। भारतेन्दु की व्रजभाषा भी सुव्यवस्थित और सुगठित है।

इस काल की प्रवृत्ति में एक और विशेषता है अलंकार का धीरे-धीरे त्याग। भाषा को अलंकृत करने का विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। रीतिपद्धति का प्रभाव थोड़ा बहुत अवश्य बना रहा है परन्तु खड़ी बोली के कवियों ने उस पद्धति की उपेक्षा करके भाषा में स्वच्छन्दतावाद का उपयोग किया है।

छंदों की दृष्टि से आधुनिक कृष्ण-काव्य में पहले से भी अधिक विविधता पाई जाती है। दोहा, कवित्त, सवैया इत्यादि बराबर चलते रहे हैं। रत्नाकर और कविरत्न ने रोला छंद का भी प्रयोग किया है। गीतिका, हरिगीतिका, बरवै, सोरठा, छप्पय, ताटंक, सार राधिका, चौपाई और रूपमाला का प्रयोग महाराज रघुराजसिंह, ललितकिशोरी और वियोगी हरि ने किया है। वियोगी हरि के पद अत्यंत सुन्दर और मधुर हैं। वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'प्रियप्रवास' केवल वर्णिक छंदों में ही लिखा गया है।

अनेक कविताएँ उर्दू बहरों में लिखी गई हैं। ललितकिशोरी ने गजलों में कृष्ण-लीला का वर्णन किया है।

संस्कृत वृत्तों में संस्कृत-गर्भित भाषा, हिन्दी छंदों में तद्भव शब्द और उर्दू बहरों में उर्दू-फारसी के प्रयोग मिलते हैं।

उदाहरण—

(१)

सँभारहु अपने कों गिरधारी।
मोर-मुकुट सिर-पाग पेंच कसि, राखहु अलक सँवारी॥
हिय हलकति बनमाल उठावहु, मुरली धरहु उतारी।
चक्रादिकन सान दै राखौ, कंकन-फँसन निवारी॥
नूपुर लेहु चढ़ाई किंकनी, खींचहु करहु तयारी।
पियरो पट परिकर कट कसिकै, बाँधौ हो बनवारी॥
हम नाहीं उनमें जिनकों तुम, सहजहि दीनों तारी।
बानो जुगयो नीकें अब की, हरिचंद की बारी॥

(हरिश्चन्द्र भारतेन्दु)

बाबू हरिश्चन्द्र वल्लभकुल के वैष्णव थे। भक्त होने के कारण इनकी कविता में सरसता और प्रवाह है। व्रजभाषा से इन्हें अत्यन्त प्रेम था। इन्होंने खड़ीबोली में भी अनेक पद लिखे, परन्तु वे खड़ी बोली को काव्य उपयुक्त नहीं मानते थे।

(२)

स्यामरूप में तेज, अधर-रस जलहि मिलाऊँ ।
मुरलि प्रकास मिलाय, प्रान में प्रानिन छाऊँ ।।
मुख-मंडित गोधूलि, अली टुक देखन पाऊँ ।
पृथिवी-अंस मिलाय, तासु में प्रियतम ध्याऊँ ।।

(ललितकिशोरी)

श्रीवृन्दावन-वास दीजिये यही हमारी आसा है ।
जमुना-तीर सुछाय माधुरी, जहँ रसिकों का वासा है ।।
सेवाकुंज मनोहर सुन्दर, इकरस बारोमासा है ।
'ललितकिशोरी' के दिल बेकल जुगुल-रूप-रस-प्यासा है ।।

(ललितकिशोरी)

आपने भक्ति और प्रेम सबन्धी सैकडो पद और गजलें लिखी हैं जिनमें रास-विलास, समयप्रबंध, अष्टयाम, नख-शिख का अनूठा वर्णन मिलता हैं। छदमलीला लिखने में तो आप ने कमाल ही कर दिया हैं। आप की भाषा में ब्रजभाषा, मारवाडी, उर्दू और खडी बोली का सम्मिश्रण है। आप की रेखता-शैली बडी लोकप्रिय है और रामधारियों में बहुत प्रचलित है।

(३)

जब ते बिलोक्यौ बाल लाल बन-कुंजनि में,
तब तें अनंग की तरंग उमगति है ।
कहै रतनाकर न जागति न सोवति है,
जागत औ सोवत में सोवति जगति है ।
डूबी दिन-रैन रहै कान्ह-ध्यान-वारिधि में,
तौ हूँ बिरहागिनी की साह सौं दगति है ।
घूरि परी एरी इहि नेह दई-मारे पर,
जाकि लाग पा प्रान पानी में लगति है ।।

(रत्नाकर)

इस बीसवी शताब्दी में पुरानी परम्परा का अवलम्बन करने वालों में रत्नाकर जी का सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं। आप की भाषा शुद्ध, आलंकारिक विधान संयत और कलापूर्ण, प्रकृति-चित्रण स्वाभाविक और भाव-व्यंजना स्वच्छ और सफल हुई हैं। आप की भक्ति में शृंगारिकता का पुट अधिक है। आप की कविता का विशेष गुण है ओज और लालित्य जो 'उद्धवशतक' के एक-एक कवित्त में लक्षित होता है।

(४)

माधव, अब न अधिक तरसैए।
जैसी करत सदा सों आये, वही दया दरसैए।
मानि लेउ, हम कूर, कुढंगी, कपटी, कुटील, गँवार।
कैसे असरन सरन कहो तुम जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन-तेरह यह, देश-दसा दरसाय॥
पै तुमको नहिं जनम-धरे की, तनकहु लाज न आय॥
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवन राई।
अंगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई॥

(सत्यनारायण)

आप का 'भ्रमरदूत' अपनी शैली का अनूठा नमूना है। श्रीकृष्ण-भक्ति के साथ-साथ उसमें स्वदेश प्रेम का अत्यन्त सुन्दर समावेश हुआ है। इस दुनियादारी के युग में सत्यनारायण कविरत्न की भक्ति प्रशंसनीय है। आप ब्रजभूमि और श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। आपकी ब्रजभाषा ठेठ भाषा है जिस पर आप का पूरा पूरा अधिकार था।

(५)

ऐसा आया इक दिवस जो मर्मभेदी महा था।
जाता ने हो दुखित भव के चित्रितों को विलोका।
धीरे धीरे तरणि निकला काँपता दग्ध होता।
काला काला ब्रज अवनि में शोक का मेघ छाया॥
ज्यों होवे शिथिल जितना आत्मसर्वस्व कोई।
होती हैं त्यों स्वमणि जितनी सर्प को वेदनायें।
दोनों प्यारे कुँवर तजिके धाम में आज आने।
पीड़ा होती अधिक उससे गोकुलाधीश को थी॥
लज्जा से वे प्रथित-पथ में पाँव भी थे न देते।
जो होता था व्यथित हरि का पूछने ही सँदेसा।
कुंजों में हो विपथ बन के आ र धाम में थे।
ज्यों ज्यों आते निकट गृह के भूमि जाते गड़े थे॥

(अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रियप्रवास)

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार रखते हुए भी कृष्ण-काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग करके एक नवीन शैली का आविर्भाव किया है। 'प्रिय-प्रवास' में वात्सल्य, शृंगार और भक्ति-रस के सुन्दर पद मिलते हैं। परन्तु इसमें धार्मिकता का अंश बिल्कुल थोड़ा है। समय की छाप गहरी है।

(६)

"जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है,
माधव! विदा दो बस मुझे, अब बार बार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिए यद्यपि नहीं तय्यार हूँ,
पर धर्म-बन्धन-बद्ध हूँ मैं क्या करूँ लाचार हूँ।"
इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण ये सब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे।
गोविन्द! अब क्या देर है ? प्रण का समय जाता टला,
शुभकार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतना ही भला॥
सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गई,
गम्भीर-श्यामल-मेघ में विद्युच्छटा सी छा गई।
कहते हुए यों—वह न उनका भूल सकता वेश है,
"हे पार्थ ! प्रण-पालन करो, देखो अभी दिन शेष है।"
(मैथिलीशरण गुप्त—जयद्रथवध)

गुप्त जी के कृष्ण गीता के कृष्ण हैं। 'जयद्रथ-वध' में वीर तथा करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। आप ने वैष्णव होते हुए भी उदारता का परिचय दिया है और अपने काव्य में समय का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व किया है।

उपसंहार

कृष्ण-काव्य हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति है। सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, मीराबाई, रसखान, ध्रुवदास, घनानन्द, नागरीदास, हितवृन्दावनदास भगवत्‌रसिक, रघुराजसिंह, भारतेन्दु, रत्नाकर, सत्यनारायण, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि बीसियों कवियों ने हमारे साहित्य में सरसता, माधुर्य, तल्लीनता और काव्य-सुधा की जो धारा बहाई है उसका प्रभाव आरम्भ से लेकर आज तक बना रहा है। परन्तु चन्द को भले ही हिन्दी का आदि-कवि मान लिया जाय, न तो उसकी भाषा और न ही उसके भाव हिन्दी-साहित्य के विकास में सहायक बने हैं। कृष्ण कवियों पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है।

एक बात अवश्य है। कृष्ण-कवि कृष्ण-लीला को ही तमाम अपनी भावनाओं का केन्द्र बना कर चलते रहे हैं। इससे आगे चलकर न केवल धार्मिक प्रतिष्ठा की क्षति हुई है, बल्कि साहित्यिक आदर्शों को भी ठेस लगी है। कृष्ण-भक्ति की शृंगारिकता ने रीति-पद्धति को प्रोत्साहित किया। विषय-वर्णन में नवीनता न दिखा सकने के कारण कविगण काव्य के बाह्यांगों के चित्रण में अपने कमल

लगे। रामभक्ति-काव्य में तो प्रबन्धों, मुक्तकों और गीतों द्वारा कई प्रकार की रचना-शैलियों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, ऐसा कृष्ण-काव्य में नहीं हो सका। रामभक्तों में लोकसंग्रह का भाव भी न था। इनकी रचनाओं में विश्वजनीन भावों का अभाव है। सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं से बेखबर और लापरवाह होकर इन्होंने धार्मिक काव्य की सृष्टि की और यह धार्मिकता भी आगे चलकर न गंभीर बन सकी न व्यापक। कृष्ण-काव्य की धार्मिकता शृंगारिकता का पर्याय बनकर रह गई। इसकी आलोचना हम अगले अध्याय में करने चले हैं।

कृष्ण-काव्य का कलेवर किसी समय भी निश्चित नहीं रह सका। कृष्ण-चरित्र पर लिखे गये प्रबन्ध-काव्य बहुत कम हैं। अधिकतर पद और गीत हैं जो भक्त के हृदय के मुक्तक उद्गार हैं। किसी भक्त ने एक

कलेवर

साख पद लिख डाले तो किसी ने सौ दो सौ और किसी-किसी ने पाँच-दस पदों में ही अपनी रचना को सीमित रखा है।

हम यह बता ही चुके हैं कि पदों के स्वरूप में भी कृष्ण-काव्य में विविधता और अनेकरूपता पाई जाती है। कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, पद, गीत, गीति, सब प्रकार की कविताएँ कृष्ण-काव्य में मिलती हैं।

सामान्य भक्ति

हिन्दी में बहुत से ऐसे कवि हुए हैं जो न तो मात्र राम के भक्त थे और न ही मात्र कृष्ण के। वैसे तो रामकवियों ने कृष्ण-भक्ति के और कृष्णकवियों ने रामभक्ति के पद लिखे, लेकिन इनके अतिरिक्त वे कवि हैं जिन के उपास्य 'भगवान्', 'प्रभु', 'ईश' थे, जिन्हों ने अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ और उनके स्तोत्र लिखे और उन से विनय-प्रार्थना भी की। लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ति, भवानी, गौरी, दुर्गा, काली, शीतला, आदि देवियों और इन्द्र, वरुण आदि से लेकर नव-ग्रहों तक की पूजा और स्तुति एवं विष्णु के अनेक अवतारों, शिव के विभिन्न रूपों, हनुमान आदि अनेक इष्ट देवताओं की भक्ति का वर्णन मिलता है। तीर्थस्थानों का माहात्म्य भी वर्णित हुआ है। इस प्रकार का बहुत-सा साहित्य प्रत्येक काल में लिखा गया है। किन्तु इस में एक तो साहित्यिकता की कमी है और दूसरे शैलियों की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऐसा अधिकांश साहित्य लोक-साहित्य की कोटि में भी आता है और लोक-प्रचलित शैलियों, धुनों, भाषा-प्रयोगों तथा प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए रोचक भी है और महत्त्वपूर्ण भी।

[४]

शृंगारिक काव्य

आचार्यों और कवियों ने बड़े आग्रह के साथ शृंगार को 'रसराज' घोषित किया है। यह कोई नई बात नहीं थी। शताब्दियों पूर्व शृंगार की महत्ता संस्कृत साहित्य में स्वीकार हो चुकी थी। प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य में करुण, वीर, शान्त आदि अनेक रसों के साथ इस का मेल उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इस में सन्देह नहीं कि हिन्दी के प्रारम्भिक युग से अब तक प्रेम-सम्बन्धी प्रबन्ध-काव्य का प्राधान्य क्रमशः घटता गया है और मुक्तक काव्य का प्रयोग बढ़ता गया है, तो भी ऐतिहासिक दृष्टि से और कलेवर में प्रबन्ध (प्रेमाख्यानक) काव्य अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रेमाख्यान

हिन्दी में रासो ग्रन्थों से प्रेमाख्यानों की परम्परा का आरम्भ माना जा सकता है। पृथ्वीराज रासो में शृंगार ही की अन्तर्भावना व्याप्त है—शौर्य, राजस्तुति और युद्ध-वर्णन यत्र-तत्र मिलते हैं। हम्मीर रासो और बीसलदेव रासो में प्रोषित-भर्तृका नायिकाओं की प्रेमकथा वर्णित है। इन में प्रेम-सन्देश, षट्ऋतु-वर्णन, विरहवेदना, प्रिय के शौर्य की प्रशंसा आदि की रूढ़िगत शैली ही मिलती है। चारण काल के अन्तिम चरण में मुल्ला दाऊद की 'नूरकचन्दा' की कहानी उपलब्ध होती है।

भक्तिकाल में सूफी कवियों ने अपने सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए प्रेमाख्यानक शैली ही को चुना और एक ऐसी परम्परा को चलाया जो आज तक अक्षुण्ण चली रही है। उन के काव्यों पर एक बहुत झीना परदा धार्मिकता का है। लौकिक शृंगार का वर्णन ही प्रमुख है। 'मृगावती', 'मधुमालती' 'पदमावत', 'ज्ञानदीप', 'इन्द्रावती' आदि सूफी काव्यों का परिचय पीछे दिया जा चुका है। ये सब प्रेमाख्यान हैं। इन की कथा ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक-प्रचलित अथवा कल्पना-प्रसूत रही है। सूफी कवियों के समानान्तर और प्रायः उन्हीं की शैली में लौकिक प्रेमाख्यान भी लिखे गये हैं जिन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं—

ढोला मारूरा दूहा
लखमसेन-पद्मावती की कथा   दामो कवि
सत्यवती की कथा   ईश्वरदास
माधवानल कामकन्दला   आलम
" "   गणपति
" "   दामोदर
विरह वारीश   बोधा
रसरतन   पुहकर
छिताई वार्ता   नारायणदास
प्रेमविलास प्रेमलता कथा   जटमल नाहर
चन्द्रकुँवरि री बात   हंस
ऊषा की कथा   रामदास
उषा हरण   जीवनलाल नागर
ऊषा-चरित   मुरलीदास
नलदमयन्ती कथा
प्रेमपयोनिधि   मृगेन्द्र

इन काव्यों की परम्परा संवत् १६१२ तक बराबर मिलती है। इन में प्रायः राजाओं के अन्तःपुर के विलासी वातावरण का वर्णन रहता है। कुछ में प्रेम विवाह के पहले प्रस्फुटित होता है, कुछ में विवाह के उपरान्त। प्रेम का शारीरिक पक्ष प्रधान है। ये काव्य वार्ताओं, कथावलियों और रीति-कवियों के भोग-विलास से प्रभावित हैं। दाम्पत्य सुख का विशेष वर्णन करना इन का एक उद्देश्य है। इन का प्रेम शारीरिक है जो शुद्ध मानवीय भावनाओं से आपूर्ण है। प्रिया के मिलन का वर्णन खुल कर किया गया है। सामान्यतः प्रेम की एकनिष्ठा कहीं दिखाई नहीं देती, सर्वत्र विलास और रसिकता व्याप्त है। रति, विपरीत रति, केलि आदि के वर्णन अनावृत रूप में किये गये हैं। बीच-बीच में स्वच्छन्द प्रेम के दृष्टान्त भी

मिलते हैं। प्रेम-प्रस्फुटन, संयोग, वियोग आदि के वर्णन में मुसलमानों के सूफी काव्य और हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों में बहुत कुछ साम्य है जिसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नही है। अधिकतर आख्यानों की रचना रीतिकाल में हुई है इस लिए तत्कालीन लोकरुचि की छाया उसी प्रकार मिलती है। उस युग के सामाजिक, राजनैतिक और सास्कृतिक विश्वासों, रीति-रिवाजों और स्तरों का वास्तविक चित्रण मिलता है। एक बात विशेषतः उल्लेखनीय है कि शृंगारिकता की अधिकता रहते हुए भी इन आख्यानों में गार्हस्थ जीवन की महत्ता और सामाजिक नियमों की रक्षा का ध्यान रखा गया है। यही नही, हिन्दू-मुसलिम एकता और सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया है। कई आख्यानों में बड़े सुंदर नीति पद मिलते हैं। श्लील और अश्लील का प्रश्न उठाना उचित न होगा, क्योंकि ये काव्य हैं ही प्रेम-काव्य—इस दृष्टि से कहीं-कहीं अवश्य नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन हो गया है। लगता है कि उस युग में रति के अनावृत वर्णन अश्लील नहीं समझे जाते थे। अनेक कथाओं का पर्यवसान सन्यास अथवा आध्यात्मिक जीवन में होता है। जिन में समाप्ति पर मिलन होता है, उन में भी आध्यात्मिक संकेत मिल जाते हैं।

रीतिकालीन आख्यानों में नायक-नायिका के वर्णन में एवं भावानुभावों के संयोजन में रीतिबद्ध शैली की छाया मिलती है।

वीररस शृंगार का सहायक होकर रहता है। अलंकारों में वही पिटे पिटाये उपमान हैं—कोई विशेष मौलिकता नही है। छन्दों के अन्तर्गत दोहा, चौपाई (आठ अर्द्धाली के बाद एक दोहा), छप्पय, त्रोटक पद्धरि, भुजङ्गी, घटन, सारदूल, गाथा, तोमर, कवित्त, कुण्डलिया, सवैया और सोरठा प्रयुक्त हुए है।

प्रेमाख्यान हिन्दी प्रदेश की कई बोलियों में उपलब्ध हैं—संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी, शुद्ध अपभ्रंश, साहित्यिक डिंगल, राजस्थानी, अवधी, ब्रज एवं अवधी-ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में। भाषा की इस विविधता के कारण इन आख्यानक काव्यों का महत्त्व असंदिग्ध है।

मुक्त प्रेम-काव्य

प्राचीन परम्परा की मुक्तक कविता पर विचार करने वालों का कहना है कि आरम्भ में शृङ्गारिक रचनाएँ प्राकृत में लिखी गई थी, और बाद में संस्कृत में भी लिखी जाने लगी। पहले भी संस्कृत-साहित्य में इनकी मात्रा कम न थी, पर अब इन्हें प्रमुख स्थान मिलने लगा। सब से पुराना शृंगारिक काव्य हाल-कवि की 'गाहा सतसई' है जो सन् ईसवी के प्रथम शतक के आस-पास लिखी

गई थी और जिस में नित्य प्रति के ऐहिक जीवन के छोटे-छोटे चित्र अंकित हैं। हाल ने प्रेमिका की रसमयी क्रीड़ाओं, अहीर और अहीरिनों की प्रेम-गाथाओं, ग्रामवधूटियों की काम-चेष्टाओं, सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी भावों और हृदय की उछल-कूद का सरस वर्णन किया है। दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में इसी विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन उपस्थित किया था।

'सतसई' के आधार पर रचित संस्कृत के दो शृंगारी मुक्तक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—अमरुक का 'अमरु शतक' और गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती'। परन्तु इन में भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का वह सहज सौन्दर्य नहीं है। इन में कृत्रिमता और अलंकरण की प्रधानता है। संस्कृत के 'शृंगार तिलक', 'घटकर्पर', 'शृंगार शतक' को कुछ-कुछ उसी परम्परा में गिना जा सकता है। संस्कृत में अनेक स्तोत्र मिलते हैं जिन में भक्ति के साथ शृंगार ओत-प्रोत मिलता है। जयदेव के 'गीतगोविंद' में यही बात कुछ उभर कर आती है।

चन्द के समय तक संस्कृत और प्राकृत में शृंगारिक साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था। अपभ्रंश में भी अहीरों की प्रेम-कथाओं की धारा चल पड़ी थी। हिन्दी ने इन भावों की तत्कालीन पद्धति को अपनाया। इन पर फारसी का प्रभाव भी पड़ा। सूफियों ने अपनी रचनाओं में उसी नग्नता का प्रदर्शन किया जो फारसी-साहित्य का विशेष गुण है। रीति-परिपाटी भी बहुत पहले से आ रही है। हिन्दी में विद्यापति ने जयदेव का अनुसरण करते हुए नायक-नायिकाभेद, नखशिख, ऋतु-वर्णन, दूती-शिक्षा, अभिसार आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। संवत् १५९८ में रस-निरूपण सम्बन्धी 'हितरंगिणी' नामक ग्रंथ कृपाराम ने लिखा। इसमें शृंगार-रस का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी समय के लगभग मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार सागर' मिलता है। संवत् १६३० के लगभग बलभद्र मिश्र ने 'नखशिख' ग्रंथ की रचना की जिसमें नायिका के अंगों का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार किया गया है। हम यह न भूलें कि तुलसी और सूर तथा उनके परवर्ती वैष्णव कवियों ने भी शृंगार-रस के भावानुभावों पर स्वतन्त्र रचना की है। रहीम और नन्ददास ने भी नायिका-भेद पर स्वतन्त्र ग्रंथ लिखे हैं। केशव इस समय के सर्व-प्रसिद्ध शृंगारी कवि हैं। परन्तु इनका कलापक्ष प्रधान है, हृदयपक्ष बहुत क्षीण है। 'रसिक-प्रिया' तथा 'कवि-प्रिया' दोनों में रीति का चमत्कार बहुत अधिक है। हिन्दी-साहित्य में शृंगारिकता का अटूट क्रम उनके ५० वर्ष बाद चला—फिर भी रहीम, मुबारक, सेनापति और सुन्दर कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा यह प्रणाली बना ली थी जिस पर चलकर घनानन्द, मतिराम, आलम, देव, दास,

पद्माकर, ठाकुर और आधुनिक काल में रत्नाकर ने हिन्दी-साहित्य को इतना ऊँचा किया।

रीति कालीन शृङ्गारिकता

संवत् १७०० से १६०० तक जितना हिन्दी-साहित्य लिखा गया, उसमें शृंगार का साम्राज्य था, चाहे वह साहित्य वैष्णव-पद्धति पर लिखा गया और चाहे वीरगाथा-पद्धति पर। नीतिकारों की रचनाओं में भी शृंगारिकता का समावेश पाया जाता है। अपवाद बहुत कम हैं। इस युग के साहित्य में शृंगार की अतिशयता के अनेक कारण थे। यह युग विलास का युग था। मुगल साम्राज्य मुहम्मद शाह रंगीला जैसे बादशाहों के सुखभोगानिचार के कारण जर्जर हो गया था। हिन्दू जीवन राजनैतिक पराभव के कारण जर्जर था। आध्यात्मिक विश्वास शिथिल हो गया था। जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ घर की चहार-दीवारी में घिर गई और नारी इन प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गई। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। हमारी साहित्यिक परम्परा भी इसी प्रकार का प्रभाव लेकर बढ़ रही थी। संस्कृत और प्राकृत की मुक्तक काव्य-परम्परा तो थी ही, फ़ारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता भी अब तो सामने थी। भक्तिकाल की माधुर्य भावना ने हमें लोक-लाज से मुक्त कर दिया था। देश-दशा में परिवर्तन हो गया था। विदेशी आक्रमणों का अंत हो गया था। जहाँगीर और शाहजहाँ के आधिपत्य में व्यवस्थित शासन का प्रारम्भ हो गया था। शांति और समृद्धि के वातावरण में विलासिता बढ़ने लगी थी। 'राधा-कृष्ण' ने रतिवर्णन की प्रचुर सामग्री जुटा दी थी। ज्ञान और भक्ति ने मनुष्य की एक महत्त्वपूर्ण भावना को दबा रखा था—समय पाकर वह भावना उमड़ पड़ी। धार्मिकता में बहुत विश्वास न रह गया था। आध्यात्मिक प्रेम का स्थान भौतिक प्रेम ने ले लिया था।

इसके साथ ही कला का व्यापक विकास हो रहा था। चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला और काव्य-कला का सब दिशाओं में प्रोत्साहन हुआ। रस और अलंकार पर पाण्डित्यपूर्ण विवेचना होने लगी। रस और अलंकार के निरूपण में रसराज शृंगार का स्थान निश्चित था। इस काल के अधिकतर कवि संस्कृत के पंडित थे—उन्होंने संस्कृत शैलियों का पूरी तरह अनुसरण किया। संस्कृत का उत्कृष्ट और सरस साहित्य तथा काव्यशास्त्र शृंगार-रस-प्रधान था हाँ, हिन्दी में रीति के साथ-साथ शृंगारिकता का पुनर्जीवित होना स्वाभाविक था।

इस युग के अधिकांश कवि किसी न किसी राजा या नवाब के दरबार में आश्रित थे। इन राजा-नवाबों का दृष्टिकोण सीमित था। उन्हें अपने हरम और

गई थी और जिस में नित्य प्रति के ऐहिक जीवन के छोटे-छोटे चित्र अंकित हैं। हाल में प्रेमिका की रसमयी क्रीड़ाओं, अहीर और अहीरिनों की प्रेम-गाथाओं, ग्रामवधूटियों की काम-चेष्टाओं, सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी भावों और हृदय की उछल-कूद का सरस वर्णन किया है। दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में इसी विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन उपस्थित किया था।

'सत्तसई' के आधार पर रचित संस्कृत के दो शृंगारी मुक्तक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—अमरुक का 'अमरु शतक' और गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती'। परन्तु इन में भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का वह सहज सौन्दर्य नहीं है। इन में कृत्रिमता और अलंकरण की प्रधानता है। संस्कृत के 'शृंगार तिलक', 'घटकर्पर', 'शृंगार शतक' को कुछ-कुछ उसी परम्परा में गिना जा सकता है। संस्कृत में अनेक स्तोत्र मिलते हैं जिन में भक्ति के साथ शृंगार ओत-प्रोत मिलता है। जयदेव के 'गीतगोविंद' में यही बात कुछ उभर कर आती है।

चन्द के समय तक संस्कृत और प्राकृत में शृंगारिक साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था। अपभ्रंश में भी अहीरों की प्रेम-कथाओं की धारा चल पड़ी थी। हिन्दी ने इन भाषाओं की तत्कालीन पद्धति को अपनाया। इन पर फ़ारसी का प्रभाव भी पड़ा। खुसरो ने अपनी रचनाओं में उसी नग्नता का प्रदर्शन किया जो फ़ारसी-साहित्य का विशेष गुण है। रीति-परिपाटी भी बहुत पहले से आ रही है। हिन्दी में विद्यापति ने जयदेव का अनुसरण करते हुए नायक-नायिकाभेद, नखशिख, ऋतु-वर्णन, दूती-शिक्षा, अभिसार आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। संवत् १५६८ में रस-निरूपण सम्बन्धी 'हिततरंगिणी' नामक ग्रंथ कृपाराम ने लिखा। इसमें शृंगार-रस का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी समय के लगभग मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार सागर' मिलता है। संवत् १६३० के लगभग बलभद्र मिश्र ने 'नखशिख' ग्रंथ की रचना की जिसमें नायिका के अंगों का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार किया गया है। हम यह कह चुके हैं कि तुलसी और सूर तथा उनके परवर्ती वैष्णव कवियों ने भी शृंगार-रस के भावानुभावों पर स्वतन्त्र रचना की है। रहीम और नन्ददास ने भी नायिका-भेद पर स्वतन्त्र ग्रंथ लिखे हैं। केशव इस समय के सर्व-प्रसिद्ध शृंगारी कवि हैं। परन्तु इनका कलापक्ष प्रधान है, हृदयपक्ष बहुत गौण है। 'रसिक-प्रिया' तथा 'कवि-प्रिया' दोनों में रीति का चमत्कार बहुत अधिक है। हिन्दी-साहित्य में शृंगारिकता का अटूट क्रम उनके ५० वर्ष बाद चला—फिर भी रहीम, मुबारक, सेनापति और पुहकर कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा वह प्रणाली बना ली थी जिस पर चलकर घनानन्द, मतिराम, भूषण, देव, दास,

पद्माकर, ठाकुर और आधुनिक काल में रत्नाकर ने हिन्दी-साहित्य को इतना ऊँचा किया।

रीति कालीन शृङ्गारिकता

संवत् १७०० से १६०० तक जितना हिन्दी-साहित्य लिखा गया, उसमें शृंगार का साम्राज्य था, चाहे वह साहित्य वैष्णव-पद्धति पर लिखा गया और चाहे वीरगाथा-पद्धति पर। नीतिकारों की रचनाओं में भी शृंगारिकता का समावेश पाया जाता है। अपवाद बहुत कम हैं। इस युग के साहित्य में शृंगार की अतिशयता के अनेक कारण थे। यह युग विलास का युग था। मुगल साम्राज्य मुहम्मद शाह रंगीला जैसे बादशाहों के सुखभोगाविचार के कारण जर्जर हो गया था। हिन्दू जीवन राजनैतिक पराभव के कारण जर्जर था। आध्यात्मिक विश्वास शिथिल हो गया था। जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ घर की चहार-दीवारी में घिर गईं और नारी उन प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गई। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। हमारी साहित्यिक परम्परा भी इसी प्रकार का प्रभाव लेकर बढ़ रही थी। संस्कृत और प्राकृत की मुक्त काव्य-परम्परा तो थी ही, फ़ारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता भी अब तो सामने थी। भक्तिकाल की माधुर्य भावना ने हमें लोक-लाज से मुक्त कर दिया था। इस समय तक देश-दशा में परिवर्तन हो गया था। विदेशी आक्रमणों का अंत हो गया था। जहाँगीर और शाहजहाँ के आधिपत्य में व्यवस्थित शासन का प्रारम्भ हो गया था। शांति और समृद्धि के वातावरण में विलासिता बढ़ने लगी थी। 'राधा-कृष्ण' ने रतिवर्णन की प्रचुर सामग्री जुटा दी थी। ज्ञान और भक्ति ने मनुष्य की एक महत्त्वपूर्ण भावना को दबा रखा था—समय पाकर वह भावना उमड़ पड़ी। धार्मिकता में बहुत विश्वास न रह गया था। आध्यात्मिक प्रेम का स्थान भौतिक प्रेम ने ले लिया था।

इसके साथ ही कला का व्यापक विकास हो रहा था। चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला और काव्य-कला का सब दिशाओं से प्रोत्साहन हुआ। रस और अलंकार पर पाण्डित्यपूर्ण विवेचना होने लगी। रस और अलंकार के निरूपण में रसराज शृंगार का स्थान निश्चित था। इस काल के अधिकतर कवि संस्कृत के पंडित थे—उन्होंने संस्कृत शैलियों का पूरी तरह अनुसरण किया। संस्कृत का उत्कृष्ट और सरस साहित्य तथा काव्यशास्त्र शृंगार-रस-प्रधान था ही, हिन्दी में रीति के साथ-साथ शृंगारिकता का पुनर्जीवित होना स्वाभाविक था।

इस युग के अधिकांश कवि किसी न किसी राजा या नवाब के दरबार में आश्रित थे। इन राजा-नवाबों का दृष्टिकोण सीमित था। उन्हें अपने हरम और

दरबार के बाहर किसी बात की चिन्ता न थी—अतएव उनकी संरक्षता में रहने वाले कवियों में विलासिता का होना आवश्यक था। कविगण धन और यश के अर्जन में अधिक लीन थे। धन-कुबेरों को प्रसन्न करना उनका ध्येय था। उनमें साहित्यिक स्वतन्त्रता कहाँ ?

इस समय की साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा थी। भाषा का इतना परिमार्जन हो गया था कि उसमें कलाचातुर्य का प्रदर्शन करना ही कवि का एक मात्र कर्त्तव्य समझा गया। कविता जीवन की संदेश-वाहिनी न होकर भाषा-सौंदर्य, अलंकार-योजना और मनोरंजन की परिधि में बन्द होकर रह गई।

इस युग की शृंगारिक रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है। हम केवल प्रतिनिधि और प्रसिद्ध-काव्यों का ही उल्लेख कर सकेंगे।

प्रतिनिधि रचनाएँ

आलम—'आलम-केलि'।

घनानन्द—'सुजान-सागर', 'विरह-लीला', 'रसकेलिवल्ली' इत्यादि।

बिहारी—'बिहारी-सतसई'।

मतिराम—'ललितललाम', 'रसराज', 'मतिराम सतसई'।

शम्भुनाथ—'नायिका-भेद', 'नखशिख'।

रसनिधि—'रतनहजारा'।

सुखदेव मिश्र—'फाजिल-अली-प्रकाश', 'रसार्णव'।

कालिदास त्रिवेदी—'वर-वधू-विनोद'।

राम—'शृंगार-सौरभ'।

देव—'भाव-विलास', 'अष्टयाम', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेमचंद्रिका', 'नख-शिख', 'प्रेमदर्शन', 'जातिविलास', 'राधिका-विलास' इत्यादि।

श्रीपति—'काव्य-सरोज' इत्यादि।

उदयनाथ कवीन्द्र—'रस-चन्द्रोदय'।

गजन—'कमरुद्दीनखां हुलास'।

दास—'रससाराश', 'शृंगारनिर्णय'।

बोधा—'विरह-वारीश', 'इश्कनामा'।

राजा गुरदत्तसिंह 'भूपति'—'सतसई'।

तोषनिधि—'सुधानिधि', 'नखशिख'।

रसलीन—'अंगदर्पण'।

रघुनाथ—'काव्य-कलाधर'।

दूलह—'कविकुल-कंठाभरण'।

देवकीनन्दन—'शृंगार-चरित्र', 'नखशिख'।

बेनी प्रवीन—'नवरस-तरग'।
यशोदानन्दन—'वरवै नायिका-भेद'।
पद्माकर—'जगद्विनोद'।
ठाकुर—'ठाकुर-शतक'।
प्रतापसिंह—'शृगार-मजरी', 'शृगार-शिरोमणि'।
रामसहायदास—'राम-सतसई'।
पजनेस—'पजनेस-प्रकाश'।
द्विजदेव—'शृगार-बत्तीसी', 'शृगार-लतिका'।

इनके अतिरिक्त बेनी और नेवाज के फुटकर कवित्त प्रसिद्ध है। कुलपति मिश्र, सूरति मिश्र, ग्वाल, चन्द्रशेखर और पजनेस के 'नखशिख' भी अच्छे काव्य-ग्रन्थ हैं। रीति-काल के जिन कृष्ण-कवियो का उल्लेख हमने पिछले प्रकरण मे किया है उनकी कविताओ मे भी शृगार-रस प्रधान है—परन्तु शृगारिकता भक्ति की प्रेरणा से प्रगट हुई है।

भावपक्ष

१—हिन्दी कविता का सर्वश्रेष्ठ अलौकिक विषय रहा है श्रीकृष्ण और उसकी विभूति। इसी प्रकार श्रेष्ठ लौकिक विषय है पुरुष और प्रकृति। एक विषय का प्रतिपादन भक्त-कवियो ने किया है और दूसरे का शृगारी कवियो ने। राधाकृष्ण का वह रूप जो प्रकृति और पुरुष का प्रतीक है और जो लौकिक सौंदर्य तथा प्रेम का आदर्श है, वैष्णव-कवियों ने उपस्थित कर दिया था। भौतिकवाद के विकास के साथ-साथ कृष्ण की जगह साधारण नायको, राधा के स्थान पर अनेक प्रकार की नायिकाओ और अभिसारिकाओ, और गोपियो की जगह दूतियो का समावेश होने लगा। संवत् १७०० से १६०० तक की रचनाओ में राधा और कन्हाई तथा सामान्य नायिका और नायक के भौतिक प्रेम का समान रूप से वर्णन होने लगा। शृंगारिकता पराकाष्ठा तक पहुँच गई।

वैसे तो इस युग के कवियो ने लक्षण-ग्रंथो का निर्माण करते हुए सब रसो पर काव्य-रचना की है, परन्तु सबने शृगार को रसराज मानकर और इसकी व्यापक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर शृंगार-रस का ही विस्तार से वर्णन किया है। हाँ, गिनने के लिए दूसरे रसो का एकाध उदाहरण देकर कवि-कर्म को पूरा कर लिया है।

शृगार की सब दशाओ पर साहित्य लिखा गया है। देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर, नेवाज, ग्वाल, बोधा आदि सभी कवियो ने सयोग-शृगार का वर्णन किया है। देव का संयोग-वर्णन अनूठा और सजीव है। परन्तु केशव से लेकर द्विजदेव तक किसी कवि में भी सयम नही है। सब ने रति-क्रीड़ा का खुले शब्दों

में चित्रण किया है। इन कवियों की कृतियों से सैकड़ों पद्य उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें अश्लीलता नग्न रूप में नाच रही है। सभोग-शृंगार का जैसा 'साहित्यिक' वर्णन हिन्दी में हुआ है वैसा शायद किसी अन्य भाषा में न मिल सकेगा।

वियोग-शृंगार का वर्णन बिहारी और घनानन्द में सर्वश्रेष्ठ है। बिहारी का विरह-ताप और विरह-क्षीणता का वर्णन अत्यंत मार्मिक है, इसमें वह सहृदयता और अनुभूति है जो बहुत कम कवियों में पाई जाती है। परन्तु बिहारी में बाहरी व्यापार अधिक हैं—घनानन्द में गूढ़ अंतर्दशा का चित्रण मिलता है। बिहारी की अतिशयोक्ति का पाठक पर प्रभाव नहीं पड़ता। सचाई और भाव-स्पष्टता में मतिराम, देव और पद्माकर भले ही बिहारी से अधिक सफल हुए हों परन्तु वियोग अनुभूति, कल्पना और भावगंभीरता की दृष्टि से बिहारी सर्वश्रेष्ठ हैं।

२. शृंगारिकता के प्रचार का मुख्य साधन था हिन्दी-साहित्य में परकीया नायिका के स्वरूप का आविर्भाव। स्वकीया-निष्ठ प्रेम की पावन प्रणाली 'राम-चरित-मानस,' 'पद्मावत' इत्यादि प्रबन्ध-काव्यों तक ही चल पाई थी। परकीया नायिका पर शृंगार को आश्रित करना आचार्यों ने एक दोष माना था, परन्तु कृष्ण-कवियों ने गोपी-कृष्ण के प्रेम में किसी दोष की कल्पना नहीं की। आगे चल कर शृंगारी कवि सब नर-नारियों को नायक-नायिका के रूप में देखने लगे। उनके लिए कृष्ण से लेकर नत्थू-कल्लू तक सब नायक थे और राधा से लेकर रधिया-जगिया तक सब स्त्रियाँ नायिका थीं। देव ने 'जातिविलास' में नाइन-धोबिन को आलंबन बनाया है। बिहारी ने परकीया के जितने रूप और उपादान थे सबके उदाहरण दिये हैं। कालीदास त्रिवेदी, राम बीर, शिवसहाय, महाराज रामसिंह, बेनी प्रवीन, यशोदानंदन, प्रतापसिंह, दास, मतिराम, पद्माकर सब ने नायिकाओं और अभिसारिकाओं के भेदों और कृत्यों पर काव्य-रचना की है। इनके साथ नायिकाओं के अगज (भाव, हाव, हेला), अयत्नज (शोभा, कान्ति, माधुर्य, दीप्ति, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य), तथा स्वभावज (लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम आदि) अलंकारों तथा विविध संचार्यादि भावों का आश्रय लेकर कवियों ने बहुत कुछ लिखा है।

दूतियों पर भी पर्याप्त साहित्य मिलता है।

नायक की अवस्थाओं में इतनी विविधता नहीं दिखाई गई है जितनी नायिका की। अधिकतर नायक व्याधिग्रस्त ही हैं—कोई इधर पड़ा तड़प रहा है, कोई थर-थर हो रहा है, कोई निर्जीव सा खाट पर पड़ा है। ऐसे नायकों से पाठक

रुद्ध से जाते हैं। नायिकाओं में विचित्रता अवश्य है, परन्तु साहित्य में बार-बार उन्हीं जानी पहचानी नायिकाओं को पाकर उस आनन्द, रमणीयता अथवा सहृदयता का अनुभव नहीं हो पाता जो नवीनता और मौलिकता का अपना लक्षण है और जिसके कारण ही साहित्य सफल कहला सकता है। समूचा नायिकाभेद का साहित्य 'नाट्यशास्त्र' के एक सामान्य अंग का भाग बनकर रह गया है।

शृंगारी कवियों ने नायक-नायिकाओं का अनुशीलन अत्यंत दूषित और संकुचित दृष्टिकोण से किया है। उनकी प्राय सभी नायिकाएँ व्यभिचारिणी हैं। उनके लिए "जैसा कंता घर रहे तैसे गये बिदेस"। वे तो मर्यादा और लोक-लज्जा को भाड़ में झोंककर अपने प्रेमी से मिलने जाती हैं। प्राय वे कुञ्जों में या नालों के खोहों में रातें बिताती हैं। वे किसी छलिया से आँखें लड़ाने को उत्सुक हैं। वे तरह-तरह के इशारे करने में प्रवीण हैं। नायक भी परले दर्जे के लुच्चे हैं। वे गेंद की चोरी का अभियोग लगा कर तलाशी लेने के बहाने परकीया स्त्रियों के उरोज टटोल लेते हैं, आँख-मिचौनी का खेल करते-करते उनके कपोल पर चुटकी दे जाते हैं, साकरी गली से गुजरते हुए उन्हें धक्का दे देते हैं। होली में गुलाल लगाने के बहाने अपनी बहुत-सी मनोकामनाएँ पूरी कर लेते हैं, इत्यादि। यह हो सकता है कि तत्कालीन समाज ऐसा ही हो।

३. नायिका शृङ्गार-रस का आलंबन है। इस आलंबन के अंगों का वर्णन सब शृंगारी कवियों ने किया है। बेनी, कुलपति, कालीदास त्रिवेदी, सूरतिमिश्र तोषनिधि, चंदन, ग्वाल, देवकीनंदन, चन्द्रशेखर, पजनेस आदि अनेक कवियों ने नख-शिख पर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना कर डाली है। एक कवि ने 'अलक-शतक' लिख कर इस प्रवृत्ति का कमाल दिखा दिया है—केवल अलकों पर सौ पद लिखे हैं। हिन्दी-साहित्य नख-शिख वर्णन के लिए प्रसिद्ध है।

हिन्दी कवि यौवन काल में प्रविष्ट नारी की सौन्दर्य-प्रभा का वर्णन करते-करते थकते ही नहीं। उन्होंने प्रेमिका के अंग-अंग की सजावट दिखाने में अपनी कलम तोड दी है।

नयनों का शृंगारिक प्रभाव माना हुआ है। क्रोध, उत्साह, हर्ष, घृणा आदि भाव नयनों द्वारा व्यक्त होते हैं। नयनों की भाषा जानना प्रेमी के लिए आवश्यक है। नयनों के द्वारा हृदय के भावों को व्यक्त करने की परिपाटी का कवियों के जगत में बहुत पुराने समय से व्यवहार होता आया है। खञ्जन-नयन कौतूहल-पूर्ण विलास का भाव प्रगट करते हैं, शफरी-नयन अस्थिरता का, हरिण-नयन सरल माधुर्य का और कमल-नयन धैर्य और शांति का। स्त्रियों के नयनों में जो

चञ्चलता है वह मीन से उपमा देकर प्रगट की गई है। इस प्रकार उपमाओं का अन्त नहीं। नेत्रों के कटाक्ष की उत्तम से उत्तम उपमाएँ हिन्दी-साहित्य में मिलती है।

भौंहें कामदेव के धनुष, कामदेव के खड्ग के म्यान और भौंरे के पंख के समान बतायी गई है। पुरुषों के भ्रूयुगल का आकार निम्बपत्र के समान बताया गया है।

कान के विषय में बहुत से कवि चुप है। उन्होंने कर्णफूल और कर्णभूषण की प्रशंसा अवश्य की है। कानों को राग के रमणपत्र, शोभा के भवन, लाज के नेत्र और मन के मन्त्री कहा गया है।

नाक की उपमा तिल के फूल से अथवा सुवे की चोंच से दी गई है।

अधर प्रकृति में बिम्बफल के समान सरस और रक्तवर्ण हैं, कोमलता में पल्लव के समान और वर्ण में प्रवाल के समान।

कर और पद के लिए पल्लव और कमल उपमान माने गये हैं। अगुली शिवौफल के तुल्य होती है। कंठ शख के ऊर्ध्व भाग सा है। कमर को मुट्ठी-तुल्य, सिवार-समान, मृणाल के तार-सी, बाल से भी बारीक, ४ के अंक के समान कृश और क्षीण बताया गया है। बिहारी ने कमर का लोप ही मान लिया है। कमर की कोमलता यहाँ तक बढ़ गई है कि वह बालों के भार से अथवा कुचों के बोझ से बल खाती है। कमर शृंगारिक भावनाओं को जागृत करने का साधन मानी गई है।

इसी प्रकार चिबुक, तिल, कंधे, कुच, एडी, वक्षस्थल, सब अंगों पर स्वाभाविक और अस्वाभाविक हर तरह की उपमाएँ कल्पित की गई हैं।

नायिका का बाह्य रूप अंकित करने में कवि को इतनी कठिनता नहीं होती जितनी मनोविकारों के कारण रूप की चंचलता को अंकित करने में। हमारे शृङ्गारी कवियों-द्वारा उपस्थित किया हुआ मनोविकारों का अनुशीलन मनोवैज्ञानिकों के विश्लेषण में भी न मिलेगा। अनुभाव की योजना में जितनी सूक्ष्मता इन कवियों ने दिखाई है उतनी कहीं नहीं मिलती। उदाहरण के लिए क्रोध के प्रभाव को देखें। अंगरेजी कवियों ने क्रोध की दशा में प्रायः मुख का लाल रंग तथा उग्र वचन कहने आदि का ही वर्णन किया है। किन्तु हिन्दी के कवियों ने नेत्रों के लाल होने, भृकुटियों के मिलने, नयनों के फूल जाने, ओठों के फड़कने, माथे पर सिकुड़न पड़ने, पैर पटकने, हाथ मलने और शरीर काँपने इत्यादि अनेक अनुभावों का विस्तृत विवरण दिया है। शृंगारी कवियों का निरीक्षण और कौशल प्रशंसनीय है।

४. बाह्य सौंदर्य में शृंगारी कवियों का ऋतुवर्णन भी एक प्रधान विषय

है। प्राचीन हिन्दी-काव्य में प्रकृति का उपयोग तीन रूपों में हुआ है अर्थात् आलम्बन, उद्दीपन और उपमान या अप्रस्तुत। आलम्बन के रूप में प्रकृति-वर्णन बहुत थोड़ा हुआ है। सेनापति और पद्माकर में एकाध कवित्त ऐसा अवश्य मिल सकता है जिस को स्वतंत्र रूप से पढने पर उद्दीपन-विभाव की झलक नही पडती। प्राय: सभी कवियों ने प्रकृति का वही रूप उपस्थित किया है जिससे वासनामय प्रेम-वृत्ति के उद्दीपन में सहायता मिल सके। शिशिर हो अथवा ग्रीष्म, वर्षा हो अथवा वसंत, विरह-वेदना को बढ़ाने में सब में साधन पाये जाते हैं। सभी श्रेष्ठ कवियो ने प्रकृति और मानव-हृदय के बीच में आत्मीयता का अनुभव किया है। वर्षा-काल में बादलों की गरज प्रवासी प्रेमी को अपनी विरहिणी प्रेमिका का सन्देश देती हुई उसे घर लौट जाने को प्रेरित करती है। मेघों के उठते ही विरहिणी के हृदय में एक अनिर्वचनीय वेदना होने लगती है। शरद् ऋतु में कमल खिलते है तो प्रेमियो के हृदय में आशा के फूल खिलने लगते है। वसन्त के आते ही प्रेमी-प्रेमिकाओं को महोत्सव मनाने का चाव उठता है। तब कोयल की कूक माधुरी का संचार करती है, वसन्त की कोमलता कोमल भावों का उद्रेक करती है। षट्ऋतुओं में संयुक्ता-वियुक्ता की जो विभिन्न दशा होती है उसका विशद वर्णन प्राय सभी कवियो ने किया है।

विप्रलंभ-सम्बन्धी 'बारहमासे' भी कुछ कवियो ने लिखे है।

पेड़-पौधो, अनेक प्रकार के फूलो तथा पशु-पक्षियो का वर्णन नायक-नायिका के सौंदर्य-वर्णन में उपमान रूप में भी हुआ है। इससे शृगारी कवियो के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। श्रेष्ठ कवियों में कहीं-कहीं ऐसी सुन्दर उपमाएँ पाई जाती हैं कि मन आप ही आप 'वाह-वाह' करता हुआ उछलने लगता है।

यह मानना पड़ेगा कि केशव, देव, मतिराम, पद्माकर आदि ने मानुषी प्रकृति का जितना विशद और सफल वर्णन किया है, उतना सांसारिक प्रकृति का नही। कारण यह है कि इस युग के अधिकांश कवि राजदरबारो में ही रहते थे। भारत की पार्वत्य उपत्यकाओं, निर्झरणियों, सरिताओं आदि का स्वच्छद सौंदर्य उन्हें कहाँ दिखाई देता। उन्होंने जहाँ कही वन, उपवन, नदी, तड़ाग आदि का वर्णन किया है, सफलता कम मिली है। प्रकृति की अनेकरूपता तथा उसके गूढ रहस्यों के प्रति अधिकतर शृगारी कवि उदासीन रहे हैं। कवि-कर्म तो सबने किया है और घर बैठे स्वाभाविक-अस्वाभाविक प्रथा-पालन करने के लिए वस्तु-परिगणन अवश्य किया है। ये लोग प्रकृति का जीवित-जागृत तथा स्पंदित रूप उपस्थित न कर सके। इनके हाथों में पड़ कर प्रकृति निर्जीव बन कर रह गई।

५. इस युग की शृगारी रचनाएँ दो प्रकार की है—मुक्तक और प्रबंधात्मक। प्रबंध कथात्मक नहीं है, वर्णनात्मक है। सोमनाथ और मदन ने अच्छे प्रबन्ध लिखे

है। दरबारी कवियों ने प्रबन्ध नहीं छुआ। दरबारों में मुक्तक ही चल सकते थे। उधर उर्फी, नजीरी के फारसी-गो शिष्य शेर पढ़ते थे, इधर केशव बिहारी की परम्परा से आये हुए हिन्दी-कवि अपना कवित्त, सवैया या दोहा पढ़ देते थे। यह *युग मुक्तक-काव्य की रचना के लिए बहुत उपयुक्त था।*

मुक्तक काव्य में दो प्रकार की शैलियाँ मिलती हैं—एक वह जो रूढ़ि के अनुसार नायिका-भेद और नख-शिख की परिपाटी का अनुसरण करती रही—केशव, सेनापति, बिहारी, मतिराम, देव, श्रीपति, दास, दूलह, पद्माकर आदि की रचना इसी रीति पर चली है। दूसरी शैली रीति के प्रतिबन्धों से मुक्त और अनुभूति-पोषित थी। आलम, रसनिधि, घनानन्द, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि ने स्वतन्त्र रचना की है। इन कवियों में मार्मिकता, वेदना और विचित्रता अधिक है।

रीतिकाल के शृंगारिक काव्य की प्रकृति के विश्लेषण करने पर हमें ये निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

(क) उस में वासना की अधिकता है।

(ख) उस में नारी का कोई सामाजिक अस्तित्व नहीं है। वह उपभोग्य वस्तु मात्र है।

(ग) प्रेम का आदर्श हीन कोटि का है जिस में रसिकता और ऐन्द्रिय आकर्षण तो है, पर त्यागमय हृदयपरक भावना नहीं है। इस प्रेम में तरलता है, आत्मा की पुकार कम।

(घ) इस की विषयवस्तु अत्यन्त सीमित और परिबद्ध है। आध्यात्मिक भावना तो नष्ट हो ही गई थी, इस काव्य में भौतिक जीवन की भी अत्यन्त भ्रष्ट झाकी रह गई। सामाजिक चेतना है ही नहीं।

१. हिन्दी-साहित्य का यह युग अलंकार-शास्त्रियों और रसाचार्यों का युग था। इन पर संस्कृत के रीति-ग्रन्थों का प्रभाव रहा। कविता बहुत कुछ रीति-सापेक्ष हो गई और उसकी उत्तमता इसी बात में थी कि उसमें छंद और

कलापक्ष

अलंकारों का समावेश हो। कविता समझने-समझाने के लिए रीति-ग्रंथों का विशेषज्ञ होना अत्यन्त आवश्यक था। बिहारी, प्रतापसिंह, मतिराम, देव आदि में अनेक स्थल ऐसे हैं जो रीति की सहायता के बिना समझ में नहीं आ सकते। 'नीर भरी गगरी ढरकावै' का अर्थ समझने के लिए नायिका-भेद और ध्वनि-व्यंजना के ज्ञान की आवश्यकता है। *प्रिया के पदाघात से अशोक का पुष्पित हो जाना, क्रीड़ा-पर्वत पर चूड़ियों की झनकार से मयूर का नाच उठना,* कज्जलभरे नैनों के कटाक्ष से नीलकमल की पाँत बिद्ध जाना, आषाढ़ के प्रथम दिवस पर मेघ-गर्जन से हृग का उत्कंठित होना, वर्षोत्सव की पचाली, आम्रमंजरी, मलयानिल, चकवा-चकवी का विरह, चातक पक्षी की वर्षा-बिन्दु की उत्सुकता,

चाँदनी में चकोर का चरना, हंस का नीर-क्षीर अलग-अलग करना इत्यादि सैंकड़ों रूढ़िग्रस्त कवि-समयों की योजना कर देने में कवित्व समझा गया है। ऐसे काव्य में कलापक्ष का प्राधान्य और हृदयपक्ष की न्यूनता होना स्वाभाविक है।

बहुत से शृंगारी कवियों ने अपने काव्य की सृष्टि लक्षण-ग्रन्थ लिख कर की है। वे पहले किसी रस अथवा अलंकार का लक्षण दोहा में कर देते हैं और फिर कवित्त अथवा सवैया में उदाहरण बनाते हैं। परन्तु उनका उद्देश्य लक्षण-शास्त्र लिखने का कभी नहीं था। शास्त्रीय विवेचना बहुत कम कवियों को इष्ट थी। वे तो लक्षणों को कवित्व-प्रदर्शन का बहाना भर समझते थे। उनके ग्रन्थों से उनकी कवित्व-शक्ति का ही परिचय मिलता है, आचार्यत्व का नहीं। उनके रस और अलंकार के लक्षण प्राय: भ्रामक, अपर्याप्त और अशुद्ध हैं। कई विषय छुए तक नहीं गये। रस और काव्य के क्या सम्बन्ध है, विभाव, अनुभाव और सचारियों का रस-निष्पत्ति में कहाँ तक सम्बन्ध है, भावाभास, रसाभास इत्यादि क्या हैं, इन विषयों का विवेचन नहीं किया गया। कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा और काव्य-शक्ति उदाहरण देने में लगा दी है—कुछ कवियों ने उदाहरण मात्र देकर ही सतोष कर लिया है। बताया जाता है कि इस युग में बड़े-बड़े काव्यशास्त्री और प्रकाण्ड पंडित हुए हैं, परन्तु उन में एक भी ऐसा नहीं दिखाई देता जिसने काव्य-शास्त्र में कोई मौलिक देन दी हो। केशव और देव जैसे विद्वानों की चिन्ताधारा भी स्पष्ट नहीं है। अतः हमें यह कहने में रत्ती भर सकोच नहीं है कि रीतिकाव्य कहलाते हुए भी रीतिशास्त्र की दृष्टि से इस युग के समस्त साहित्य का कोई महत्त्व नहीं है। अलबत्तः शृंगार का इतना विस्तृत, मनोवैज्ञानिक और गहरा वर्णन न इस से पहले हुआ न बाद में। अतः इतिहासकारों और समीक्षकों को इस साहित्य के 'लक्षण'-पक्ष की उपेक्षा करके भी 'उदाहरणों' का संकलन करना चाहिये और उसमें के कवित्व को प्रकाश में लाने की चेष्टा करनी चाहिये।

२. शृङ्गारी काव्य की भाषा व्रजभाषा ही रही है। यह याद रहे कि इस युग के बहुत से कवि व्रजभूमि से पूर्व के प्रान्तों के रहने वाले थे। उनकी मातृभाषा अवधी थी। अवधी का प्रभाव बहुत सी रचनाओं में मिलता है और यह प्रभाव शब्द-कोश तक ही सीमित नहीं, क्रियाओं के रूप और वाक्य-योजना तक इससे प्रभावित हुए हैं। फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। नेवाज, ग्वाल और रसनिधि ने अत्यधिक फारसी शब्द प्रयुक्त किये हैं। बिहारी के अनेक दोहों में भी उर्दू-प्रयोग मिलते हैं। भाषा के सम्बन्ध में अधिकतर कवि उदार दिखाई देते हैं। उनका विश्वास है कि "भाव अनूठा चाहिये भाषा कैसिहु होय"। शब्दों को मोड़-तोड़ कर लगाने की प्रवृत्ति प्रायः सब में पाई जाती है। पंजाबी और खड़ी बोली का सम्मिश्रण भी होता रहा है।

भाषा की यह अस्थिरता और अव्यवस्था मतिराम, पद्माकर, दास, वेनीप्रवीन आदि कुछ कवियों की रचना में नहीं है। उनकी भाषा चलती, सरस, साहित्यिक और शुद्ध ब्रजभाषा है। कवीन्द्र, श्रीपति और कृष्ण कवि की भाषा भी मधुर, प्रसादपूर्ण और आडम्बर-रहित है।

विलासपूर्ण जीवन की परिचायक कविता के प्रतीक और उपमान भी विलास के उद्दीपन अथवा उपकरण हैं। उन में नागरिक जीवन की संकुचित दृष्टि है, प्राकृत जीवन का विस्तार नहीं है। वे रूढ़िबद्ध और निर्जीव से लगते हैं। उन में न तो संस्कृत काव्य के उपमानों की सी विविधता है और न ही छायावादी काव्य का सा सौन्दर्य-बोध है।

इस काल में भाषा की भाव-व्यंजना का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया है। शब्दों का प्रयोग भावानुकूल हुआ है शब्दों के संकलन और सुष्ठु प्रयोग में ये कवि विशेष रूप से सावधान रहे हैं। इनके काव्य में कहीं कोई ऐसा शब्द नहीं जो माधुर्य गुण के अनुकूल न हो। ग्राम्य अथवा अभद्र प्रयोगों का प्राय: अभाव है। एक ही भाव को अनेक प्रकार से अथवा अनेक भावों को अनेक प्रकार से कहने में ये कवि कुशल थे। उनमें गंभीरता, रागात्मकता और चमत्कारिकता अधिक है।

३. अलंकारों के प्रयोग में जितनी विविधता शृङ्गारी कवियों ने दिखाई है, इतनी कहीं नहीं मिलती। उनका मन्तव्य है कि 'कविता वनिता रस-भरी, सुन्दर होइ सु लाख, बिन भूषन नहिं भूषही, यही जगत की साख।' प्रायः कवियों ने प्रयासपूर्वक और सचेत होकर अपनी वाणी को अलंकृत किया है। सब प्रकार के अलंकार इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। बिहारी के एक-एक दोहे में कई अलंकार हैं। अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग बहुतों ने किया है। इससे अर्थ में कई जगह बाधा पड़ती है। अत्युक्ति को तो पराकाष्ठा तक पहुँचाया गया है। व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, उक्तियों के प्रकार, अपह्नुति, भ्रम, उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक, दृष्टान्त और उदाहरण प्राय. सब में देखने को मिलते हैं। हिन्दी में विविध अलंकारों के उदाहरण इन्हीं कवियों की कृतियों से ढूंढ़-ढूंढ़ कर लाने पड़ते हैं। इसके बाद अलंकार-योजना नष्ट-प्राय हो गई।

४. छंदों में कवित्त, सवैया और दोहा का अधिक प्रयोग होता है। घनाक्षरी, छप्पय, तोटक, रोला, बरवै भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं। दोहे में सब से अधिक सफलता बिहारी को प्राप्त हुई है। भूपति, रसलीन, महाराज रामसिंह, रसनिधि और रामसहाय के शृङ्गारी दोहे भी प्रसिद्ध हैं। कवित्त और सवैया में मतिराम अधिक सफल रहे हैं। इनके अतिरिक्त बेनी, नेवाज, कालिदास त्रिवेदी, देव, सुरतिमिश्र, कवीन्द्र, रघुनाथ, पद्माकर और ग्वाल ने भी सुन्दर कवित्त और सवैया लिखे हैं।

शृङ्गारिक कविता के गुण-दोषों पर निष्पक्ष हो कर विचार किया जाये तो स्वीकार करना पड़ेगा कि यह शास्त्रीय काव्य नहीं है। इसमें अश्लीलता भी कहीं-कहीं खटकती है। कहीं-कहीं अस्वाभाविकता भी आ गई है। कवियों ने एक दूसरे के भावों की चोरी भी की है। मौलिकता और व्यक्तिगत विशेषता कम है। भाषा में भी कलाबाजी का प्रदर्शन है। यह साहित्य लोक-साहित्य बनने का अधिकार भी शायद नहीं रखता। परन्तु इस साहित्य को तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि पर रखकर पढ़ने से लाभ अवश्य हो सकता है। शृङ्गारी कवियों की रचनाओं को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखना सर्वथा अनुचित है। हम उन आलोचकों को हृदयहीन और रूखा समझते हैं जो यह कहते हैं कि यह साहित्य गदगी की नाली में बहा देने योग्य है। इन कवियों की सी ईमानदारी, तल्लीनता, मनोवैज्ञानिकता और सहृदयता कहीं और दुर्लभ है। प्रेम के ऐसे मार्मिक उद्गार और स्त्री-पुरुष के मधुर सबन्ध के ऐसे रमणीक प्रसंग किसी और साहित्य में नहीं मिलेंगे। विविध अलंकारों से सुसज्जित उनकी सुन्दर कृतियों पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है। जो लोग योरप के साहित्य पर लट्टू होने के फलस्वरूप भारतीय कविता को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें हम केवल बिहारी के विषय में डा० ग्रियर्सन के शब्दों में सुना देना चाहते हैं—

उपसंहार

'बिहारी भारत के थाम्पसन कहे गये हैं। परन्तु मेरा विचार है कि बिहारी अथवा उनके साथ के किसी भारतीय कवि से कोई भी प्रतीच्य कवि तुलना नहीं कर सकता। मुझे तो बिहारी की सी रचना योरप की किसी भाषा में भी नहीं मिली'।[1]

इस युग की शृङ्गारिक कविता के कुछ नमूने—

उदाहरण

(१)

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकौ सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं॥
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

(घनानन्द)

इनकी कविता में अनुभूति और कल्पना दोनों हैं। इन्होंने प्रेम और विरह का वर्णन बड़ा मनोहर किया है। इनका भावपक्ष प्रबल है। कोरे विभावपक्ष का

१ 'लालचंद्रिका' की भूमिका में।

चित्रण कम हुआ है। प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा की व्यंजना इनकी विशेषता है। भाषा इनकी व्यंजना-शक्ति से पूर्ण है।

(२)

लाज लगाम न मानहिं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुंहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिं॥
औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटो छुयो न गात॥
तच्यो आँच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि।
नैनन के मग जल बहै, हियो पसीजि पसीजि॥
भूषन भार सँभारिहैं, क्यों यह तनु सुकुमार।
सूधो पाँय न परत महि, सोभा ही के भार॥

(बिहारी—सतसई)

बिहारी-सतसई जिसमें ७१९ दोहे हैं शृंगार रस के ग्रन्थों में सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें भक्तिकाल की दोहा-पद्धति का उपयोग हुआ है। यह कलापूर्ण काव्य है जिस मे कवि की अनुपम प्रतिभा और कल्पना का परिचय मिलता है। इसकी भाव-व्यंजना उत्कृष्ट है परन्तु वस्तु-व्यंजना में कहीं-कहीं औचित्य का ध्यान नहीं रक्खा गया, कुछ स्थलों की भाषा भी दुरूह है। अलंकार-योजना रसानुकूल और सुन्दर है।

(३)

आपने हाथ सों देत महावर आपहि बार शृंगारत नीके।
आप नहीं पहिरावत आनि कै हार सँवार कै मोलसरी के॥
हौं सखि लाजन जात गड़ी मतिराम स्वभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलें घर घेरे कहैं अबहीं ते ये चेरे भये दुलही के॥
केलि की राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दे जाइयो भीतर बैठि कै बात सुनाई॥
जेठि पठाई गई दुलही हँसी हेरे हरें मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं सु गेह की देहरि पै धरि आई॥

(मतिराम)

मतिराम बड़े सरस और विद्वान् कवि थे। आप की कविता का विशेष गुण है जीवन की भाव-भावनाओं का सर्वांगीण चित्रण। स्वाभाविकता और मौलिकता भी आप में पाई जाती है। आप की भाषा प्रौढ़ और सरस है, अलंकार उपयुक्त और रसनिरूपण सफल है। साधारणतया आप के कवित्त-सवैया अच्छे रहे हैं—दोहे भी लिखे हैं, पर वे बिहारी के कौशल को नहीं पहुँच पाते।

(४)

सूरजमुखी सों चन्द्रमुखी को विराजै
मुख कंदकलीदंतनासा किंशुक सुधारी सी।
मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओंठ
श्रीफल से कुच कच बेलि तिमारारी सी॥
मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण
सुचीर गुलचाँदनी सों चंपक की डारी सी।
केलि के महल फूलि रही फुलवारी 'देव'
ताही में उज्यारी प्यारी भूली फुलवारी सी॥

(देव)

देव की शैली में कोई नवीनता तो नहीं, पर आप की उक्तियाँ और उपमायें सर्वथा मौलिक हैं। इनमें सूक्ष्मदर्शिता लक्षित होती है। इन्होंने शुद्ध प्रेम की व्यंजना की है। स्वकीया नायिका को ये उत्तम कहते हैं। शृंगार रस सम्बन्धी नखशिख, नायक-नायिका-भेद षट्ऋतु-वर्णन आदि इन्होंने अच्छे लिखे हैं। इनकी ब्रजभाषा कोमल और सरस है। यह भावाचमत्कृत और अलंकृत भी है।

(५)

नैनन को तरसैये कहाँ लौं हिये बिरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानन को कलपैये॥
आवै यही अब जी में विचार सखी चलु सौतिहुँ के घर जैये।
मान घटे ते कहा घटि है जुपै प्रानपियारे को देखन पैये॥

(दास)

दास आचार्य थे। इनकी भाषा शुद्ध, साहित्यिक और परिमार्जित है, शब्दाडम्बर नहीं है। इनकी कविता कलापक्ष में संयत और अधिकारपूर्ण है और भावपक्ष में मनोहर, सरस और रंजनकारिणी है।

(६)

लोक की लाज औ सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह को नातो सनेह में हाँतो करै पुनि सोऊ॥
बोधा सुनीति निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीत डरात जो मीत तौ प्रीति के पैंडे परे जनि कोऊ॥

(बोधा)

बोधा उन कवियों में थे जिन्होंने रीतिग्रंथ न लिख कर स्वतंत्र रूप से शृंगारिक कविता लिखी है। प्रेम की व्यंजना इन्होंने बड़ी सुन्दर और मार्मिक रीति से की है। भाषा इनकी चलती हुई और मुहावरेदार है। कहीं-कहीं फारसी के

पद भी इसमें मिलते हैं, और कहीं-कहीं पूर्वी प्रयोग भी पाये जाते हैं। इनका वाक्य-विन्यास सरस, सुव्यवस्थित तथा ललित है।

(७)

सौतिन-मुख निसिकमल भो, पिय-चख भये चकोर।
गुरुजन-मन सागर भये, लखि, दुलहिनि मुख ओर॥
चख चलि स्रवन मिल्यो चहत, कच बढ़ि छुवन छवानि।
कटि निज दरब धर्यो चहत, वक्षस्थल . में आनि॥

(रसलीन)

रसलीन के दोहे में चमत्कार और उक्तिवैचित्र्य की प्रचुरता है। रसखान के बाद व्रजभाषा में कविता करने वाले मुसलमानों में रसलीन प्रसिद्ध है। इनका नख-शिख-वर्णन सुन्दर और शिष्ट है, अश्लील नहीं।

(८)

कैसे रतिरानी के सिधोरे कवि 'श्रीपति' जू जैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे हैं।
कैसे कलधौत के सरोरुह संवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छबि ढारे हैं॥
कैसे रूप नट के बटा से छबि ढारे कहु जैसे काम भूपति के उलटे नगारे हैं।
कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊँचे उरज तिहारे हैं॥

(श्रीपति)

श्रीपति की कविता में व्यर्थ का शब्दाडम्बर और वाग्जाल नहीं है। अनुप्रास आये तो हैं परन्तु इनसे अर्थ में बाधा नहीं पड़ती। वाक्य-विन्यास मधुर, ओजपूर्ण और प्रसादगुण-सम्पन्न है। व्रजभाषा भी सुन्दर और साधारण है—हाँ, कहीं-कहीं व्याकरण की अशुद्धियाँ अवश्य हैं। रचना में कोमलता और स्वाभाविकता है।

(९)

करि को चुराई चाल सिंह को चुरायो लंक
शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की।
पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन
दसन अनार हाँसी बीजरी गम्भीर की॥
कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराइ लीनी
रती रती शोभा सब रति के शरीर की।
अब तौ कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्हीं
छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की॥

(बेनी)

यह नखशिख-वर्णन उस शैली का नमूना है जिसमें अधिकतर कवियों ने

कविताएँ लिखी हैं। लगभग ऐसी ही सानुप्रास भाषा, ऐसा ही वर्णन और ऐसे ही छद इस काल के कवियों में मिलते हैं।

(१०)

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीरा के हारन गंग तरंगन सी सुखदेनी।।
पायन के रंग सों रंगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी।।

(पद्माकर)

परवर्ती शृंगारी कवियों में पदमाकर सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं—इन्हें 'कविराज शिरोमणि' की पदवी प्राप्त थी। भाषा इनकी बड़ी ही सरस, शुद्ध और सुगठित है। इनकी रचना-शैली अपने ढंग की एक है। इनके से कवित्त-सवैया बहुत कम कवियों ने लिखे हैं। घनाक्षरी छद के तो ये विशेषज्ञ थे। शृगार रस के अतिरिक्त बीर और शात रस में भी इन्होंने सफलता पाई है और भाषा रसभावादि के अनुकूल रही है। कहीं-कहीं आपने सानुप्रासिक शैली को प्रधानता दी है और कहीं-कहीं व्यर्थ के शब्द भी रख दिये हैं, परन्तु ऐसे स्थल अरुचिकर नहीं होने पाये। इनकी कल्पना प्रौढ़ और सुन्दर है।

(११)

रूप अनूप दई दियो तोहिं तो मान किए न सयान कहावै।
और सुनो यह रूप जवाहिर, भाग बड़े बिरलै कोउ पावै।।
ठाकुर सूम के जात न कोऊ, उदार सुने सब ही उठि धावै।
दीजिए ताहि देखाय दया करि, जो चलि दूरि ते देखन आवै।।

(ठाकुर)

इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी लोग इनके पदों को कहावतों के रूप में कहते सुने जाते हैं। व्रजभाषा की शृंगारी कविताएँ प्राय: नायिकाओं के मनोद्गारों के रूप में होती हैं-इस लिए इन्हें उनमें कहावतों के समावेश का अच्छा अवसर मिला है। ठाकुर प्रधानत: शृंगारी कवि थे, परन्तु इन्होंने नीति, वीरता आदि पर भी कवित्त लिखे हैं।

(१२)

मिलि माधवी आदिक फूल के ब्याज विनोद-लवा बरसायो करैं।
रचि नाच लतागन तानि बितान सबै बिधि चित्त चुरायो करैं।।
द्विज देवजू देखि अनोखी प्रभा अलि-चारन कीरति गायो करैं।
चिरंजीवो, बसंत! सदा द्विजदेव प्रसूनन की झरि लायो करैं।।

(द्विजदेव)

ऋतुवर्णन इन का अत्यंत मनोहर हैं। इसमें इनके हृदय की सच्ची उमंग झलकती है। अनुभूति के साथ-साथ कल्पना और मौलिकता भी मिलती है। इनकी भाषा शुद्ध और प्रौढ है। अनुप्रासादि का प्रयोग जहा हुआ है वहा अस्वाभाविक नही होने पाया।

सक्रांति काल की शृङ्गारिक कविता

अंग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ–साथ कवियो के आश्रयदाता कम होते गये। समय की परिस्थितियों ने कवियो का ध्यान अपनी तरफ खीचा और उनकी कविता का विषय भारत की दुर्दशा और दरिद्रता हो चला। फिर भी रीवा, अयोध्या, रामपुर (जिला मथुरा), काशी, हरिहरपुर आदि रियासतो में और काशी, मथुरा, प्रयाग आदि साहित्यिक केन्द्रों में पुरानी परपरा की काव्य-रचना बराबर चलती रही। समस्त भारतेन्दु-काल के कवि पिछले युग की रीति का अवलम्बन करते रहे। यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ इसी काल में हुआ, तो भी प्रेम के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नही हुआ। भारतेन्दु-युग की शृङ्गारिक कविता प्राचीन परिपाटी की अंतिम झलक है। द्विवेदी-युग में इसके विरोध का आरम्भ हुआ। परन्तु प्रेम का जादू तब भी कवियो के सिर पर चढ कर बोलता रहा। बहुत से कवि प्रेम के आदर्श की व्याख्या और प्रशसा करते रहे। आज का प्रेमकाव्य बिलकुल भिन्न दिशा में ढल रहा है। प्रेम का स्वच्छद और सर्वांगीण अनुशीलन किया जा रहा है, परन्तु अश्लीलता का अभाव आज की कविता का विशेष गुण है।

सक्राति काल के शृङ्गारिक काव्य के दो भेद किये जा सकते है। (क) शास्त्रीय ढग का काव्य, और (ख) अनुभूति-पोषित शिष्ट ढग का प्रेम-प्रमुख रचनाएं काव्य। निम्नलिखित इन प्राचीन प्रकार के काव्यो की प्रतिनिधि रचनाएँ है—

सेवक—'वाग्विलास', 'नख-शिख'।

म० रघुराजसिंह—'आनन्दाबु-निधि' इत्यादि।

सरदार—'साहित्य-सरसी', 'व्यग्य-विलास', 'शृङ्गार-संग्रह', 'षट्ऋतु-प्रकाश' इत्यादि।

भारतेन्दु—'सुन्दरी-तिलक', 'पावस-कवित्त-संग्रह', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेम-प्रलाप' इत्यादि।

हफीजुल्लाखा—'हजारा', 'नवीन-सग्रह', 'षट्-ऋतु-काव्य-संग्रह', 'प्रेम-तरगिणी'।

गोविन्द-गिल्लाभाई—'शृंगार-सरोजिनी', 'षट्-ऋतु', 'पावसपयोनिधि', 'वक्रोक्ति-विनोद', 'श्लेषचंद्रिका'।

द्विजकवि मन्नालाल—'पञ्चशतक', 'शृंगार-सुधार', 'प्रेम-तरंग', 'शृंगार-सरोज', 'सुन्दरी-सर्वस्व'।

अंबिकादत्त व्यास—'बिहारी-विलास'।

जगमोहनसिंह—'श्यामा-स्वप्न', 'प्रेमसंपत्ति-लता'।

रत्नाकर—'शृङ्गार-लहरी', 'उद्धव शतक' इत्यादि।

इनके अतिरिक्त हनुमान, रामकृष्ण वर्मा, खड्गबहादुरमल्ल, नकछेदी तिवारी, गदाधर कवि, राधाकृष्णदास, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, हरिऔध, राय देवीप्रसाद आदि की फुटकर रचनाएँ इसी ढंग की हैं।

काव्यशैली

शृङ्गारिक कविता में पिछले कवियों ने अश्लीलता का समावेश करने, नायक-नायिका-भेद और नख-शिख के वर्णन में अपना कमाल दिखाकर और समस्या-पूर्ति का बीजारोपण करके जिस परिपाटी की पुष्टि की थी, वह थोड़ी-बहुत चलती रही। इस युग के कवि पुराने ही उपादानों का पिष्टपेषण करते रहे। पहले बताया जा चुका है कि एक ओर कृष्ण-कवि राधाकृष्ण की रीति-केलि और दानलीला, मानलीला, चोविन-लीला, कुंजिहिनलीला, छद्मवेष लीला आदि लीलाओं और उपलीलाओं का वर्णन करके शृङ्गारिकता और विलासिता का संचार करते रहे, दूसरी ओर वे और अन्य शृङ्गारी कवि नख-शिख, रूप, सुकुमारता, चुम्बन, परिरम्भण आदि और नायिका के सौंदर्य का वर्णन करके कवि-कर्म करते रहे। परन्तु भारतेन्दु और रत्नाकर को छोड़ कर किसी में विशेष कलाकौशल दिखाई नहीं देता। इस युग में आकर शृङ्गारिक साहित्य अपने प्राचीन गौरव से गिर कर हीन-क्षीण हो गया।

भाषा

प्राचीन ढंग का समस्त शृंगारिक काव्य प्राचीन हिन्दी अर्थात् ब्रजभाषा में ही लिखा गया है। इस ब्रजभाषा की प्राचीनता बहुत खटकती है। इन कवियों का ब्रजभाषा-ज्ञान केवल साहित्यिक था। इनकी भाषा चलती बोली से बहुत दूर रह गई थी। अधिकतर कवि पूरब के रहने वाले थे। इसलिए ब्रजभाषा पर पूर्वी हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। खड़ी बोली का प्रचार बढ़ जाने से उसका प्रभाव भी अनिवार्य था। बहुत से कवि ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे। इसलिए इन भाषाओं के प्रयोगों का सम्मिश्रण स्वाभाविक था। अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी पहले से अधिक दिखाई देता है। ब्रजभाषा अपनी स्वच्छता, कोमलता और भावोत्पादकता से गिर गई। भारतेन्दु ने भाषा में सुधार करने की चेष्टा की, परन्तु उनका प्रभाव व्यापक न हुआ। रत्नाकर की भाषा गंभीर है और

गठन में बिहारी की भाषा से टक्कर लेती है, परन्तु रत्नाकर में लम्बे-लम्बे समासों और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भाषा के प्रवाह में बाधा डालता है। उसमें ओज तो है पर माधुर्य नहीं है।

अलंकारों के प्रयोग में भी वही गिरावट लक्षित होती है। शताब्दियों से जिस विषय में बड़े-बड़े कवियों ने अलंकार-योजना की थी, उसमें अब नवीनता, रमणीयता अथवा विचित्रता दिखाने की गुञ्जाइश कहाँ रह गई थी? अलंकार ठूस-ठूस कर भरने के कारण काव्य में कृत्रिमता और अस्वाभाविकता बढ़ती ही गई है और मुख्य विषय दब गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, भ्रम, सन्देह, यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि का प्रयोग अधिक हुआ है, परन्तु कुछ एक रचनाओं को छोड़ कर किसी में कला-कौशल प्रगट नहीं होता। अधिकतर कविताओं में अलंकारों का अत्यन्त भद्दा रूप मिलता है।

इस युग में छंदों का प्रयोग भी प्राय: परम्परा के अनुसार रहा है। वही कवित्त, सवैया, दोहा, घनाक्षरी, छप्पय, रोला, बरवै आदि चलते रहे। कुछ नये छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे बिरहा, मलार (बारहमासा), रेखता, गज़ल और कजली। रेखता और गज़ल भारतेन्दु और ललित किशोरी के प्रसिद्ध हैं। रामकृष्ण ने बिरहा लिखा है। कजली का प्रचार सर्वप्रिय रहा है और खड्गबहादुरमल्ल आदि की कजलियाँ उत्तम मानी जाती हैं।

कुछ उदाहरण आगे उद्धृत किये जाते हैं—

उदाहरण—

(१)

मनि मंदिर चंदमुखी चितवै हित मंजुल मोद मवासिन को,
कमनीय करोरिन काम कला करि धाम रही पिय पासिन को।
सरदार चहूँ दिसि छाय रहे सब छंद छटा रस रासिन को,
मन मन्द उसासन लेन लगी मुख देखि उदास खवासिन को।।

(सरदार)

सरदार बड़े रसिक कवि थे। यह बात इनकी टीकाओं से विदित होती है। इनके भाव और भाषा दोनों उच्च कोटि के हैं। मौलिक कल्पना तो इनमें कम थी, पर इनकी कविता में प्रौढ़ता अवश्य है। ब्रजभाषा पर इनका बहुत अच्छा अधिकार था।

(२)

जिम पै जु होइ अधिकार सो विचार कीजै
लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये।
नैन श्रौन कर पग सबै परबस भये

उतै चलि जात इन्हें कैसे के सम्हारिये ।।
'हरिचन्द' भई सब भाँति सों पराई हम
इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये ।
मन में रहै जो ताहि दीजियें बिसारि मन
ग्रापै बसे जामें ताहि कैसे कै बिसारिये ।।

(हरिश्चन्द्र)

भारतेन्दु साक्षात् प्रेममूर्त्ति थे । वियोग-शृङ्गार पर इनकी रचनाएँ अनूठी हैं । मानव-स्वभाव ग्रौर चरित्र के चित्रण में इनकी प्रतिभा अप्रतिम थी । हाँ, इनकी कल्पना में वैसा ही अभाव पाया जाता है जैसा पूर्ववर्ती शृङ्गारी कवियों में—गंगा-वर्णन में भी इनको कामिनियों की वदनसुधा ग्रौर कुच-छवि की याद ग्राती है । इनकी भाषा परिष्कृत ग्रौर चलती हुई है । प्राकृत तथा ग्रपभ्रंश के शब्दों का इन्होंने हठपूर्वक बहिष्कार किया है ।

(३)

बेनी को विलोकि ब्याल पेट को घिसत सदा,
मुख को विलोकि इन्दु हीन कला करि है ।
काया को विलोकि कलधौत परै पावक में,
स्रौन को निरखि सीप सागर में परि है ।।
दसन की दुति देखि दारिम दरार खात,
'गोविंद' गयंद गति देखि धूरि धरि है ।
ताहि तें कहत तो कों पेट तेरो ढाँप प्यारी,
पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मरि है ।।

(गोविन्द गिल्लाभाई)

गुजरात के हिन्दी कवियों में ग्राप बहुत प्रसिद्ध हुए हैं । हिन्दी में ग्रापके ३२–३३ ग्रंथ मिलते हैं । ग्राप की कविता पदमाकर की कविता से टक्कर लेती है । ग्रापकी समस्या-पूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं ।

(४)

इन दुखिया ग्रँखियान कों, सुख सिरजोई नाहिं ।
देखें बनें न देखते, ग्रनदेखे ग्रकुलाहिं ।।
ग्रनदेखे ग्रकुलाहिं हाय ग्राँसू बरसावत ।
नेह भरेहू इन्हें ग्रति जिय तरसावत ।।
'सुकवि' सततहू पलक कलप सत सरिस सुहाइ न ।
प्रान जाइ जो सोऊ दोऊ दृग को दुख जाइ न ।।

(ग्रम्बिकादत्त व्यास)

जो प्रेमामृत बिहारी ने दोहों के रूप में दिया है, वही व्यास जी ने कुण्डलियों में छलका कर लाने का प्रयत्न किया है; अर्थात् इनमें मौलिकता नहीं लक्षित नहीं होती। इनकी भाषा भी बिहारी की भाषा से शिथिल है।

(५)

कहु रे कागा, परमप्रिय, प्रिय आवन की बात।
तिन आये हौं देउँगी, तोहिं दूध अरु भात।।
आवौ, बैठो, हँसो, प्रिय, जातें बढ़ै उछाह।
हम पागल प्रेमीनु को, और चाहिये काह।।
गई रैनि, आये न पिय, सखि मम जीवनप्रान।
बिरह आगि में दहक कें, प्रान करत प्रस्थान।।

(सत्यनारायण)

सत्यनारायण कविरत्न में महाकवि की प्रतिभा थी। इनकी राष्ट्रीय तथा भक्ति-भावना पर हम अपने विचार प्रगट कर आये हैं। वे शृंगार-रस पर भी सुन्दर कविता कह गये हैं। इसमें वेदना और करुणा का पुट स्पष्ट है।

नवीन प्रेमकाव्य

मैथिलीशरण गुप्त—'साकेत', 'यशोधरा', 'झंकार', 'प्रणय की महिमा' इत्यादि।

लोचनप्रसाद—'मानमोद्‌गार' इत्यादि।

प्रतिनिधि रचनाएँ

रामनरेश त्रिपाठी—'मिलन', 'पथिक'।

जयशंकरप्रसाद—'प्रेम-पथिक', 'लहर', 'आँसू', नाटकों के पद्य।

सुमित्रानन्दन पन्त—'पल्लव', 'गुञ्जन', 'युगान्त', 'ग्रन्थि' आदि में फुटकर पद्य।

गोपालशरणसिंह—'मानवी', 'प्रेम' आदि के फुटकर गीत।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—'जूही की कली', 'दीपालिका', 'परिमल', 'गीतिका' इत्यादि में फुटकर कविताएँ।

महादेवी वर्मा—'रश्मि', 'नीहार', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत' इत्यादि की कविताएँ।

रामकुमार वर्मा—'निशीथ', 'अभिशाप', 'चित्ररेखा', 'पूजा' इत्यादि के गीत।

भगवतीचरण वर्मा—'प्रेम-संगीत'।

हरिवंशराय 'बच्चन'—'तेरा हार', 'मधुशाला', 'निशा-निमंत्रण', 'प्रणयपत्रिका', 'मिलनयामिनी', 'एकान्त संगीत' इत्यादि।

सुभद्राकुमारी चौहान—'मुकुल' में 'पारितोषिक का मूल्य', 'चलते समय', 'ठुकरा दो या प्यार करो' इत्यादि।

नरेन्द्र शर्मा—'प्रभात फेरी', 'प्रवासी के गीत', 'पलाश-वन', 'कामिनी', इत्यादि।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'कुंकुम', 'क्वासी', 'अपलक', में अनेक कविताएँ।

रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'—'मधूलिका', 'अपराजिता', 'वर्षान्त के बादल' आदि।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन—'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'हरी घास पर क्षणभर'।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'—'रूपदर्शन'।

जानकीवल्लभ शास्त्री—'रूप और अरूप,' 'शिप्रा'।

हंसकुमार तिवारी—'अनागत'।

शम्भूनाथसिंह—'दिवालोक'।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'—'जीवन के गान,' 'हिल्लोल'।

धर्मवीर भारती —'ठंडा लोहा'।

नीरज—'विभावरी'।

(इन संग्रहों में अनेक शृंगारिक कविताएँ संगृहीत हैं।)

इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, आरसीप्रसादसिंह, सोहनलाल द्विवेदी, सुधीन्द्र, इत्यादि अनेक कवियों ने प्रेम-संगीत लिखे हैं और अनेक नवयुवक कवि इसी शैली की कविता कर रहे हैं।

द्विवेदी-युग के कवियों को शृङ्गारी कविता की विलासिता से घृणा थी। उच्छृङ्खलता की पराकाष्ठा के विरुद्ध प्रतिवर्तन स्वाभाविक था। उन कवियों ने संयम से काम लिया। उन्होंने प्रेम-कविताएँ नहीं लिखी, तथापि प्रेम की प्रेरणा उनमें अवश्य थी। उन्होंने प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है। गुप्त जी 'प्रणय की महिमा' गाते हैं, लोचन-प्रसाद प्रेम के प्रभाव की व्याख्या करते हैं, गोपालशरणसिंह प्रेम की राह में "तन-मन-जीवन" अर्पण करने को उद्यत हैं, रामनरेश त्रिपाठी और प्रसाद अपनी प्रारम्भिक कृतियों में प्रेम की नीति की व्याख्या करते देखे जाते हैं। चाहे इस प्रकार की कविताओं में प्रेम-भाव की व्यंजना नहीं मिलती, तो भी इनमें नये आदर्शों की सूचना अवश्य मिलती है।

काव्य-शैली

आज का प्रेम चर्मचक्षुओं का ही विषय नहीं, आन्तरिक चक्षुओं का भी विषय है। वर्तमान कवि प्रेयसी के बहिरंग और अंतरंग सौंदर्य को सर्वव्यापक रस में घोल कर पान करता है। इस रसपान में विषयैषणा नहीं है। उसके सामने स्त्री अब वासना-तृप्ति का साधनमात्र नहीं है—वह तो है उदात्त भावनाओं को जगाने वाली, प्रिया, सजनी, सहचरी, प्राण, देवी, रानी। स्त्री के प्रति ऐसी उदार मनोभावना और सहानुभूति पहले के कवियों में नहीं थी। स्त्री के प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति के कारण नवीन कविता में संयम और औचित्य का ध्यान रहता है। उसमें वह अश्लीलता नहीं है जो पिछले युग की कविताओं का बड़ा भारी लक्षण है।

वर्तमान कवि का प्रेम वासना से ऊपर उठा हुआ है। यह प्रेम जीवनसर्वस्व, ईश्वर का रूप और आनन्द का स्रोत है। इस प्रेम के दो स्वरूप हैं—एक वह जो विवाहिता स्त्री के प्रति फूटता है और निरंतर बढ़ता हुआ विश्व-प्रेम बन जाता है। रामनरेश त्रिपाठी के प्रेम का यही स्वरूप है। अधिकतर कवियों ने उस प्रेम की कल्पना की है जो प्रेमिका के प्रथम दर्शन से उत्पन्न होता है, विरहाग्नि में जलाता है, रुलाता है, पर स्थिर रहता है। प्रेम के प्रथम प्रभाव की व्यंजना प्रसाद, पंत, महादेवी आदि सब बड़े-बड़े कवियों ने की है।

आज का कवि नख-शिख का वर्णन तो नहीं करता, पर वह प्रेयसी के सौंदर्य से अभिभूत है। अनेक कवियों ने अंग-सौंदर्य के सुन्दर चित्र दिये हैं जिन-से लगता है कि लगभग वही रीतिकालीन पद्धति फिर अपनाई जा रही है। रूप भिन्न है, पर बात वही है।

उदाहरण—

क्यों नयनों से रूप कह रहा—सुनो हमारी बात।
हिलती अलक कि काँप उठती तम के पंथी की राह।
वेणी खुली कि शेफाली की नत डाली की छाँह।
साँसें आतीं भीग कि लाती पुरवाई बरसात।
देह लहराती या कि लहर को देता पवन झकोर।
अविरल बोल कि जल में वर्षा की बूँदों का शोर।
शरमीले से गात कि जैसे छुई मुई के पात।
सुनो हमारी बात।
(जगदीश गुप्त)

पंत, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण, निराला, सब अपनी प्रेमिका के अलौकिक यौवन पर मुग्ध हैं। इन कवियों ने अपनी 'रानी' के जो चित्र उपस्थित किये हैं उनकी सौम्यता और सभ्यता रीतिकालीन कवियों की भावनाओं

के प्रतिपक्ष में रखने पर निखरती है। वर्तमान कवियों में बाह्य सौंदर्य का वर्णन है तो, पर बहुत कम।

वर्तमान कवि स्वकीया नायिका की प्रतिष्ठा चाहते हैं—इसलिए नायक-नायिका भेद के झमेले में वे नहीं पड़े।

इन कवियों के संयोग और वियोग शृङ्गार में वही आह्लाद है जो प्रेम-मार्गी सूफियों के इश्क में। इन्हें मिलन में तो आनन्द होता ही है, विरह की अनंत वेदना भी गुदगुदी पैदा करती रहती है। हाल ही में वियोग-शृङ्गार की प्रधानता बढ़ने लगी है। बहुत से कवियों को रोने, तड़पने, कलपने, खीझने का मर्ज-सा हो गया है। इनमें विकलता अधिक है और उल्लास कम। "कौन" से प्यार करने वालों में सुख का अनुभव होना भी कठिन है। उनके शृङ्गार में करुण रस का उद्रेक अधिक होता है। करुण रस में ही उनके विरह-तप्त हृदय को शान्ति मिल सकती है।

आज का कवि रसदोष में विश्वास नहीं रखता। किसी एक भाव की क्षणिक व्यंजना तो वह कर देता है, पर कोई रस दूर तक नहीं ले जा सकता। वह प्रेम का आदर्श सफलतापूर्वक चित्रण कर सकता है, पर पूर्ण रस-परिपाक आज की कविता में नहीं मिलता।

वर्तमान युग के कवि और कवयित्रियों को प्रेम की अभिव्यक्ति में कहीं संकोच नहीं होता। वे लाज और मर्यादा की सीमाओं को लाँघ कर प्रेमी से मिल जाना चाहते हैं। उनके स्वच्छन्द प्रेम में ईमानदारी, सचाई और सजीवता है।

आज की शृंगारी कविता अनुभूति-पोषित है। भावों का आदान-प्रदान भिन्न-भिन्न कवियों में अवश्य पाया जाता है—परन्तु व्यक्तिगत अनुभव अस्पष्ट है। परम्परा-गत भावों और प्रतीकों का पिष्टपेषण नहीं है। अलबत्ता: भगवतीचरण वर्मा और बच्चन ने उर्दू के प्रेमकाव्य की परम्परा का समावेश किया है। परन्तु उनका साकी, प्याला, अफसाना और मस्ती हिन्दी-साहित्य में ऐसे ही न्यारे-न्यारे लगते हैं जैसे किसी देश में परदेसी। कई कवियों में आलम्बन की अस्पष्टता बहुत खटकती है। वादों की अंधपरम्परा में पड़कर वे कल्पना-जगत में विचरना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और यह नहीं देखते कि उनके भाव कितने दुर्बोध्य हो गये हैं। विस्तार के लिए देखिए अगले अध्यायों में 'प्रक्रिया'।

वर्तमान प्रेम-काव्य का मुख्य लक्षण है निराशावाद। यह निराशा देश की आधुनिक अवस्था का ही प्रतिबिंब है—इसका उल्लेख हम किसी अगले प्रकरण में करेंगे। बहुत से कवि वास्तविक जीवन से कहीं दूर एक प्रेम-नगर बसाना

चाहते हैं। आशा है देश में राजनैतिक उन्नति होने पर उन्हें स्वाधीन स्थानीय प्रेम-राज्य की स्थापना करने का अधिकार भी मिल जायगा।

वर्तमान काव्य की भाषा-शैलियों का हम आगे चलकर विस्तार से वर्णन करेंगे। यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि आधुनिक काव्य में न केवल प्राचीन विषयों और भावों का त्याग दिया गया है बल्कि प्राचीन भाषा, प्राचीन अलंकार-योजना और प्राचीन छंद-विधान भी छोड़ दिये गये हैं। वर्तमान युग की भाषा है खड़ी बोली, प्रौढ़, भावसम्पन्न, स्पष्ट और प्रभाव-शालिनी। वर्तमान समय के अलंकार हैं लय और संगीत; और वर्तमान कविता के छंद हैं स्वच्छन्द और विविध, छोटे-छोटे और संगीतमय।

प्रक्रिया

वर्तमान काव्य की भाषा-शैलियों की संख्या इतनी ही है जितनी कवियों की। यह युग व्यक्तिप्रधान शैलियों का है। आज के कवि मनोनुकूल अभिव्यक्ति में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। उन्हें अपने-अपने ढंग के रूपविधानों से प्रेम है—वे भाषा, छंद, लय आदि की शैलियों के आए दिन नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। उनके ढंग एक-दूसरे से उतने ही अलग हैं जितने उनके विचार।

नवीन भावना की कुछ प्रेम-कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

उदाहरण

(१)

शून्य-हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली आवेगी?
रिक्त हो रहा मधु से सौरभ, सूख रहा है आतप से,
सुमन-कली खिलकर कब अपनी पँखुड़ियाँ बिखरावेगी?
लम्बी विश्वकथा में सुख-निद्रा समान इन आँखों में,
सरस मधुर छवि शांत तुम्हारी कब आकर बस जावेगी?
मनमयूर कब नाच उठेगा, कादम्बिनी-छटा लखकर,
शीतल आलिंगन करने को सुरभि-लहरियाँ आवेंगी।

(प्रसाद—झरना)

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को?
मेरी आँखों में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को?

सूने नभ में आग जलाकर
यह सुवर्ण-सा हृदय गला कर

जीवन सन्ध्या को नहला कर
रिक्त जलधि भरने वाले को?

....

निष्ठुर खेलों पर जो अपने
रहा देखता सुख के सपने
आज लगा है क्या वह कँपने
देख मौन मरने वाले को?

(प्रसाद—लहर)

प्रसाद जी मानव-हृदय के कवि हुए हैं। खड़ी बोली में आधुनिक शैली के गीतों द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम आप ही ने की है। आप की कविता में संगीत और ओज दोनों हैं—इसमें अनुभूति और कल्पना का मधुर सम्मिश्रण हुआ है। इसी कारण प्रसाद जी के पदों में स्वाभाविकता भी है और युग की प्रतिध्वनि भी। भाषा कहीं-कहीं कठिन और दुरूह हो गई है—एक तो संस्कृत के पदों का बाहुल्य हो गया है, दूसरे प्रतीकात्मक शब्द आ गये हैं। आप की काव्य-शैली का आधुनिक कविता पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है।

(२)

स्नेहमयि सुन्दरतामयि।
तुम्हारे रोम-रोम से नारि मुझे है स्नेह अपार।
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि, मुझे है स्वर्गागार।
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान, तुम्हीं स्वर्गिक आभास।
तुम्हारी सेवा में अनजान, हृदय है मेरा अंतर्धान।
देवि! माँ! सहचरि! प्राण

(पन्त—पल्लव—नारीरूप)

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था, आभूषन,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।

(पन्त)

स्त्री के प्रति ऐसी उदार भावना पहली बार पंत में दिखाई पड़ी है। पंत जी सौंदर्योपासक, शिष्ट और संयत कवि हैं। इनकी कविता की विशेषता है प्रकृति में प्रेमानुभूति। इस में

क्रीडा, कौतूहल, कोमलता
मोद, मधुरिमा, हास, विलास,

लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय,
स्नेह, पुलक, सुख, सरल हुलास

आदि सभी गुण हैं। भाषा इनकी मधुर और रस-भावानुकूल है। इन्होंने सिद्ध कर दिया है कि खडी बोली भी व्रजभाषा के समान कोमल और मधुर है। कोमलकांत-पदावली पन्त जी की अपनी चीज है। ये तुकान्त, अतुकान्त, मुक्तक सभी कुछ लिखते हैं।

(३)

निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झोंकों झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन को चारों ओर फिर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी—खिली
खेल रंग प्यारे संग।
प्राणधन को स्मरण करते
नयन झरते—नयन झरते!

(निराला)

निराला जी सौंदर्योपासक कवि हैं। उन्होंने शृंगारिक भावना का स्वच्छंदता मे और मुक्त छन्दों में चित्रण किया है। यह चित्र कहीं-कहीं नंगा तो हो गया है पर अश्लील नहीं होने पाया। इनके गीतों में शब्दचित्र बडे स्पष्ट हैं। निराला जी की शैली अपने ही ढंग की निराली है। उनकी रचनाओं में कल्पना, अनुभूति और संगीत का मधुर सम्मिश्रण है। हां, जिस स्थल पर ये दार्शनिक बन गये हैं वहा जटिलता के साथ कृत्रिमता भी आ गई है। निराला जी अंग्रेजी और बंगला के विद्वान् हैं इसीलिए दोनों भाषाओं की कला का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

(४)

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाती प्राणों का तार-तार
अनुराग भरा उन्माद राग,

आँसू लेते वे पग पखार!
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त
लुट जाता चिर-सञ्चित विराग,
आँखें देतीं सर्वस्व वार!

(महादेवी वर्मा)

महादेवी वर्मा के गीतों में विरह-वेदना और करुणा अत्यंत तीव्र और व्यापक हैं। दु:ख और निराशा जितनी उनकी कविताओं में प्रगट हुई है उतनी और हिन्दी के किसी कवि में नहीं पाई जाती। उनका शृंगार आध्यात्मिक है। वे एक सफल चित्रकार भी है—उनके काव्य में चित्रमयता है। उनके गीतों में माधुरी और संगीत है। शब्दों का चयन सुन्दर और भाव सरल है। उनके गीतों में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होते हुए भी प्रसाद-गुण बहुत है। उनकी आलंकारिक भाषा-शैली और भावधारा का नवीन कवियों पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

(५)

फूल सी हो फूल वाली!
किस सुमन की साँस तुमने आज अनजाने चुरा ली?
जब प्रभा की रेख दिनकर ने गगन के बीच खींची,
किन्तु दो दिन के सुमन से कौन सी यह प्रीत पाली?
क्या तुम्हारे रूप में जग-शांति आकर है छिपी सी;
दीप्ति जग सौंदर्य की क्या नेत्र में आकर दिपी सी?
कर रही स्वागत कली ले रूप की अनुराग लाली।
तुम सजीली हो, सजाती हो सुहासिनी ये लताएँ
क्यों न कोकिल कण्ठ मधु-ऋतु में तुम्हारे गीत गाएँ,
आज मैंने यह छटा अपने हृदय के बीच पा ली।
फूल सी हो फूल वाली!

(रामकुमार वर्मा)

डाक्टर वर्मा की कविता कल्पना-प्रधान है। न उसमें दार्शनिकता की गहराई है और न ही प्रेमविरह की करुणा। भावना इनकी भी रहस्यात्मक है। इनकी भावधारा सदा प्रसन्नता की ओर बहती रहती है। इनके भावों में निराशा और दुःख की कल्पना बनी रहती है। ये बार-बार इस भाव को दुहराते नजर आते है कि सौंदर्य क्षणिक है और विनाश अचल। इनका प्रकृति-चित्रण बहुत सफल नहीं हो पाया—अनुभूति की कमी लक्षित होती है।

(६)

भरे हुए सूनेपन के तम में विद्युत् की रेखा सी।
असफलता के पट पर अंकित तुम आशा की लेखा सी।।
आज हृदय में खिच आई हो तुम असीम उन्माद लिए।
जब कि मिट रहा था मैं तिल-तिल सीमा का अपवाद लिए।।
है हमें बहाने को आई यह रस की एक हिलोर प्रिये!
शाश्वत असीम में चलता है, निज सीमा के उस ओर प्रिये!
उस ओर, जहाँ उन्मत्त प्रणय है लोक-लाज को छोड़ चुका;
उस ओर, जहाँ स्वच्छंद समय सुध-बुध के बंधन तोड़ चुका।।

(भगवतीचरण वर्मा)

वर्मा जी की कविताओं में लौकिक प्रेम का उत्कट प्रवाह बहता है। इनके गीतों की विशेषता है प्रेम के व्यापारों की सरल अभिव्यक्ति। इनके प्रेम में एक बेचैनी सी है। ये प्रेम को आनन्दोल्लास और तन्मयता का स्रोत मानते हैं। उर्दू-कविता का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनकी भावना में सुकुमारता, गीतों में गति, कवित्व में प्रभावोत्पादकता, और कल्पना में आशा और अनुभूति है। इनकी भाषा सरल और सुन्दर है, एवं शैली स्पष्ट और संगीतात्मक है।

(७)

चाँद सितारे मिल कर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है।
चाँद सितारे मिलकर बोले।

चाँद सितारे मिल कर बोले।
कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बन्धन टूटे,
कितनी बार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे!
चाँद सितारे मिलकर बोले!

(बच्चन)

बच्चन की कविता में उत्कट निराशा है। उसमें आह भी है, प्रवाह भी है; भावाभिव्यंजना भी है और सरलता भी। आप की कविताओं पर फारसी के कवि उमर खयाम की स्पष्ट छाया है, कुछ-कुछ अपनी अनुभूति भी घुल आ चली है।

(८)

चौमुख दिवला बार—
धरूँगी चौबारे पर आज
सखी री, चौमुख दिवला बार।
जानें कौन दिशा से आएँ मेरे राजकुमार?
जब जब पवन सन्देशा लावें,
दीये की लौ सो बल खावें,
झाला दे-दे पास बुलावें,
इसे देख मैं जानूं मेरे आए राजकुमार।
देखूं जंगल में पट-बिजना,
गगन बीच तारों का खिलना,
मैं जानूं यह केवल छलना,
कौन कहे सचमुच आवेंगे मेरे राजकुमार!
सखीरी चौमुख दिवला बार!

(नरेन्द्र शर्मा)

शर्मा जी ने भौतिक प्रेम के अनेक गीत लिखे हैं। इनकी शृङ्गारिक भावना में संयोग शृङ्गार का अधिकार है। संयोग में वियोग की शंका और लौकिक प्रेम में अलौकिक का संकेत इनकी कविता की विशेष प्रवृत्ति है। ये प्रगतिशील कवि हैं। कहीं-कहीं नग्न भाव भी प्रगट कर दिये हैं।

(६)

दीपक जलता रहा रात भर—
तन का दिया, प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर,
दुख की धनी बनी अँधियारी, सुख के टिमटिम दूर सितारे,
उठती रही पीर की बदली, मन के पंछी उड़ उड़ सारे,
बची रही प्रिय की आँखों से मेरी कुटिया एक किनारे,
मिलता रहा स्नेह-रस थोड़ा
दीपक जलता रहा रात भर।
दुनिया देखी भी अनदेखी, नगर न जाना, डगर न जानी,
रंग न देखा, रूप न देखा, केवल बोली ही पहिचानी,
कोई भी तो साथ नहीं था, साथी था नयनों का पानी,
सूनी डगर, सितारे टिमटिम
पन्थी चलता रहा रात भर।

(गोपालसिंह नेपाली)

नेपाली जी के गीत मौलिक हैं। इनमें भाषा की सरसता, कल्पना की विचित्रता और अनुभूति की विविधता है। यह कविता उन गीतों में से है जिनका अर्थ प्रेमिका और ईश्वर दोनों के प्रति लग सकता है।

(१०)

सुनो जब तक सुनाऊँ मैं
तुम्हें उस रूप की बातें
लजीली है बड़ी यह किन्तु है लावण्य की रानी
गुँथी अल्हड़पने की मोतियों से मंजरी धानी
झमकती यामिनी सी मुक्त उसकी ज्योति का पानी
तिरा करती जहाँ आकाश-गंगा सी हँसी मानी
कपूरी रसवती दो अँखड़ियों की सुरमई घातें।
सुवासित गात है कौमार्य के मधुसिंचित परिमल से
तरंगित अंक है निर्माल्य के बहते हुए जल से
उमड़ता स्रोत शैशव का घुला उच्छ्वास चंचल से
जवानी घूम लेती है चपल मुख जब कभी छल से
चमक उठती गुलाबी चाँदनी में ज्यों कुमुद पातें
(रामेश्वर शुक्ल 'अंचल')

इस गीत में रीतिकाल के कवियों के से भाव हैं। अंचल जी की प्रेमभावना उत्तेजना-पूर्ण है। ये नेत्र-प्रेम के उपासक मालूम होते हैं। नारी के स्वरूप की कल्पना इनकी वासनामय हो गई है। यह नवीनतम प्रवृत्ति की द्योतक है। जिस प्रकार शुद्ध कृष्ण-भक्ति से विचलित होकर राधाकृष्ण-काव्य में अश्लीलता आ गई थी, इसी प्रकार प्रगति की प्रेरणा में आज का कवि मर्यादा की कड़ियों को तोड़ कर यौवन का नग्न रूप उपस्थित करने में भी अग्रसर हुआ है।

(११)

कितनी बार तुम्हें देखा पर आँखें नहीं भरीं।
सीमित उर में चिर-असीम सौन्दर्य समा न सका;
बीन-मुग्ध बेसुध कुरंग मन रोके नहीं रुका,
यों तो कई बार पी पी कर जी भर गया, छका
एक बूँद थी किन्तु कि जिसकी तृष्णा नहीं मरी,
कितनी बार तुम्हें देखा पर आँखें नहीं भरीं।
(शिवमंगलसिंह 'सुमन')

सुमन जी की कविता में ओज के साथ अनुभूति की गहराई रहती है।

(१२)

तेरी बड़ी याद आती है!
कजरारे घन-नयन पसारे
इन्द्रधनुष की भौंह सँवारे
झनझुन रिमझिम की पग-पायल
पी-पी प्राण पपीहा टेरे
विद्युत् विकल कटाक्ष शून्य सागर में जब लहरें भर लाती
तेरे नलिन-विलोचन की मुक्ता की झड़ी याद आती है।

(हंसकुमार तिवारी)

बिहार प्रदेश ने हिन्दी को बहुत से कवि दिये हैं। हंसकुमार तिवारी गम्भीर और प्रतिभा-सम्पन्न साधक हैं।

(१३)

सौ सुन्दर, सुरभित सुकुमार
सुमनों से गुम्फित कर हार,
पहनाया था सखि, प्रियतम ने
पुलकित होकर पहली बार।
उसकी सौ सुमनों में आज
सुरभित है बस केवल एक, केवल एक।
तन्मय होकर सौ-सौ बार
सजनि, किया प्रियतम ने प्यार,
केन्द्रित कर मेरे अधरों को
सीमा में अपना संसार।
उन सौ सौ मादक स्पर्शों में
अंकित अब तक है केवल एक, केवल एक।

(बालकृष्ण राव)

राव साहब की कविता का विशेष गुण है संयम। आपकी अनुभूति में सत्यता भरपूर रहती है।

(१४)

टेर रही पिया तुम कहाँ?
किसकी यह छाँह और किस के ये गीत रे?
बरगद की छाँह और पंता के गीत रे!
सिहर रहा जिया, तुम कहाँ?
....

किसकी ये आँखें हैं, किसकी यह रात रे?
विरहिन की आँखें हैं, मावस की रात रे!
बुझ रहा दिया, तुम कहाँ?
(शम्भूनाथसिंह)

लोकसाहित्य के छंदों को खड़ी बोली के ललित साहित्य में सफलतापूर्वक प्रयोग करने वाले कवियों में डाक्टर शम्भूनाथ सिंह का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। आपकी कविता का प्रमुख लक्षण है उसकी संगीतात्मकता।

[५]

स्वच्छंद कविता

शृङ्गारी कविता अधिकतर राजदरबारों में लिखी गई थी। परन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ देशी राज्य उखड़ने लगे। कवियों को आश्रय देने वाले कम रह गये। हिन्दी के कवियों को स्वावलंबन का अवसर मिला। इन्हें विलासी राजाओं की प्रसन्नता की अपेक्षा न रह कर जनता से प्रशंसा और यश पाने की आकांक्षा होने लगी। जनता के विचारों को ग्रहण करने के लिए कवियों ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। प्रजातंत्रात्मक उत्तरदायित्व की भावना जागृत हुई और कवियों में यथार्थवादिता, भावानुभूति और सचाई आने लगी।

कारण

छापेखाने ने भी कवियों और सर्वसाधारण में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ी सहायता की। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से और पुस्तकें सस्ती हो जाने से साहित्यिकों के विचार जनता तक पहुँचने लगे और जनता की भावना साहित्यिकों पर प्रगट होने लगी। उन्होंने मानव-जीवन को समझना शुरू किया और उसकी भावपूर्ण व्यंजना करना भी अपना कर्तव्य मान लिया। उन्हें विश्वास होने लगा कि पुरुष और स्त्री केवल नायक-नायिका नहीं हैं; वे आत्मा भी हैं, प्राणी भी हैं, संसारी भी हैं, और भी बहुत कुछ हैं; प्रकृति केवल रतिभाव का उद्दीपन ही नहीं करती उसकी अपनी भी कोई सत्ता है, इत्यादि।

अंग्रेजी विचार-पद्धति और साहित्य के अध्ययन ने भी हिन्दी-कवियों को

दृष्टि में विस्तार ला दिया। आधुनिक शिक्षा से उन्हें वैज्ञानिक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। इसने पहिले प्राचीन अंधविश्वासों, रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध और फिर जीवन-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। यही नया बुद्धिवाद आगे चलकर स्वच्छंदतावाद में परिणत हुआ। अंग्रेजी साहित्य से इसे नये विषय, नये आदर्श, और नये रूप प्राप्त हुए।

सन् सत्तावन का विद्रोह हमारे इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इससे एक नये जीवन का संचार हुआ और देश में राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारों की माग तथा परिवर्तन की लहर बढ़ने लगी। अंग्रेजी शिक्षा ने जिस परिवर्तन-भावना को प्रेरित किया, वह मूर्तरूप में सामने आ खड़ी हुई। कम्पनी का शासन बदला, अंग्रेजों की नीति भी बदली और समाज में एक नई आशा जागृत हुई।

ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज के प्रचार का प्रभाव भी तीव्र रूप से पड़ा। सम्भवत: इसी के फलस्वरूप राजनैतिक मनोदृष्टि में भी परिवर्तन हुआ। सुधार, जागति, स्वतंत्रता और क्रांति की लहर अपने आप जीवन के सभी पक्षों पर छा गई। हिन्दी-साहित्य पर इस लहर का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसी से काव्य में आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ।

यह कहना कठिन है कि आधुनिक अथवा स्वच्छंद काव्य का विकास कब हुआ। प्राय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आधुनिकता का आरंभ माना गया है;

स्वच्छंदता का आरंभ

परन्तु जिन उपादानों, विषयों, भावनाओं, शैलियों, प्रक्रियाओं और रीतियों को हम आज की कविता में देख रहे हैं उनमें से कोई भारतेन्दु युग में थी इसका हमें संदेह है। यह तो माना जा सकता है कि भारतेन्दु-युग में कुछ नये आलंबन आने लगे थे और पुरानी काव्य-शैली के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो चला था; परन्तु आधुनिकता का पूरा-पूरा चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इस समय भी प्रधानता रही शृंगारी कविताओं की ही। भारतेन्दु और उनके समसामयिक पक्के रूढ़िवादी थे—कविता में विशेष परिवर्तन करने को तय्यार न थे। इस काल में शृंगारिक कविता की परंपरा जिस ढंग से चलती रही उसका उल्लेख हम पिछले प्रकरण में कर चुके हैं।

इन कवियों की प्राचीन के प्रति जितनी निष्ठा थी, उतनी ही उत्सुकता नवीन के प्रति भी थी। इन्होंने पहली बार साहित्यिक बंधनों से मुक्त हो कर नये नये विषयों की ओर ध्यान दिया। हिन्दी-कविता नई दिशा में मुड़ चली। अतीत-गौरव, वर्तमान दरिद्रता, देश-दशा, सामाजिक कुरीतियाँ, समाज-सुधार आदि अनेक राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर कविताएँ लिखी जाने लगीं।

कविगण कल्पनालोक से उतरकर वास्तविक लोक में विचरने लगे। पहले के कवि देव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष इत्यादि को अधिक महत्त्व देते थे; अब के कवि मनुष्यों को ही श्रेष्ठ समझने लगे। ये लोग रंग-महलों और राजदरबारों को छोड़ झोपड़ियों और गलियों में आये। जीवन से इनका साक्षात्कार हुआ। कृत्रिमता के स्थान पर स्वाभाविकता, बंधन के स्थान पर स्वच्छंदता, शृंगार के साथ-साथ वीर-रस और नायिका-प्रेम के साथ-साथ देश-प्रेम भी हिन्दी कविता में लक्षित होने लगा।

इस युग में राजनीति और समाज-सुधार का स्वर सब से ऊँचा था। देश-भक्ति की जो भावनाएँ इस समय प्रमुख थी, उनका संकेत हमने दूसरे अध्याय में कर दिया है। इन कवियों की देश-भक्ति पर किसी को संदेह नहीं हो सकता। परन्तु इतना याद रहे कि ये लोग अधिकतर उच्चवर्ग और मध्यवर्ग की उच्च श्रेणी से थे। ये उस समय के शासन से संतुष्ट थे और अंग्रेज बहादुर का गुण-गान करने में अपनी भलाई समझते थे। इन्होंने देख लिया था कि सन् १८५७ की क्रांति में अंग्रेज के विरोध का क्या परिणाम हुआ था। इन्हें अंग्रेजों से आर्थिक लाभ भी था। बहुत से कवियों ने अंग्रेजी शिक्षा, तार, रेल, डाक आदि पर आनन्द प्रगट करते हुए अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी अफसरों की प्रशस्तियाँ लिखीं। जुबिली, राजकुमार-जन्मोत्सव, राजकुमारागमन, मिस्र में सेना की विजय आदि अवसरों पर कविताएँ लिखी गईं। ये कवि देश-भक्ति और राज-भक्ति में कोई विरोध नहीं समझते थे। तत्सामयिक भावना भी इनकी कविताओं में पूरी तरह प्रतिबिंबित है।

इन कवियों की आधुनिकता और स्वच्छन्द वृत्ति का प्रदर्शन इनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और व्यापक भावनाओं की अभिव्यंजना से होता है। ये भारत की दरिद्रता और अंग्रेजों द्वारा किये गये आर्थिक शोषण पर बराबर दुःख प्रगट करते रहे हैं, जनता से संगठित होने को कहते रहे हैं और सरकार से शासन संबन्धी सुधारों की माँग भी जोर से करते रहे हैं।

समाज-सुधार की भावना इस युग के प्रायः सभी कवियों में मिलती है। पश्चिमी विचार-पद्धति ने भी सुधारवादियों को प्रोत्साहन दिया। हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, प्रतापनारायण आदि कवि उदार थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए, छुआछूत के विरुद्ध और विधवा-विवाह के पक्ष में अनेक कविताएँ लिखीं। राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास जैसे अपरिवर्तनवादियों ने इनके विरोध में व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखीं—परन्तु इन्हें समाज का कल्याण ही अभीष्ट था। वे सब के सब समाज के हित में प्रयत्नशील थे। उनकी स्पष्टवादिता सराहनीय है। सामाजिक सुधार के अन्य विषयों में वर्णाश्रम-धर्म का पालन,

बालविवाह, समुद्र-यात्रा, गोरक्षा, भारतीय संस्कृति की रक्षा आदि प्रमुख रहे हैं।

इस युग की धार्मिक कविता में प्राचीन परम्परा का पालन किया गया है। अन्य धर्मों के प्रति उदार भावना इसकी एक विशेषता है। ये कवि झगड़ों से दूर रहना चाहते हैं। ये ईश्वर से धार्मिक विवाद मिटाने की प्रार्थना करते हैं और लोगों को विचार-स्वातन्त्र्य तथा भ्रातृत्व का उपदेश देते हैं।

प्रकृति-वर्णन भी इन कवियों ने स्वतन्त्र रूप से किया है। हरिश्चन्द्र मानव-प्रकृति के कवि थे, परन्तु उनमें नवीन प्रकृति-वर्णन-शैली के दर्शन भी होते हैं। प्रायः वे प्रकृति-चित्रण आलंकारिक शैली में करते हैं, अर्थात् प्रकृति के कुछ उपादानों के नाम गिना कर उन पर उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का विधान करते हैं। परन्तु प्रकृति को आलंबन मान कर भी कुछ वर्णन किये गये हैं—अलबत्ता: ऐसे वर्णनों में कवित्व बहुत कम है। पहले-पहल श्रीधर पाठक ने प्रकृति के स्वाभाविक रूप "गुनवंत हेमंत", "काश्मीर-सुषमा" आदि कविताओं में प्रस्तुत किये हैं। हरिश्चन्द्र के रूप किताबी और रूढ़िबद्ध हैं, परन्तु पाठक के रूप आँखों देखे हैं। यहीं से प्रकृति-चित्रण में आधुनिकता का आरम्भ होता है।

नवीन काव्यधारा में वर्णनात्मक शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण विशेष करके मार्मिक हुआ है। हरिश्चन्द्र-युग से पहले प्रकृति उद्दीपन के रूप में काव्य में आती रही। कुछ वस्तुओं के नाममात्र गिनाये जाते रहे—दृश्यों का चित्रण नहीं हुआ। प्राकृतिक उपादानों को उपमान के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है। हरिश्चन्द्र स्वयं नरप्रकृति के कवि थे, बाह्य प्रकृति की अनतरूपता पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। उनके गंगा-वर्णन, यमुना-वर्णन आदि परंपरा-पालन के रूप में हैं। अलबत्ता ठाकुर जगमोहनसिंह ने प्रकृति का सजीव चित्र खींचा है। कवि ने अपनी जन्म-भूमि, विन्ध्याटवी, दण्डकारण्य, पहाड़, नदी-नालों का सरस और साहित्यिक वर्णन किया है। प्रतापसिंह जू देव और बालमुकुन्द गुप्त की स्फुट कविताओं में भी प्रकृति के प्रति स्वच्छन्द और स्निग्ध भावना प्रगट होती है।

हिन्दी के पक्ष में भी कई कविताएँ मिलती हैं।

जनता की आवाज तो इस काव्य में है ही, जो दूसरी प्रवृत्तियाँ इस समय चलीं उनका भी संक्षेप में वर्णन कर देना आवश्यक था।

काव्य में अन्य मनोरंजक, उपदेशात्मक, विचारात्मक तथा प्रगतिशील विषय भी चल पड़े थे। 'विज्ञापन', 'बुढ़ापा', 'मम्म बीबी की चिट्ठी', 'पिता', 'पुत्र', 'बालक' आदि शीर्षकों से विदित होता है कि उस समय सब प्रकार के विषयों तक काव्य की पहुँच हो रही थी।

इस संक्रांति-युग की कविता में कवित्व-शक्ति और काव्यानुभूति का परिचय

नहीं मिलता। जो रूढ़ि-बद्ध शृंगारी अथवा धार्मिक कविता है उसमें कुछ भी नवीनता नहीं है, और जिसमें कुछ नवयुग का संदेश है उसमें न

गुण-दोष

तो काव्योचित मधुरता है न सरसता। ऐसा जान पड़ता है कि गद्य को तुकबंद करके रख दिया गया है। भावों में सामयिकता भी है और प्रचारात्मकता भी। अधिकांश कविता साहित्यिकता से कोसों दूर है। प्रायः समीक्षक द्विवेदी-युग की कविता को इतिवृत्तात्मक कहते हैं। हमारा विचार है कि भारतेन्दु-युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता और रूक्षता उससे कहीं अधिक है।

परन्तु इससे इस काल की कविता का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं हो जाता। यह कविता जीवन के अत्यधिक निकट है। इसमें नवयुग की झलक और समय की छाप है। इसमें अगले युग के साहित्य का बीजांकुर है। यद्यपि ब्रजभाषा-काव्य की शैलियां इस समय प्रचलित थीं, तो भी जन-संपर्क की उत्कंठा जैसी इन कवियों में मिलती है वैसी आज भी बहुत कम है। इस समय काव्य और राजनीति, काव्य और समाज तथा कवि और जनसाधारण एक दूसरे के बहुत निकट हो कर रहे हैं। इनकी स्वतंत्र भावना से कविता जीवन की आलोचना करने के योग्य बन गयी है, इनके प्रयोगों से ही कविताशैली इतनी विकसित हुई है और इनकी रखी हुई नींव पर आधुनिक काव्य-मंदिर का निर्माण हुआ है। ये कवि भारतीयों के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अधःपतन से क्षुब्ध हैं—यही क्षुब्धता आगे चलकर निराशावाद के रूप में हमारे सामने आई है और निराशावाद छायावाद तथा प्रगतिवाद में प्रस्फुटित हो गया है। इस काल की स्वतंत्रता, वास्तविकता, ईमानदारी, आत्मसम्मान, यथार्थवादिता और प्रगतिशीलता काव्य में नई बात है—यहीं से आधुनिकता का प्रारम्भ होता है।

इस काल में तीन प्रकार की भाषा-शैलियां मिलती हैं—१. प्राचीन परंपरानुसार ब्रजभाषा २. शुद्ध खड़ी बोली और ३. खड़ीबोली, तथा ब्रजभाषा का मिश्रित रूप। समादृत-भाषा रीतिकालीन ब्रजभाषा ही थी।

प्रक्रिया

इसका परिमार्जन भी हुआ और शब्द-शोधन भी। इस युग के कवि सर्वप्रचलित और परिचित शब्दों का प्रयोग ही अच्छा मानते थे। ब्रजभाषा का जैसा शुद्ध रूप इस काल में प्राप्त होता है वैसा किसी और काल में न हो सका। इस भाषा-शैली की स्वच्छता और प्रभावात्मकता को सभी समीक्षकों ने स्वीकार किया है। बाबू हरिश्चन्द्र ब्रजभाषा को ही काव्योपयुक्त भाषा मानते थे। वे खड़ी बोली में केवल गद्य लिखने के पक्ष में थे; परन्तु उन्होंने स्वयं भी खड़ी बोली में कुछ कविताएँ कीं और उनके समकालीन कवियों ने भी कभी-कभी खड़ी बोली का प्रयोग अवश्य किया। भाषा के चुनाव में विषय और व्यक्तिगत

परमंद का भी हाथ था। प्राय: नवीन विषयों पर खड़ी बोली में कविता की जाती थी। ज्यों-ज्यों पुराने विषय छूटते गये और नये विषय काव्योपयुक्त बनते गये, त्यों-त्यों व्रजभाषा का मोह भी हटता गया और खड़ी बोली का व्यवहार बढ़ा। खड़ी बोली में पद्य-रचना कोई एकदम नई बात नहीं थी। नामदेव, कबीर, नागरीदास इत्यादि जनता के कवियों ने भी इसका प्रयोग किया था। अंतर यह है कि अब यह स्थायी रूप में काव्य-क्षेत्र में आ चली।

हरिश्चन्द्र-युग के कवि प्राय दोनों भाषाओं में कविता करते थे, परन्तु इनमें कोई भी खड़ी बोली में रचना करने के लिए प्रसिद्ध नहीं हुआ। द्विवेदी जी के समय से पहले के ये कवि खड़ी बोली के इतिहास में वैसे ही हैं जैसे आदि-युग की हिन्दी-कविता के इतिहास में चंद के समय के चारण कवि।

तत्कालीन भाषा में प्रांतीय बोलियों के प्रयोगों के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्द और अनूदित मुहावरे भी मिलते हैं। व्यंग्य के लिए प्राय. उर्दू अथवा अंग्रेज़ी शब्दों का ही प्रयोग किया जाता रहा है। इस युग की खड़ी बोली भोंडी और अव्यवस्थित है। इस समय की स्वच्छंदता काव्य को नये-नये विषयों और क्षेत्रों में मोड़ने में प्रवृत्त रही, भाषा की ओर इसका अधिक ध्यान नहीं रहा।

यही बात छंदों के विषय में भी कही जा सकती है। पुराने छंदों का प्रयोग वैसे ही होता रहा जैसे रीतिकाल में था। अधिकतर कविताएँ रोला, सवैया, कवित्त, छप्पय, दोहा आदि हिन्दी-छन्दों में होती रहीं। चूंकि खड़ी बोली की क्रियाएँ कवित्त, सवैया आदि के ढांचे में विशेष बाधा उपस्थित करती थीं, इस लिए उर्दू ढंग के छंदों, लावनियों और ख्यालों का उपयोग शुरू हुआ। झूलना, रोला, लावनी और कजली इस समय के सर्वप्रिय छंद थे। अधिकांश कवि लावनी के प्रेमी थे, परन्तु सफलता उन्हीं को प्राप्त हुई जिन्होंने इसका प्रयोग वर्णिक वृत्तों में किया। भारतेन्दु और प्रेमघन ने नये विषयों के लिए रोला छंद लिया। इनके अतिरिक्त उर्दू गजल और रेख्ता तथा संस्कृत के द्रुतविलंबित और शिखरिणी भी मिलते हैं। नये छन्दों का उपक्रम बहुत थोड़ा हुआ।

अलंकारों का प्रयोग भी रूढ़ि-बद्ध रीति से किया गया है और अधिकतर कवि अपनी भावनाओं को प्राचीन वेषभूषा से सजाते रहे हैं। खड़ी बोली अलंकार-शून्य रही।

इस प्रकरण में हम व्रजभाषा-काव्य का अधिक उल्लेख नहीं करेंगे। उसकी शैली की विवेचना हम पिछले प्रकरणों में कर आये हैं। खड़ी बोली

प्रतिनिधि रचनाएँ — और नवीन काव्य-शैली के इतिहास में इस युग की निम्नलिखित रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—'भारतदुर्दशा', 'नीलदेवी', 'बालबोधिनी', 'जैन-कुतूहल', 'प्रबोधिनी', 'वर्षा-विनोद', 'प्रात समीरन' आदि।

अंबिकादत्त व्यास 'सुकवि'—'मन की उमंग', 'देव-पुरुष-दृश्य', 'भारत-सौभाग्य', 'कसवध' आदि।

राधाकृष्ण दास—'राधाकृष्ण-ग्रंथावली' में 'स्वर्ग की सैर', 'धर्मालाप', 'प्रताप-विसर्जन' आदि कविताएँ।

प्रतापनारायण मिश्र—'मन की लहर', 'प्रेम-पुष्पावली', 'भारत-दुर्दशा', 'तृप्यंताम्', 'मानस विनोद' आदि।

बदरीनारायण 'प्रेमघन'—'आनद-अरुणोदय' 'हार्दिक हर्षादर्श', 'आर्य्याभिनदन', 'कजली कादम्बिनी', 'स्वागत', 'आनद बधाई' इत्यादि।

ठाकुर जगमोहनसिंह—'श्यामा-स्वप्न', 'श्यामा-सरोजिनी'।

बालमुकुन्द गुप्त—'स्फुट कविता' में 'स्वदेशी आदोलन', 'जातीय गीत', 'श्रीराम-स्तोत्र', 'रामभरोसा', 'विधवा-विवाह', 'सभ्य बीवी की चिट्ठी', 'वसन्तोत्सव' आदि कविताएँ।

राधाचरण गोस्वामी—'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' तथा 'मोहन-चंद्रिका'।

किशोरीलाल गोस्वामी—'प्रेम-पुष्पाजलि', 'आकाश कुसुम', 'प्रेणयोपहार', 'वनिता-विनोद, इत्यादि।

इनके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' 'नागरी नीरद', 'शुभचिंतक' आदि तत्कालिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ है जिनके संग्रह प्रकाश में नही आये।

उदाहरण नये-नये विषयो का प्रतिपादन जिस ढग से इस युग के काव्य मे हुआ है उसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। इनसे इस काव्य की विशेषताओ का ज्ञान भली प्रकार हो सकेगा।

(१)

नये नये बहु लाट आइ कै भारत आरत वारत,
लेफटिनेंट अरु गवर्नरादि परजा-काज संवारत।
जंगल काटि काटि के केते नगर बजार बनाए,
नहर निकारि नदी अरु नद पै भारी सेतु बँधाए।
गाँव गाँव विद्यालय करिकै बहुत विवेक बढ़ायो;
यान चलाइ रेल को तापै मानो नगर उड़ायो।

(अंबिकादत्त व्यास—मन की उमंग)

आप प्राय. प्राचीन ढंग की कविताएँ ही लिखा करते थे, परन्तु उनके साथ-साथ नये विषयो का स्वर भी मिला रहता था। शृंगार, ईशविनय, देश-भक्ति

के अतिरिक्त आपने राजभक्ति पर भी लिखा है। हरिश्चन्द्र, प्रेमघन आदि ने भी ब्रिटिश राज्य की सुविधाओं से मोहित होकर गुण-गान किया है। इन उद्गारों में जनता की भावना का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

(२)

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर,
भालू चरबी चरचि लवेंडर को लगाइ फिर।
निज भाइन के रचे बसन भूषन नहि भावत,
मैनचेस्टर अरु लियरपूल से लादि मंगावत।

(अंबिकादत्त व्यास–भारतधर्म)

इस युग के कवि चापलूस नहीं थे। देश की दरिद्रता से वे दुःखी थे। उनकी सहानुभूति व्यापक और उदार थी। सभी कवि उन लोगों की कड़ी आलोचना करते थे जो स्वदेशी वस्तुओं से घृणा करते हैं। इस पद्य में व्यास जी व्यंग्यपूर्वक नवयुवकों को मैनचेस्टर और लिवरपूल के सामान मगाने और विदेशी फैशन में रहने पर डांटते हैं। अपनी संस्कृति की रक्षा की भावना उनमें कितनी उत्कट है।

(३)

अंगरेज-राज सुख-साज सजे सब भारी,
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पर महँगी काल रोग विस्तारी,
दिन दिन दूने दुःख देत ईस हा हारी।
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई,
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

(भारतेन्दु–भारतेन्दु नाटकावली)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सरकार के दुर्व्यवहार और अविचार के विरुद्ध जनता का असंतोष जागृत करने में बड़ा काम किया। राजभक्ति से संतुष्ट न रहकर वे सरकार की कटु आलोचना करने लगे थे। देश की आर्थिक दुर्दशा से सभी कवि क्षुब्ध हो गये। वे महँगी, अकाल और कर की आपत्ति के सामने सरकार की दी हुई सुविधाओं का कुछ मूल्य नहीं समझते थे।

(४)

हे धनियो, क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार,
जिसका मरे पड़ोसी भूखा उसके भोजन को धिक्कार।
हे बाबा, जो यह बेचारे भूखों प्राण गँवावेंगे,
तब कहिये क्या धनी गलाकर अशरफियां पी जावेंगे।

हे धनवानो, हा धिक किसने हर ली बुद्धि तुम्हारी है,
निर्धन उजड़ जायेंगे तब फिर कहिये किसकी बारी है।

(बालमुकुंद गुप्त–जातीय गीत)

जब बालमुकुंद गुप्त जैसे हास्यप्रिय कवि भी देश की आर्थिक दशा से असंतुष्ट हो गये तो हम समझ सकते हैं कि काव्य जनता के कितना निकट आ गया था। इस पद्य में समाजवाद का बीजांकुर मिलता है। यही भावना आगे चलकर प्रगतिवाद के रूप में प्रगट हुई है। गुप्त जी की रचनाओं में राजभक्ति नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि उनके समय तक ब्रिटिश सरकार की प्रतिज्ञाओं का सुख-स्वप्न टूट चुका था।

(५)

बहु दिन बीते राम प्रभु खोयो अपनो देस।
खोवत हैं अब बैठ के भाषा भोजन बेस॥
दया करो यह आस पुजाओ हमरे मन की।
सुध न बिसारें कबहुँ तुम्हारे श्रीचरनन की॥
सदा रखैं दृढ़ हिय महँ निज सांचो हिन्दूपन।
घोर विपत हूँ परे डिगैं नहि आन और मन॥

(बालमुकुन्द गुप्त—रामविनय)

गुप्त जी उन कवियों में हुए हैं जिन्हें हिन्दू-संस्कृति से प्यार है। इस पद्य में वे भाषा, भोजन, वेष और हिन्दूपन की सुरक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। उन्हें सरकार से कोई आशा नहीं। अब 'राम' ही इस राजनैतिक और सांस्कृतिक दासता से छुड़ायेंगे। असंतोष और निराशा की हद हो गई है। राधाकृष्णदास के "प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए, अपने या पयारे भारत के पुनि दुख-दारिद हरिए" में भी यही भावना है।

(६)

निज धर्म भली विधि जानें, निज गौरव को पहिचानें।
स्त्रीगण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यश लेवें॥

(प्रतापनारायण मिश्र–प्रेमपुष्पावली)

झूठो यह गुलाल की लाली धोवत ही मिट जाय,
बालव्याह को रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय।

(प्रतापनारायण—होली है)

मिश्र जी उदार दृष्टि वाले कवि थे–धर्मांधता इनमें नहीं थी। वे चाहते थे कि हिन्दू आत्ममर्यादा का ध्यान रखें, स्त्रियों को शिक्षा दें, बालविवाह को रोकें और अपने समाज का सुधार करके उन्नत हों। उन्हें नये-नये काव्य-विषय बहुत

सूझा करते थे। वे कभी-कभी अपने पत्र 'ब्राह्मण' में शुल्क भी कविता-द्वारा मांगते थे। 'बुढ़ापा', 'गोरक्षा', 'गजल', 'क्रन्दन' आदि शीर्षक उनकी बहुमुखी प्रतिभा के द्योतक हैं।

(७)

खंडन-मंडन की बातें सब करते सुनी सुनाई।
गाली देकर हाय बनाते बैरी अपने भाई॥
है उपासना-भेद न उसके अर्थ और बिस्तारो।
सभी धर्म के वही सत्य सिद्धांत न और विचारो॥

(प्रेमघन—आनंद अरुणोदय)

प्रेमघन विशद कवित्वशक्ति, रसज्ञता और बहुज्ञता के स्वामी थे। इनकी बहुल सी कविताएँ ब्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली में एक ही ग्रंथ है। इनकी अनेक कविताएँ अप्रकाशित हैं अथवा केवल पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। इनकी रचनाओं में देशभक्ति, राजभक्ति, समाज-सुधार, ईशविनय, धार्मिकता, हिन्दी-प्रचार, सभी प्रकार के तत्कालीन विषयों पर विचार मिलते हैं। इनकी मनोदृष्टि उदार है। ये धार्मिक वादविवाद को बुरा समझते हैं। सब धर्मों की एकता में इनका विश्वास है। यह पद्य उस समय के मानवतावाद का द्योतक है।

(८)

याही मग ह्वै कै गये दंडक बन श्रीराम।
तासों पावन देश यह विंध्याटवी ललाम॥
विंध्याटवी ललाम तीर तरुवर सों छाई।
केतकि कैरव कुमुद कमल के बदन सुहाई॥
भनत जगमोहनसिंह न शोभा जात सराही।
ऐसो बन रमनीय गए रघुबर मग याही॥
बहत महानद जोगिनी शिवनद तरल तरंग।
कंक गृध्रकंचन निकर जहँ गिरि प्रतिहि उतंग॥
जहँ गिरि प्रतिहि उतंग लसत शृंगन प्रति भाए।
जिन पै बहुमृग चरहिं मिष्ट तृण नीर लुभाए॥
सघन वृच्छ तरुलता मिले गहवर घर उलहत।
जिनमें सूरज-किरन पत्र-रंध्रन नहिं निबहत॥

(ठाकुर जगमोहनसिंह—श्यामा-स्वप्न)

प्रकृति-चित्रण की जो नई शैली शुरू हुई, उसके कई नमूने ठाकुर जी की कविता में मिलते हैं। इन्होंने प्रकृति के रमणीय स्वरूपों का चित्रण इस प्रकार से किया है कि सब दृश्य हमारे हृदय-चक्षु के सामने आ उपस्थित होते हैं। इनकी

रचनाओं में प्रकृति का मधुर और काव्योपयुक्त वर्णन मिलता है। भाषा इनकी सरस और प्रवाहयुक्त ब्रजभाषा ही रही है।

(६)

अहो सोच कन्या विवाह का वृथा हृदय नर धरते हैं,
सर्वशक्तियुक्त ईश कृपानिधि जोड़ी निर्मित करते हैं।
भावी वर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं,
'नायक' सोच करो मत कोई विधि के अंक न बचते हैं।।

(विनायकराव)

विनायकराव उन कवियों में से थे जो हिन्दू-समाज के उद्धार के अभिलाषी तो थे, पर समाज में नये सुधारों की मांग के विरोधी थे। राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास भी अपरिवर्तनवादी थे। ये लोग प्राचीन आदर्शों को ज्यों का त्यों देखना चाहते थे। इन्होंने बड़ी सुन्दर व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखी हैं।

(१०)

चहहु जु सांचो निज कल्यान। तो सब मिलि भारत संतान।।
जपो निरन्तर एक जबान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।।
तबहिं सुधरिहै जन्म निदान। तबहि भलो करिहै भगवान।।
जब रहिहै निसिदिन यह ध्यान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।।

(प्रतापनारायण मिश्र)

'हिन्दी की हिमायत' की तरह की कई कविताएँ और लेख इस समय लिखे गये थे। इनमें बालमुकुन्द गुप्त की 'उर्दू को उत्तर' नाम की कविता बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रकार की कविताओं से इतना तो प्रगट हो जाता है कि हिन्दी कविता के विषय क्या बन चले थे। इन्हीं के कारण इस युग की कविताओं पर इतिवृत्तात्मकता का आरोप किया जाता है। परन्तु इनके सामयिक महत्त्व से किसी को इन्कार नहीं है।

द्वितीय उत्थान

सब विषय काव्योपयुक्त हो सकते हैं; अपना-अपना मत प्रकाशन करने की सब को स्वतन्त्रता है; कविता अपनी बोल-चाल की भाषा में भी हो सकती है; इसमें नये-पुराने, देशी-विदेशी, छंदों का उपयोग होना चाहिये—इन प्रवृत्तियों का जन्म भारतेन्दु-युग में ही हो चुका था। द्विवेदी-युग में इनका पालन-पोषण ही होता रहा है। जिस प्रकार के विचारात्मक और प्रचारात्मक विषय पिछले युग में शुरू हुए थे, उस प्रकार के अब भी चलते रहे। इन्हीं से सबद्ध अथवा इनसे

स्वच्छंदता की प्रगति

प्रेरित और विकसित दूसरे विषय भी अपनाये गये; परन्तु अपनी नवीनता और प्रवृत्ति में वे उसी शैली के थे जिसका निर्माण भारतेन्दु-काल में हो चुका था। वही आशा-निराशा की होड़, वही उदारता, वही विश्वास और आत्म-सम्मान इस काल के कवियों में भी है। इन्हें सुव्यवस्था की लगन है। अछूत, विधवा, किसान, मजदूर तथा अन्य दलित प्राणियों से इन्हें सहानुभूति है। श्रीधर पाठक सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते हैं—बालविवाह के विरुद्ध वे ओजपूर्ण शब्दों में बोलते हैं। हरिऔध और नाथूराम शंकर शर्मा समाज की हानिकारक रीतियों की कड़ी आलोचना करते हैं। ठाकुर गोपाल-शरणसिंह दहेज-प्रथा और महिलाओं की निरक्षरता को हटाना चाहते हैं। मैथिलीशरण गुप्त समाज-सुधार के लिए उत्सुक हैं। ये सभी कवि संस्कृति की रक्षा में तत्पर हैं।

धर्म के क्षेत्र में भी इन कवियों की विचार-शैली में कोई विशेष अन्तर नहीं आने पाया। हां, इनकी मनोदृष्टि पहले से अधिक उदार हो गई है। इनमें राम और कृष्ण के भक्तों की कमी नहीं है। रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय आदि ने राम और कृष्ण पर उसी प्रकार से रचनाएँ की हैं जैसी धार्मिक काल में मिलती हैं। सियारामशरण गुप्त और मुकुटधर ने ईशविनय के गीत उसी स्वर में गाये हैं जिसमें पिछले युग के कवियों ने। इन गीतों में आत्म-समर्पण के साथ-साथ रहस्यात्मकता की झलक भी मिलती है।

यह रहस्यात्मक भावना उस मानवतावाद का परिणाम है जो धार्मिक उदारता से विकसित हुआ। इन कवियों का विश्वास है कि ईश्वर की प्राप्ति मनुष्य-प्रेम से संभव है। ये ईश्वर की सत्ता का प्रमाण सेवा और सौंदर्य में देखते हैं। अधिकांश कवि राम और कृष्ण में भी मानव-आदर्श पाते हैं और उन्हें मनुष्य ही समझते हैं। विश्व-प्रेम और मनुष्य-सेवा की भावना ने ही आगे चलकर छायावाद और रहस्यवाद को पुष्टि की है।

हम देखते हैं कि क्रमशः इन कवियों में भावों की प्रचुरता आती गई है और उपदेशात्मक तथा नीति-सम्बन्धी कविताओं की कमी होती गई है। धीरे-धीरे मस्तिष्क का स्थान हृदय लेता गया है और कविता में वास्तविक कवित्व का विकास होता गया है।

इस युग की राजनैतिक कविताएँ भी वैसी ही उन्नत और उदार भावना से पूर्ण हैं। इन कवियों को भारतीय होने के साथ ही मानव होने का अभिमान है। इनका देश-प्रेम भक्ति के रूप में प्रकट हुआ है। इनकी देशभक्ति में यथार्थ परिस्थिति की ओर अधिक ध्यान है। इस काल की राष्ट्रीयता पर हम दूसरे प्रकरण के अन्त में लिख चुके हैं। ये कवि अतीत की अपेक्षा वर्तमान के लिए

अधिक चिन्तित हैं। ये देश को उन्नत बनाने के लिए खाली ईश्वर से विनय नहीं करते—जनता से भी कुछ करने की प्रार्थना करते हैं। हरिश्चन्द्र-युग के कवियों ने किसानों और मजदूरों की चर्चामात्र की है परन्तु इस युग के वे प्रधान विषय हैं। यही इन दोनों युगों का स्वच्छंदतावाद है। इन कवियों की राजनीति में भी मानवतावाद है।

स्वच्छंदतावाद के द्वितीय उत्थान में प्रकृति के प्रति अधिक प्रेम प्रगट किया गया है। अनेक कवियों ने प्रकृति को प्रधान वर्ण्य विषय बनाकर उसके विविध रूपों का सुन्दर और आँखों देखा वर्णन किया है।

प्रकृति चित्रण

श्रीधर पाठक ने हिमालय, काश्मीर, देहरादून, मंसूरी आदि प्राकृतिक स्थलों का चित्रात्मक विवरण और फूलों, पौधों, वृक्षों, लताओं का संवेदनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है। आपने प्रकृति और मनुष्य तथा अन्य प्राणी जगत में भ्रातृत्व का सम्बन्ध प्राप्त हुआ है। आपने घने जंगलों, मरुभूमियों, पथरीले टीलों, सूखे नालों और नंगे पहाड़ों का भी उसी सहानुभूति और मार्मिकता से चित्रण किया है जिस प्रकार ग्राम-सुषमा, हरे-भरे बागों और जल-प्रपातों का, अथवा हृदयग्राही दृश्यों का। लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शंकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने प्रकृति के विभिन्न पक्षों पर अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

इस जगह हम प्रकृति-चित्रण की उन सभी शैलियों का विवरण दे देना आवश्यक समझते हैं जो द्विवेदी-युग के अन्त तक विकसित हो गई थीं।

प्रथम—प्रकृति के रूपों का स्वतंत्र रूप से केवल चित्रण। इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन संस्कृत के महाकाव्यों और नाटकों में भी हुआ है जैसे ऋतु-वर्णन, नगर वर्णन, समुद्र-तट-वर्णन, शैल-वर्णन, अरण्य-वर्णन, प्रभात-वर्णन इत्यादि। हिन्दी में भी इस प्रकार के वर्णन आख्यानों में मिलते हैं—शृङ्गारी काव्यों में भी षट्-ऋतुवर्णन और बारहमासा इसी ढंग के हैं। परन्तु शृंगारी काव्य में ये वर्णन नायक नायिकाओं पर वासनामय प्रभाव दिखाने के लिए किये गये हैं। आधुनिक युग में इस तरह के वर्णन स्वतंत्र रूप से किये गये हैं। श्रीधर पाठक, गिरधर शर्मा, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि अनेक कवियों ने प्रभात-वर्णन, निदाघ-वर्णन, वसन्तोत्सव, हिमालय, विन्ध्याटवी, तरेटी, जलप्रपात, सरिता, झरना, मेघ, वन, तड़ाग आदि पर चित्रात्मक कविताएँ लिखी हैं। इनमें प्रकृति के विविध

रूपों को आलंबन मानकर उपस्थित किया गया है—उद्दीपन बना करके नहीं। इस युग के प्रारम्भ में ऐसी कविताओं का प्राधान्य था।

प्रकृति-वर्णन की दूसरी शैली संवेदनात्मक है जिसमें प्रकृति के जो-जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ते हैं उनका भी साथ-साथ वर्णन किया जाता है। शृंगारी काव्य में ऋतुओं और प्राकृतिक वस्तुओं को कामवासना के जगाने के लिए लाया जाता था। द्विवेदी-युग में आदर्शवाद और संयम के कारण इस भावना में अन्तर पड़ा। प्रकृति आनन्द, विस्मय और उन्माद का उद्रेक करने लगी। कवि ने प्राकृतिक दृश्य देखा और उसके प्रति मुग्ध-भाव से उमड़ पड़े। श्रीधर पाठक काश्मीर-सुषमा से आनन्द-विभोर हो गये। विद्याभूषण 'विभु' तितली को देखकर पागल हो गये। कोई कवि इन्द्र-धनुष देखकर 'वाह-वाह' कह उठा, कोई मेघागमन से उन्मत्त हो गया और कोई निर्झरिणी का कलकल सुनकर एकदम गीत गाने लगा।

'पथिक' में ऐसे अनेक दृश्य मिलते हैं।

इस युग में प्रकृति मानवीय भावनाओं और कार्यों की पृष्ठभूमि बन चली। *'प्रिय-प्रवास' का प्रायः प्रत्येक अध्याय प्रकृति-वर्णन से प्रारम्भ होता है।* 'पथिक' का पहला अध्याय प्रकृति-वर्णन पर है। इससे यही दिखाना अभिप्रेत है कि वातावरण का प्रभाव मनुष्य की भावनाओं पर कितना गहरा पड़ता है। इस प्रकार प्रकृति मनुष्य के निकटतर आ गई।

कवि प्रकृति को माता के रूप में देखने लगे। उन्हें दलित कुसुम को देखकर दुःख भी होने लगा। कभी-कभी उन्हें ऐसा भी अनुभव हुआ कि प्रकृति मनुष्य के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी हो जाती है। 'प्रिय-प्रवास' में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं। आगे चलकर इस शैली का प्राधान्य हो गया और छायावादी कवियों ने अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप प्रकृति का अत्यन्त मूर्तिमान एवं आध्यात्मिक चित्रण किया। अब तो वर्णनात्मक शैली का लोप-सा हो गया है और कुछ लोग अनुभव करने लगे हैं कि हम वस्तुतः प्रकृति से बहुत दूर चले जा रहे हैं। आज के प्रायः कवि घर बैठे प्रकृति से बातें करके प्रथा-पालन कर रहे हैं। प्रकृति उनकी 'सजनी' बनकर न केवल उनके भौतिक जीवन में भाग लेने लगी है, अपितु उन्हें आध्यात्मिक जगत में ले जाने में भी समर्थ हुई है। परन्तु इसमें वह सचाई नहीं है जो द्विवेदीयुग में प्राप्त होती है।

प्रकृति का तीसरा उपयोग उपमान और रूपक के रूप में चिर-काल से होता आया है। आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्य में इसके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

इस युग में रूपकों की सृष्टि दो प्रकार से हुई है। प्रकृति के रूपों

का मानव-चरित्र पर आरोप और मानव-हृदय की भावनाओं का प्रकृति मे प्रदर्शन। एक ओर मानव-हृदय-गगन पर दुःख के बादलों का दृश्य दिखाया गया है तो दूसरी ओर कुसुम के हृदयतल से उच्छ्वास निकलते दिखाये गये हैं। गुप्त-बन्धुओं की कविताओं में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उसका विस्तृत विवरण आगे 'छायावाद' के प्रकरण में दिया जायगा।

हरिश्चन्द्र युग के काव्य-साहित्य में उच्च वर्ग का नेतृत्व बना रहा परन्तु स्वच्छंदतावाद के दूसरे उत्थान में सामान्य मानवता का प्रतिनिधित्व भी होने

अन्य विषय

लगा। काव्य का विषय विस्तृत हो गया। इसमें ईश्वर, महावीर कृषक, मजदूर, अनाथ, विधवा, सब का चरित्र चित्रण हुआ है। इस चरित्र-वर्णन में वैज्ञानिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण है। अधभक्ति के स्थान पर तार्किक शक्ति का प्रभाव अधिक है। राम और कृष्ण को 'रामचरित चिंतामणि', 'प्रिय-प्रवास', 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी' और 'साकेत' में महापुरुषों के रूप में अंकित किया गया है। इनमें अलौकिक और अतिमानुषिक प्रसंगों का अभाव है। देवी-देवता तो आधुनिक काव्यलोक से निकाल ही दिये गये हैं।

स्वच्छंद परन्तु वासना-रहित प्रेम का जैसा चित्रण इस समय में हुआ है उसका उल्लेख हम पिछले प्रकरण में कर चुके हैं। यह याद रहे कि इस युग में प्रेम की प्रधानता नहीं है।

यहाँ पर यह बता देना उचित है कि स्वच्छंदता के समावेश से काव्य में रस उपेक्षित रह गया। कोई रस दूर तक चलता दिखाई नहीं देता। हिन्दी-काव्य रस, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के बंधन से मुक्त हो गया। आधुनिक काव्य में भाव की प्रधानता हो गई—रस गौण रूप में रह गया। इस से काव्यत्व की बहुत क्षति हुई है। हम तो इसे पाश्चात्य साहित्य का ही अभिशाप समझते हैं।

अधिकांश आलोचक द्विवेदी-काल की कविताओं को इतिवृत्तात्मक, रूखी नीरस और कवित्व-हीन कहा करते हैं। बात यह है कि स्वच्छंदता के प्रयास में

इतिवृत्तात्मकता

कवि-गण अनेक प्रकार के अस्थायी, सामयिक और उपदेशात्मक विषयों पर भी कविताएं कहा करते थे। सन्तोष, आशा, काम, क्रोध, दृढ़ता, साहस, ग्रंथों की महिमा, प्रेम की महिमा, लेखकों की विशेषता, मेघ का गुण-दोष, समय की उपयोगिता आदि तत्कालीन कविताओं के शीर्षक बतला रहे हैं कि युग में काव्य-विषय क्या बन चले थे। कवि कभी-कभी ऐसे विषय भी चुनते थे जिन पर वस्तुतापूर्ण विवेचना कर सकें। इनमें काव्योपयुक्त कल्पना के स्थान पर बौद्धिक अंश ही प्रधान है। इन विशिष्ट

कविताओं में मधुरता, व्यंजकता और सांकेतिकता का अभाव-सा है। इनमें काव्योपयुक्त कल्पना के स्थान पर बौद्धिक अंश ही प्रधान है।

कुछ-एक कविताएं वर्णनात्मक और आख्यानात्मक शैली की भी हैं। पौराणिक कथाओं, पौराणिक महात्माओं, सामयिक अवसरों और चित्रों पर भी कविताएं मिलती हैं। इन में कुछ वर्णन बड़े सुन्दर हैं, अधिकतर रूखे और नीरस हैं। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विषयों पर लिखी गई अनेक कविताएं भी इतिवृत्तात्मक हैं। इनमें कवित्व बहुत कम है। शायद इसी इतिवृत्तात्मकता से खिन्न होकर सन् १९१६ ही में पं० कामताप्रसाद गुरु ने 'सरस्वती' में लिखा था—

"वे लोग तन और धन की सुन्दरता का वर्णन करते हैं पर मन की सुन्दरता का नाम नहीं लेते। राजभक्ति सिखाते हैं, पर देशभक्ति नहीं सिखाते। रण की कटाकट का वर्णन घर बैठे करते हैं परन्तु शूरता और साहस का उपदेश नहीं देते। शब्दालंकारों को छोड़, उन्हें अर्थालंकार सूझता ही नहीं।....कोई-कोई कुनैन, मच्छड़ और खटमलों को ही कविता के योग्य विषय मानते हैं।"

इस कथन में सचाई भी है और अतिशयोक्ति भी। बात यह है कि इस काल में दोनों प्रकार की शैलियों का संमिश्रण हो रहा था। हरिश्चन्द्र-युग में भी वस्तु-प्रधान कविताएं कही जाती रही हैं और आजकल भी इतिवृत्तात्मक कविताओं की कमी नहीं है। परन्तु यह है कि हरिश्चन्द्रयुग में अथवा आज वस्तुप्रधान तथा हृदय-प्रधान कविताएँ अलग-अलग नहीं हैं और द्विवेदी-युग में इनका समन्वय करने का प्रयोग होता रहा है। उस समय के प्रयोगात्मक काव्य से ही वर्तमान युग का भावपक्ष विकसित हुआ है। फिर यह बात भी नहीं है कि उस काव्य में मन की सुन्दरता पर ध्यान ही नहीं दिया गया अथवा राष्ट्र-भक्ति की कविताएँ हैं ही नहीं। भारतीय आत्मा, हरिऔध, प्रसाद और गुप्त की मार्मिक रचनाएं भी तो इसी युग में लिखी गई थीं और पहले प्रकरण में हम इस समय की राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन भी कर चुके हैं। प्रयोग तब भी हो रहे थे, अब भी हो रहे हैं—स्थिरता अब भी हमारे आधुनिक काव्य में नहीं आने पाई। यही तो स्वच्छंदता का प्रमाण है। उस समय भी द्विवेदी-सम्प्रदाय के कवि आदर्शवाद को लिए हुए प्रचारात्मक काव्य की सृष्टि करते रहे और पुनः प्रगतिवाद के नाम से काव्य को प्रचार का साधन बनाया जा रहा है। न उस समय भावात्मक कविताओं की कमी थी, न आज इनका अभाव ही हो गया है और न हो नका एकच्छत्र राज्य ही।

द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक शुष्कता भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण

है। उसी में शनैः शनैः सरसता, गंभीरता और मार्मिकता आने से आज की हिन्दी-कविता इतनी समृद्ध हो सकी है। पृष्ठभूमि पर छायावाद, प्रगति-वाद और विज्ञानवाद की वर्तमान कविता खडी है। विकासवाद की दृष्टि से इस युग की रचनाओं का मूल्य बहुत अधिक है। भारतेन्दु-युग ने द्विवेदी-युग चलाया और द्विवेदी-युग ने नवीन युग। द्विवेदी-कालीन कवियों की चलाई हुई प्रवृत्तिया ही आज देखने में आती हैं। उन्होने नवीन काव्य-शरीर का निर्माण किया, तभी तो आज उस में प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकी है।

द्विवेदी युग का महत्त्व

इसमें सदेह नही कि इस काल के अधिकतर कवि भाषा के पचड़े में पडे रहे, तो भी उनकी काव्य-वस्तु में नव-प्रबुद्ध भारत की पूरी झलक मिलती है। 'प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' इसी युग की देन हैं। इनमें लोक-सग्रह की भावना स्पष्ट है। तत्कालीन काव्य में नवीन और प्राचीन का, प्राच्य और पाश्चात्य का, साहित्य और विज्ञान का जो समन्वय हुआ है उसी से आज हमारा हिन्दी साहित्य विक-सित हो रहा है।

हरिश्चन्द्र और द्विवेदी-युग मिलकर आधुनिक युग की पृष्ठभूमि बने है। इसी समय में पौराणिक भारतीय सस्कृति की सुरक्षा का प्रयत्न भी हुआ और नवीन युग के लिए पूर्व और पश्चिम के एकीकरण से नई भावनाओं का उद्गम भी हुआ। हरिश्चन्द्र-युग ने हिन्दी काव्य को यथार्थवादिता और स्वच्छदता दी तो द्विवेदी-युग ने उस में आदर्शवाद का समावेश किया। एक ने उसे रीतिकाव्य की रसिकता दी तो दूसरे ने धार्मिक काव्य की भावुकता। एक ने नवीन राष्ट्रीय विवेक उत्पन्न किया तो दूसरे ने रूढ़ियो की दुर्बलता का अनुभव। एक ने समाज की सुध ली तो दूसरे ने परिवार की भी। सामाजिक और पारिवारिक साहित्य ही इन दो युगो की विशेष देन है। दोनों में क्रमबद्धता और अविच्छिन्नता का सम्बन्ध है। हरिश्चन्द्र-युग ने नवीन चेतना प्रदान की और द्विवेदी-युग ने उसे भाषा दी। दोनो के मेल से ही नवीन युग का उत्थान हुआ।

प्रक्रिया

काव्य में दो भाषाओं का होना बहुत लोगो को खटकता था। राष्ट्रीयता और देश की एकता की भावना के साथ-साथ हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने की सभा-वना बढ़ती जा रही थी। तब महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके साथियो ने अनुभव किया कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिये। हिन्दी-साहित्य को भारतीय साहित्य बनाने के लिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी की एकच्छत्र सत्ता को मानना पडेगा और प्रातीय उप-भाषा को छोड़ना ही पडेगा—इस धारणा के विरुद्ध ब्रजभाषा-प्रेमियो ने एक वितंडावाद खड़ा किया। हिन्दी-साहित्य के सौभाग्य से खडी बोली का पक्ष प्रबल रहा। खडी बोली

को एकच्छत्र साहित्यिक प्रमुखता प्राप्त हुई। विद्यापति की मैथिली, सूर की व्रजभाषा, जायसी और तुलसी की अवधी, मीरा की राजस्थानी और केशव की बुंदेली के विभिन्न रंगों पर एक पक्के रंग की छाप लग गई। भाषा में एकरूपता आई, और काव्य तथा समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। द्विवेदी-सम्प्रदाय की इस विजय से भावों को स्वच्छंद विचरने का अधिकार प्राप्त हुआ, कविता को प्राचीन प्रथा की कैद से रिहाई मिली और नई काव्य-शैलियों को पनपने का अवसर मिला।

शुरू-शुरू में खड़ी बोली अत्यत अव्यवस्थित थी। कवि लोग शब्दों को तोड़-मरोड़ कर लिखते रहे, व्रजभाषा के रूप भी बीच-बीच में चलते रहे और उनके वाक्य शिथिल एवं अशुद्ध बने रहे। द्विवेदी जी ने इन दोषों को दूर करने में बहुत काम किया। बीसियों लेखकों पर उनका प्रभाव पड़ा। दूसरा प्रयत्न हरिऔध जी ने किया। शुरू-शुरू में 'पूर्ण', किशोरीलाल गोस्वामी, मैथिलीशरण गुप्त, सत्यशरण आदि की रचनाओं में भाषा कर्कश और अपरिपक्व रही, संस्कृत पदावली और लंबे-लंबे समास व्यवहृत होते रहे, परन्तु 'प्रियप्रवास' की भाषा संस्कृत-गर्भित और समास-युक्त होते हुए भी मधुर और ओजपूर्ण है। मैथिलीशरण गुप्त ने भाषा को लाक्षणिकता प्रदान की, ठाकुर गोपालशरणसिंह ने प्रवाह दिया, सनेही ने उसे प्रभावशालिनी बनाया, और रूपनारायण पांडेय, मन्नन द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय आदि ने उसका परिष्कार तथा प्रचार करके आधुनिक हिन्दी काव्य की नींव को सुदृढ़ किया।

बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत के प्रभाव से खड़ी बोली का शब्द-भाडार समृद्ध हुआ है। बोलचाल के उर्दू-शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी उदारता से किया गया है। सनेही और भगवानदीन ने उर्दू-फारसी के चलते शब्दों का खूब प्रयोग किया है।

व्रजभाषा का प्रचलन भी बराबर होता रहा है। पाठक, नाथूराम शंकर, पूर्ण, सनेही, कविरत्न, दीन और हरिऔध ने दोनों भाषाओं का साथ दिया है। पाठक जी की भाषा मिश्रित है। हरिऔध ने एक ओर 'प्रियप्रवास' में खड़ी बोली का रूप प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर 'रसकलस' में व्रजभाषा का। पाठक व्रजभाषा को खड़ी बोली की ओर ले आना चाहते थे—रत्नाकर खड़ी बोली को भी व्रजभाषा की ओर ले जा रहे थे। इस होड़ में अपरिवर्तनवादियों को हार माननी पड़ी।

खड़ी बोली के ये कवि विविध छंदों में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत, उर्दू और हिन्दी के छंदों का सफलता-पूर्वक निर्वाह किया है। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, भगवानदीन और मैथिलीशरण गुप्त ने उर्दू

इनमें वर्णनात्मक स्थल बहुत कम हैं। कहानी में नाटकत्व और प्रवाह अधिक है और भाषा सरल। दीन का 'वीरपंचरत्न', गुप्त का 'रंग में भंग', 'विकट भट' आदि काव्य इसी शैली के हैं।

मुक्तक अथवा प्रबन्ध-काव्य का कलेवर निश्चित करने में व्यक्तिगत रुचि और स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। किसी ने ८–१० पंक्तियों में और किसी ने १००–२०० पृष्ठों में अपनी एक-एक कविता कही है।

इस युग की प्रमुख रचनाओं के नाम ये हैं—

श्रीधर पाठक— 'मनोविनोद', 'काश्मीर-सुषमा', 'देहरादून'

प्रमुख रचनाएँ

अयोध्यासिंह उपाध्याय—'प्रिय-प्रवास', 'चोखे चौपदे', 'पद्म-प्रसून', 'वैदेही-वनवास', 'ग्रामगीत' आदि।

भगवानदीन—'वीर पंचरत्न', 'नवीन बीन', 'नदी-मेदीन'।

रामचरित उपाध्याय—'रामचरित चिंतामणि'।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—'प्रेम-पच्चीसी', 'कुसुमाञ्जलि', 'दुखिया किसान', 'मानसतरंग', 'करुण भारती', 'आर्त-कृषक-क्रन्दन', 'कवित्त', 'सवैया'।

रूपनारायण पाण्डेय—'पत्र-पुष्प', 'मातृभूमि', 'पराग'।

रामचन्द्र शुक्ल—'झलक'।

लोचनप्रसाद पाण्डेय—'धुआँधार', 'प्रवासी', 'नीति-कवित्त'।

राय देवीप्रसाद पूर्ण—'पूर्ण-संग्रह'।

मुकुटधर—'समाज कंटक'।

रामनरेश त्रिपाठी—'पथिक', 'ग्रामगीत', 'मिलन', 'स्वप्न', 'मानसी' आदि।

गोपालशरणसिंह—'माधवी'।

मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग', 'वैतालिक', 'शकुंतला', 'साकेत'।

सियारामशरण गुप्त—'आर्द्रा', 'दूर्वादल', 'विषाद'।

इनके अतिरिक्त इन कवियों की रचनाएँ 'सरस्वती', 'जन्म-भूमि', 'बाल-विलास', 'नागरी-नीरद', 'हिन्दोस्तान', 'भारतमित्र', 'शुभ-चिंतक', 'हिंदी-प्रदीप', 'भारत-सुदशा-प्रवर्तक', आदि पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। इस युग की शैलियों के विस्तृत अध्ययन के लिए उनका संग्रह हो जाना परमावश्यक है।

छायावाद का बीजांकुर इसी युग में गुप्तकृत 'झंकार' और प्रसादकृत 'झरना' में मिलता है। माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में भी रहस्यात्मक

भावना मिलती है। इनका हम अगले ही प्रकरण में उल्लेख करेंगे।

उदाहरण द्विवेदी-युग की शैलियों को समझने के लिए निम्नलिखित उद्धरणों को अच्छी तरह देखा जाय।

(१)

कितने पातक नित होत तिहारे घर में,
कितनी अबला-जन गिरत दुःखसागर में।
बालक-विवाह कितने नहिं नित होते हैं,
जिनके फल लखि लखि कौन नहीं रोते हैं।
यह लोक-चाल अति बुरी देश में छाई,
किहि रीति कुमति-पथ मिटै सकल दुखदाई।

(श्रीधर पाठक—मनोविनोद)

यह नमूना है द्विवेदी-युग के आरम्भ की खड़ी बोली का। इसमें ब्रजभाषा के रूप भी मिश्रित हैं, वाक्य शिथिल और अव्यवस्थित हैं, शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है, व्याकरण-संमत शुद्धता की उपेक्षा की गई है और काव्य-कला का नितांत अभाव है। परन्तु इस अवस्था से चलकर थोड़े ही वर्षों में गुप्त और प्रसाद की भाषा और कला तक पहुँच जाना इस समय की आश्चर्यजनक सफलता है। पाठक जी का विषय वही है जो भारतेन्दु-सम्प्रदाय का था। परन्तु इन्हें विशेष सफलता मिली है प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण में जिसका नमूना आगे दिया जायेगा।

(२)

भगवान हिंदू जाति का उत्थान कैसे हो भला।
नित यह कुरीति दहेज वाली घोंटती उसका गला॥
सुकुमारियां वे भोगती हैं यातना कितनी बड़ी।
जो पूर्ण यौवन काल में भी हैं बिना व्याही पड़ी॥
अगणित कुटुंबों का किया इस राक्षसी ने नाश है।
तो भी बुझी न अभी अहो इसको रुधिर की प्यास है॥

(डा० गोपालशरणसिंह)

शृंगारी और भक्ति-प्रधान कविताओं के साथ साथ आपकी देश और समाज पर भी अनेक कविताएँ हैं जिनकी शैली हरिश्चन्द्र-युग से मिलती-जुलती है। आप ने सुबोध खड़ी बोली में गंभीर तथा ऊँचे भावों की अभिव्यक्ति भी की है। आपकी भाषा मधुर और चलती हुई है।

(३)

ब्रह्मदेव फिर उठो देश का हित करने को।
रोग शोक दारिद्रय दुःख दुर्गति हरने को॥
देखो सारा विश्व फिर क्या है सच्ची सभ्यता।
पराकाष्ठा धर्म की और भाव की भव्यता॥

(रूपनारायण पांडेय)

आप की प्राय कविताओं के विषय इसी प्रकार सामयिक हैं। देश-भक्ति, अछूतोद्धार, स्वदेशी-प्रचार इत्यादि आपकी कविता के मुख्य विषय हैं। ब्राह्मणों से आप को बड़ी आशा है। आप ने कुछ कहानियाँ भी पद्य-बद्ध की हैं, प्रकृति-सौंदर्य पर भी आप की सुन्दर कविताएं हैं। प्रकृति के प्रति आप की सहानुभूति भी स्पष्ट है। आपने अपनी रचनाओं में बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

(४)

कहो तो आज कह दें आप की आंखों को क्या समझे।
सिता सिंदूर मृगमदयुक्त अद्भुत कुछ दवा समझे॥
अगर इसको न मानो तो बता दें दूसरी उपमा।
सहित हाला हलाहल-मिश्रिता सुन्दर सुधा समझे॥
न हो सन्तोष इस पर भी तो उपमा तीसरी ले लो।
युगल पद-धारिणि त्रिगुणात्मका अग की अदा समझे॥

(भगवानदीन-'दीन')

उर्दू की बहर में संस्कृत-गर्भित शब्दावली का कैसा सुन्दर प्रयोग हुआ है। आप काव्य में चमत्कार का महत्त्व मानने वालों में थे। आप उन कवियों में से थे जिन्हें प्राचीन काव्य-विषयों से भी बराबर प्रेम रहा है।

(५)

पुर्जे किसी मशीन के हों कहने को साठ।
बिगड़े उनमें एक तो हों सब बाहर बाठ॥
हों सब बाहर बाठ बंद हो चलना कल का।
छोटा हो या बड़ा किसी को कहो न हलका॥
यह देश मशीन लोग सब दर्जे दर्जे।
चलें मेल के साथ उड़ें क्यों पुर्जे पुर्जे॥

(देवीप्रसाद 'पूर्ण')

आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली में दोनों में भक्ति, वेदांत, देश-भक्ति, समाज-सुधार, स्वदेशी, मातृभाषा तथा प्रकृति पर कविताएं करते थे। इस उद्धरण में

खड़ी बोली को कुंडली के साचे में ढालने का सफल प्रयत्न है। आपने खड़ी बोली में दोहे भी लिखे हैं।

(६)

मोहन कब लौं मौन रहोगे?
निज आँखिन पै धरं ठीकरो, कितने और रहोगे?
तुम देखत भारत-मानव-कुल, आकुल छिन-छिन छीजै?
कहा भयो पाषाण हृदय तुव, जो नहिं तनिक पसीजै।।

(सत्यनारायण कविरत्न)

आप को ब्रजभाषा और खड़ी बोली में समान-रूप से प्रेम था। जातीयता आपके काव्य का प्रधान गुण है।

(७)

अहह! अधम आंधी, आ गई तू कहां से?
प्रलय घन-घटा सी छा गई तू कहां से?
पर-दुःख तू ने, हा, न देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही, हाय! यों तोड़ डाला।।

तड़प-तड़प आली अश्रुधारा बहाता।
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता।।
निठुर! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से!
इस नवलतिका की गोद सूनी किये से।।

(रूपनारायण पांडेय-दलित कुसुम)

(८)

करो नाथ स्वीकार आज इस हृदय-कुसुम को।
करें और क्या भेंट राजराजेश्वर तुम को।।
इष्ट नहीं है इसे कि धारण करो हृदय पर।
निज मंदिर में ठौर कहीं दो इसको प्रभुवर।।

(सियारामशरण गुप्त)

कहाँ पाऊं अवलंबन हाय?
रिक्त है यह पूजा का थाल,
हृदय में है भीषण भूचाल।
सूखकर मेरा सुमनोद्यान,
रो रहा है निर्जन सुनसान।
जहाँ जैसे भी हैं जो फूल,
हो गये आज चिता की धूल।

(सियारामशरण गुप्त)

भावुकता, करुणा और पर-दुःख-कातरता इनकी कविताओं की प्रधान विशेषताएँ हैं। इनकी कविताएं उसी दु:खवाद, छायावाद और रहस्यवाद का परिचय देती हैं जिसका प्रचलन द्विवेदी-युग के बाद जोरों में हो गया था। इन रचनाओं में ईश्वर के प्रति सच्चा आत्मसमर्पण है।

(९)

धन्य यहाँ की धूल धन्य नीरद नभ तारे,
धन्य धवल हिम-शृंग तुंग दुर्गम दृग प्यारे।
धन्य सुघर गिरिचरन सरित निर्झर-रव-पूरित,
लघु दीरघ तरु विहंग बोल कोकिल कल कूजित।
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर,
यहि अमरन को लोक यहीं कहुं बसत पुरंदर॥

(श्रीधर पाठक-काश्मीर-सुषमा)

इनकी कविता पढ़ने से मालूम होता है कि इन्होंने सृष्टि-सौंदर्य का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया था। इन्होंने काश्मीर, देहरादून मसूरी, हिमालय, बन, सान्ध्य-दृश्य, घन-शोभा आदि का अपूर्व और रमणीक वर्णन किया है—सवेदनात्मक भी और चित्रात्मक भी। इनकी भाषा का मूल्यांकन करते समय यह नहीं भूल जाना चाहिये कि ये हरिश्चन्द्र-युग और द्विवेदीयुग की संधि रेखा पर खड़े हैं। इनकी प्रतिभा के दर्शन काव्य-विषयों और छंदों के नये-नये प्रयोगों में होते हैं।

(१०)

गया उसी देवल के पास से है ग्राम पथ,
श्वेत दरियों में कई घास को विभक्त कर।
थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे,
गोरज से धूमल जो खड़े हैं किनारे पर।
उन्हें कई गायें पैर अगले चढ़ाए हुए,
कंठ को उठाए चुपचाप ही रही हैं चर।
जा रही हैं घाट ओर ग्रामवनिताएं कई,
लौटती हैं कई एक घट और कलश भर॥

(रामचन्द्र शुक्ल-शलक)

आपका प्रकृति-वर्णन अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। प्रकृति के चित्रणों में आप अपनी ओर से कुछ नहीं मिलाते और न ही प्रकृति के ऊपर अपनी भावनाओं का आरोप ही करते हैं। प्रकृति-प्रेम के कारण ही शुक्ल जी को ग्राम-जीवन अधिक पसद रहा है। ऊपर की पंक्तियों में ग्राम-सुषमा का बड़ा सजीव वर्णन किया गया

है। आपकी भाषा परिष्कृत और प्रवाह-सम्पन्न है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रकृति और मनुष्य पर सुन्दर कविताएं लिखी हैं। आपकी करुण-रस की कविताएं बहुत प्रभावोत्पादक हैं।

(११)

चिन्ता की सी कुटिल उठतीं अंक में जो तरंगें।
वे थीं मानों प्रकट करतीं भानुजा की व्यथाएँ॥
धीरे धीरे मृदु पवन में चाव से थीं न डोलीं।
शाखाएं भी सहित लतिका शोक से कंपिता थीं॥
पांवों को वे यदपि बल के साथ ही थे उठाते।
तो भी वे थे न उठ सकते हो गए थे मनों के॥
मानों यों वे गृह-गमन से नन्द को रोकते थे।
संमुद्धा हो प्रबल बहती शोक-धारा जहां थी॥

(अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रियप्रवास)

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। आप का शब्द भंडार अगाध था। 'प्रियप्रवास' आप की महान् साधना का परिचायक है। इस में करुणा का मार्मिक चित्रण किया गया है। काव्य में कोमलकांतपदावली का प्रयोग हुआ है। 'चोखे-चौपदे', 'अधखिला फूल' आदि में रोजमर्रा की भाषा के उदाहरण हैं।

(१२)

जग की आंखों से ओझल कर बरबस मेरी दृष्टि उठाकर।
झिलमिल करते हुए गगन में तारों के पथ पर पहुँचाकर॥
करता है संकेत देखने को किसका सौंदर्य मनोरम।
आकर के चुपचाप कहीं से यह संध्या का तम अति प्रियतम॥

(रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न)

'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' इनके वे खडकाव्य हैं जिनमें देशभक्ति की प्रेरणा है। जगह-जगह प्रकृति के संवेदनात्मक चित्र मिलते हैं। प्रकृति के साथ इन्होंने सहानुभूति प्रगट की है। इन्हें रहस्यात्मक संदेश भी मिले हैं। इन्होंने बालक, युवा, वृद्ध सब के लिए अधिकारपूर्ण कविताएं लिखी हैं। इनकी भाषा मंजी हुई और सुन्दर है।

(१३)

अंधकार में दीप जलाकर किसकी खोज किया करते हो।
तुम खद्योत क्षुद्र हो तब फिर तुम क्यों ऐसा दम भरते हो॥

तम में नक्षत्र आज तक घूम रहे हैं उसके कारण।
उसका पता कहाँ है किसको उसको होगा यह रहस्योद्घाटन ।।
(मुकुटधर)

अपने भाई लोचनप्रसाद पांडेय की तरह आपका भी हृदय सहानुभूतिपूर्ण है और आपका भी प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग है। आधुनिक युग का जिज्ञासापूर्ण रहस्यवाद आपकी कुछ कविताओं में स्पष्ट है। ऊपर की पंक्तियों में रहस्यात्मक खोज व्यक्त हुई है। सूफी-कवियों के समान आपको सारी प्रकृति 'उसी' की खोज में फिरती दिखाई देती है।

(१४)

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किस से होकर आऊँ मैं।
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊँ मैं।।
बीत चुकी है बेला सारी, किन्तु न आई मेरी बारी।
करूँ कुटी की अब तय्यारी, वहीं बैठ पछताऊँ मैं।।
कुटी खोल भीतर आता हूँ, तो वैसा ही रह जाता हूँ।
तुझको यह कहते पाता हूँ, 'अतिथि' कहो क्या लाऊँ मैं।।
(मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी ने सब प्रकार की कविताएं लिखी हैं—देशभक्ति, समाजसुधार अतीत-गौरव, ईश-विनय, प्रकृति-वर्णन इत्यादि सब विषयों पर आपने अधिकार-पूर्ण रूप से लिखा है। आपकी रचनाओं में द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता भी है और नवीन युग की कोमलता, रहस्यात्मकता और सूक्ष्मता भी। आपने भाषा और भाव दोनों का परिष्कार किया है। हिन्दी-साहित्य को आपने बहुत कुछ दिया है।

आधुनिक काव्य

हम ने देखा कि भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग की पद्य-रचना देश में उठी नयी चेतना, नयी साहसिकता और नयी जीवनानुभूतियों द्वारा अनुप्राणित हुई। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिस्ट सोसाइटी, सन् '५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम, राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और नाना धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों ने भारतीय जीवन में धर्म, ज्ञान, संस्कृति, समाज, रीति, आचार-विचार, देश, शिक्षा, भाषा, साहित्य, कला आदि के प्रति नवीन भावना और स्वच्छंद प्रवृत्ति को जागृत किया। रूढिग्रस्त प्रचलनों और मान्यताओं के प्रति एक बौद्धिक अनास्था बढने लगी। धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों ने एक ओर आदर्शवादी दृष्टिकोण और दूसरी ओर यथार्थवादी दृष्टिकोण ला खड़ा किया। बाद में दूसरे प्रभावों में आकर इसी दृष्टिकोण ने हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद

का रूप ग्रहण किया। गांधीवाद भी आदर्शवाद का ही एक पक्ष था। आदर्शवादी जागृति ने अतीत से प्रेरणा पाने की दृष्टि से ऐतिहासिक गाथाओं को काव्य में स्थान दिया 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' में ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि में नयी मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया गया है। राजनैतिक जागरण ने आत्म-गौरव, स्वाभिमान और भारतीय जीवन के प्रति विश्वास का भाव भरा। ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि के साथ हमारी जिज्ञासायें बढ़ी और हम ने जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करने की चेष्टा की। कवियों की यह बहिर्मुखी प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादी कविता के मूल में रही है।

स्वच्छंदतावाद ने जीवन की प्रतिष्ठा के साथ व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी स्थापित की जिसके कारण आत्मविश्लेषण और अन्तर्मुखी भावना हिन्दी काव्य-पद्धति में व्यक्त हुई। छायावाद, रहस्यवाद, और निराशावाद इसी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप विकसित हुए।

जैसा कि हम अगले प्रकरण में देखेंगे छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि अनेक वादों ने हिन्दी कविता को पुनः सीमित विषयों और प्रणालियों में बांध दिया।

किन्तु, इस स्वच्छन्दता का क्रम अविच्छिन्न रूप से द्विवेदी युग के उपरान्त भी बना रहा है। २०-२५ वर्षों के लिए छायावादी, रहस्यवादी और प्रगतिवादी काव्यधारा ने स्वच्छन्दता में बाधा तो अवश्य उपस्थित कर दी और कविता को मतवादों की संकीर्णता में आ घसीटा, पर उस काल में भी माखनलाल चतुर्वेदी, गुरुभक्तसिंह भक्त, सियारामशरण गुप्त, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', हरिकृष्ण 'प्रेमी', उदयशंकर भट्ट, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, हरिवंशराय 'बच्चन' भगवतीचरण वर्मा, सुधीन्द्र, सुमित्राकुमारी सिन्हा, आरसीप्रसाद सिंह, जानकीवल्लभ शास्त्री, हंसकुमार तिवारी आदि अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी मौज में स्वतन्त्र प्रेरणा से ही काव्यसृष्टि की। यह बात अलग है कि इस स्वच्छंदप्रियता में उन्हों ने छायावादी और प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखी हैं। और बच्चन ने उमर खैयाम के अनुकरण में जो कविताएँ लिखी, उनकी प्रवृत्ति को हालावाद कह दिया गया। पर न तो बच्चन ही और न ही उपर्युक्त दूसरे कवि किसी वाद-विशिष्ट को मानने वाले हैं। यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि छायावाद अपने में स्वच्छंदता लेकर चला था, अतः प्रसाद और महादेवी वर्मा को छोड़ अन्य सभी छायावादी कवियों ने बहिर्मुखी प्रवृत्ति का परिचय भी दिया है। निराला को एक दृष्टि से 'नयी कविता' का जन्मदाता भी माना जा सकता है। पन्त समयानुकूल ढलते रहे हैं। ये छायावादी कवि तो हैं ही पर उनकी

प्रगतिवादिता, स्वच्छंदतावादिता और प्रयोगवादिता में भी किसी को संदेह नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रगतिवादी कवि भी स्वच्छंद काव्य की सृष्टि करते रहे हैं, भले ही उनकी मुख्य प्रवृत्ति प्रगतिवाद की रही है।

इन कवियों की शैली और प्रक्रिया युगानुकूल रही है, जिसका वर्णन यथा-स्थान दिया जायगा। यहाँ पर उनकी स्वच्छन्द कविताओं के नमूने संगृहीत किये जाते हैं—

(१)

भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले
भला किया, मीठे फल वाले ये तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो अपनाओ, लगा चुके हो जो कलमें
भला किया, दुनिया उलटा दो प्रबल उमंगों के बल में,
लो हम तो चल दिए,
नए पौधो प्यारो ! आराम करो।

(माखनलाल चतुर्वेदी)

आपकी कविताओं की चार श्रेणियाँ की जा सकती हैं—राष्ट्रीय, प्रेम-सम्बन्धी, छायावादी और विविध। आपकी शैली में स्पष्टवादिता और ओज है और भावों में प्रेरणा। आप शब्दों का जाल नहीं बुनते। अपनी सरस अनुभूति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हैं।

(२)

घड़े की आपबीती—

जटिल कंकड़ों की कर्कश रज
मल-मल कर सारे तन में,
किस निर्मम निर्दय ने मुझको
बाँधा है इस बन्धन में ?
फाँसी सी है पड़ी गल में
नीचे गिरता जाता हूँ;
बार-बार इस अन्ध कूप में
इधर उधर टकराता हूँ।
ऊपर-नीचे तम ही तम है
बन्धन है अवलम्ब यहाँ !
यह भी नहीं समझ में आता
गिरकर मैं जा रहा कहाँ !

(सियारामशरण गुप्त)

श्री सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय, भाव-प्रधान, रहस्यवादी, शृंगारी, वर्णनात्मक, सब तरह की कविताएँ लिखी है।

(३)

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
वह आता।

(निराला)

निराला जी का मुख्य स्वर है छायावादी, परन्तु वे प्रगतिवादी भी कहे जाते हैं, प्रयोगवादी भी, दार्शनिक भी। उन्हें स्वच्छन्द कवि कहा जाये तो अधिक उपयुक्त होगा।

(४)

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी,
नन्दनवन सी फूल उठी यह, छोटी सी कुटिया मेरी!
मेरा मन्दिर, मेरी मस्जिद, काबा काशी यह मेरी,
पूजा-पाठ, ध्यान, जप-तप है, घटघटवासी यह मेरी।
'माँ ओ!' कहकर बुला रही थी, मैंने पूछा यह क्या लाई।
मिट्टी खाकर आई थी, बोल उठी वह 'माँ काओ'।
कुछ मुंह में कुछ लिये हाथ में, हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से।
मुझे खिलाने आई थी, मैं ने कहा 'तुम्हीं खाओ'।

(सुभद्राकुमारी चौहान)

राष्ट्रवादी कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की इस कविता में वात्सल्य-भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इनकी शृंगारी कविताएँ भी सुन्दर और संयत हैं।

(५)

वर्ष नव
हर्ष नव
जीवन उत्कर्ष नव
नव उमंग
नव तरंग
जीवन का नव प्रसंग
नवल चाह

नवल राह
जीवन का नव प्रवाह

(बच्चन)

हालावादी कवि का नवजीवन के निर्माण की चिन्ता करना उसी वृत्ति का परिचय देता है जिस को स्वच्छन्द कविता कहते हैं।

(६)

घिर आओ उमड़ घुमड़ बादल
बरसो पल पल पीयूष धवल
छल छल छलके आनन्द अमल
ओ प्यासों के आशा सम्बल ?
जल रहे विश्व के प्राण इधर
मूर्च्छित जीवन के अन्तर तर
कलियों के सौरभ-सिक्त अधर
चेतना लुप्त प्रान्तर प्रान्तर
बरसो बरसो सरसो ओ घन।

(उदयशंकर भट्ट)

भट्ट जी आशावादी कवि हैं। उनका प्रकृति-चित्रण भावना से भरा रहता है। उनके काव्य में जीवन के समस्त पक्षों की समीक्षा मिलती है। उनके काव्य में छायावादी, प्रयोगवादी सब तरह के स्वर मिलते हैं। वे स्वच्छंदतावादी कवि हैं।

× × ×

वर्तमान काल में भी 'नयी कविता' के नाम से जो प्रवृत्ति चली है, उसके मूल में भी स्वच्छन्दप्रियता है। भावुक कवि किसी वाद-विशेष, किसी विषय-विशेष, किसी स्वर-विशेष में बँध कर नहीं लिख पाता। भाव और सिद्धान्त के बन्धन अथवा भाषा और छंद के जाल में जकड़ कर वह नहीं लिखना चाहता। 'नयी कविता' के आधार बहुत व्यापक हो गये हैं। कुछ-एक 'नयी कविताओं' के शीर्षकों से यह अनुमान किया जा सकता है कि इनका रुख किधर है—नदी के द्वीप, पर्वत पूछता है, भोर, तूफान, आवाजों के घेरे, नया जन्म, दीवार, सरिता, खाली जेबें पागल कुत्ते और बागी कविताएँ, चील, नक्शा, तस्वीरें, ओ सरोवर, पितृहीन ईश्वर, चाँद यह दूज का, विधुर वसन्त, ओ अप्रस्तुत मन, मकड़ी का जाला, लोहार की दूकान, मौन · एक पहलू; अनागत, पोस्टर, कलाकार और सिपाही, बम्बई का क्लर्क, मृत, पालना, स्नान, कार्टूनों का जुलूस, शिशु, मनोरथ के घरौंदे, मुँह छिपाती साड़ी, पुल, एक भारतीय युवक की तेईसवीं वर्षगाँठ, यात्रा, परकीया, चक्रव्यूह, चित्र, नगाड़े की छोरियाँ, आईना, मृत्यु, कवि, इत्यादि। इस

की चर्चा पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में विस्तार से की गई है। यहाँ केवल 'नयी कविता' की विस्तृत भावधारा का परिचय-मात्र कराने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं:—

(१)

खुल गये चींटियों के पपड़े वाले द्वार
चीनी के दाने छिटका—
चल दिये उधर मानव उदार !
तीतर वाले ने खोल दिये
तीले पिंजड़े के
हो रहो किसी की क्षुधा शान्त !
(चारागर भी सोच न पाया
क्या हयात क्या मर्ज ?)
मनुज मनुज का वर्ग
यह उदारता क्या जिसमें
मौत छिपी बेदर्द।
(लक्ष्मीकांत वर्मा —चींटी, चारा और तीतर)

चींटी से लेकर मानव तक, मानव से लेकर दानव तक और दानव से लेकर पशु तक सभी विषय काव्योपयुक्त माने जा रहे हैं। लक्ष्मीकांत छोटी सी वस्तु अथवा घटना से बहुत बड़ी बात निकाल लेने की सामर्थ्य रखते हैं।

(२)

दूब का अविरोध फैला खेत; बेतरतीब
वृक्षों की क्षितिज की मेड़ पर कुछ भीड़
चुहलते पक्षियों की तोतली कविता
पवन की लहरियों में ऊँघती सरिता।
बरसती दृष्टि के उस छोर तक अविराम
जाड़ों की उजागर गुनगुनी-सी घाम. . . .
(कुँवरनारायण—जाड़ों की दोपहर)

इतिवृत्तात्मकता और छायावाद दोनों के सामञ्जस्य से एक नई शैली का विकास धीरे-धीरे हो रहा है।

(३)

मैं असभ्य हूँ, क्योंकि खुले-नंगे पाँवों चलता
मैं असभ्य हूँ, क्योंकि धूल की गोदी में पलता।

मैं असभ्य हूँ, क्योंकि चीर कर धरती धान उगाता,
मैं असभ्य हूँ, क्योंकि ढोल पर बहुत जोर से गाता।
मैं असभ्य हूँ, क्योंकि कात कर स्वयं बनाता कपड़े,
मैं असभ्य हूँ, क्योंकि नहीं हैं पंने मेरे जबड़े।

(भवानीप्रसाद मिश्र)

प्रगतिवाद की अपेक्षा उक्त पंक्तियों में अधिक व्यापक मानवतावादी स्वर है।

(४)

नाश औ निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच,
सारी जिन्दगी फिरती
जागरण में, स्वप्न में सुख दुःख संजोये—
ठीक पुतली की तरह तिरती
चिर-शयन बन,
शीश पर जब मृत्यु आ घिरती,
फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती।

(जगदीश गुप्त)

जगदीश गुप्त के कविता-सग्रह 'नाव के पाँव' की लगभग प्रत्येक कविता का विषय भिन्न है। प्रेम, ईश-विनय, प्रकृति, मानव, जीवन-दर्शन, गरीब, सब पर कविताएँ हैं। आपके भाव अत्यत सुलझे हुए, भाषा सरल और शैली प्रसाद गुणयुक्त है

(५)

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो
जीवन का रस लो : देह मन आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो।

(अज्ञेय)

अज्ञेय 'नयी कविता' के उन्नायकों में हैं। आपने विविध शैलियों, विविध छंदों, विविध विषयों पर बहुत कुछ लिखा है।

(६)

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में

अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आ कर घिर जाय...
...तब मैं टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ।
(धर्मवीर भारती)

भारती जी जागरुक प्रगतिशील कवि हैं, और उनके स्वरों में संकीर्णता नहीं है।

[६]

काव्य के वाद

वादों का समन्वय

वर्तमान युग में काव्य की परख वाद के आधार पर की जा रही है; और हमारे हिन्दी के आलोचना-शास्त्र में तो इसका इतना प्राधान्य हो गया है कि स्वयं कविगण आश्चर्य-चकित हैं कि उनकी रचनाओं पर किस ढंग की समीक्षा खड़ी की जा रही है। उनकी एक-एक पंक्ति पर किसी न किसी वाद का आरोप हो रहा है। शून्यवाद, एकेश्वरवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद, औत्सुक्यवाद, परास्तवाद, नश्वरवाद, विषादवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, स्वच्छंदतावाद, प्रतीकवाद, अन्योक्तिवाद, लक्षणावाद, संकेतवाद, अरूपवाद, अनात्मवाद, छायावाद, अभिव्यंजनावाद, विवेकवाद, स्वातन्त्र्यवाद, विज्ञानवाद, बुद्धिवाद, मानवतावाद, औचित्यवाद, आचारवाद, शांतिवाद, प्रकृतिवाद, हालावाद, व्यक्तिवाद, समाजवाद, साम्यवाद, सौंदर्यवाद, कलावाद, प्रयोगवाद, और न जाने क्या-क्या वाद आधुनिक कविताओं से निकाल-निकाल कर पेश किये जा रहे हैं। हम इस सारे वितंडावाद को साहित्य के लिए अहितकर समझते हैं। इससे न केवल पाठकों में अनिश्चितता और अरसिकता की भावना उत्पन्न होती है, अपितु कवियों को अपनी प्रतिभा और अनुभूति का स्वतन्त्र प्रदर्शन करने में बाधा रहती है। इस लालच से कि उनकी कृति समीक्षक की दृष्टि में पूरी उतरे वे किसी 'वाद' के गड्ढे में पड़ सकते हैं। बल्कि

यह कहना अधिक ठीक होगा कि बहुत से आधुनिक कवि 'वाद' की परिधि में रह कर ही काव्य-रचना करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कई नवयुवक साधक न होते हुए भी प्रसाद और महादेवी का अनुकरण करके रहस्यवादी बन जाने के इच्छुक रहे हैं, कई अपने नगर की तंग गलियों में रह कर केशव की तरह प्रकृति के साहचर्य का दावा करते हैं, कई 'कवि' अपनी अमीरी का आनंद उठाते हुए भी भूखों-नंगों से "बौद्धिक सहानुभूति" प्रगट करके प्रगतिवादी बने बैठे हैं और अनेकों मिडल-पास नौसिखिये प्रसाद और निराला की सी दार्शनिक पहुँच के दावेदार हैं। जिन रूढ़ियों के प्रति हरिश्चन्द्र और द्विवेदी-समुदाय के कवियों ने विद्रोह किया था, उन्हीं रूढ़ियों और विधानों में आज के अनेक 'कवि' फँसे हुए हैं। इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व समीक्षकों के सिर पर है। हमारा विश्वास है कि यदि काव्य-साहित्य को किसी 'वाद' की लकीर पर न चलाकर स्वाभाविक और स्वतंत्र गति से चलने दिया जाये तो अच्छा हो; वरना काव्य में कृत्रिमता और दलबन्दी आ जाने से उसका काव्यत्व नष्ट हो जाता है।

प्रचलित वादों के नामों में बहुत से अनावश्यक और भ्रममूलक हैं। शून्य-वाद और एकेश्वरवाद का सम्बन्ध निर्गुणिया भक्ति साहित्य से है; अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद आदि भक्तिकालीन सिद्धान्त हैं। आचारवाद, औचित्यवाद और आदर्शवाद भी साहित्यिक उद्देश्य के अन्तर्गत धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्ति के पहलू हैं। नश्वरवाद, पराजयवाद, विषादवाद और निराशावाद एक ही प्रवृत्ति के अनेक पक्ष हैं। प्रतीकवाद, अन्योक्तिवाद, लक्षणावाद, संकेतवाद, अरूपवाद, अभिव्यंजनावाद हमारे साहित्य में रहस्यवाद के अन्तर्गत भाव और कला के भिन्न-भिन्न पक्षों के नाम हैं। सौंदर्यवाद, कलावाद, प्रेमानुभववाद आदि भी छायावाद और रहस्यवाद के ही रूप हैं। इसी प्रकार क्रांतिवाद, स्वातन्त्र्यवाद, विज्ञानवाद, साम्यवाद, समाजवाद, मानवतावाद आदि नाम एक ही प्रवृत्ति के द्योतक हैं। यथार्थवाद और आदर्शवाद का सामंजस्य भी प्रगतिवाद में हुआ है।

निराशावाद भी कोई स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि मनुष्य सदा से अपनी परिस्थितियों से असंतुष्ट चला आया है। हम अभी बताना चाहेंगे कि निराशावाद की प्रेरणा से ही एक ओर छायावाद और दूसरी ओर प्रगतिवाद का विकास हुआ है। बात यह है कि जिस स्वच्छन्दतावाद की चर्चा हम पिछले प्रकरण में करते रहे हैं उसकी प्रगति में समाज के बंधन, देश की राजनैतिक दशा और आर्थिक परिस्थितियाँ बाधा डालती रही हैं। इधर एक ओर जिज्ञासा और सौंदर्य-प्रेम की भावना जागृत हुई तो दूसरी ओर असंतोष और वेदना का समावेश

हुआ। जिज्ञासा, सौंदर्य-प्रेम और वेदना के मेल से छायावाद खड़ा हुआ। साहित्य-क्षेत्र में जो दूसरा सम्प्रदाय था उसने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक विशेषताओं के प्रति विद्रोह किया। असन्तोष के कारण उन लोगों की चेतना अन्तर्वृत्तिपरक नहीं बनी, वे जीवन को अवरुद्ध करने वाली अवस्थाओं से विमुख होकर परमात्मा की शरण में नहीं चले गये, बल्कि इनका सामना करने को खड़े हुए। यही लोग प्रगतिवादी कहलाते थे।

कहा जाता है कि छायावाद द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध और प्रगतिवाद छायावाद की पलायन-वृत्ति के विरुद्ध प्रतिवर्तन के रूप में खड़े हुए हैं। वही यथार्थवाद और आदर्शवाद जो हरिश्चन्द्र-युग में एक साथ समाज, धर्म, और राजनीति के क्षेत्र में दिखाई देते हैं, कुछ विकसित रूप में प्रगतिवाद के नाम से चल रहे हैं। वही प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-भावना तथा उदार भक्ति जो पिछले युग में विस्तृत रूप से काव्य-विषय बन रही थी, आगे चलकर छायावाद और रहस्यवाद बन गई। प्रकृति-वर्णन, प्रेमाभिव्यक्ति और ईश्वर-विनय की जो शैलियाँ द्विवेदी-युग में बन रही थीं, वही कलात्मक रूप से छायावाद और रहस्यवाद में चल रही हैं। हमारी दृष्टि में तो छायावाद और रहस्यवाद द्विवेदी-युग की प्रवृत्तियों का कलात्मक रूप ही हैं। पूर्व और पश्चिम को, प्राचीन और नवीन को, स्थूल और सूक्ष्म को, भाव और भाषा को, प्रकृति और मनुष्य को, काव्य और जीवन को एवं आत्मा और अनात्मा को एक दूसरे के निकट लाने की जो क्रिया द्विवेदी-युग में हो रही थी उसी के फलस्वरूप छायावाद और रहस्यवाद का विकास हुआ है।

सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रूढ़ियों के प्रति जो विद्रोह भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग में शुरू हुआ था वही आज उग्र रूप में हमारे सामने प्रगतिवाद बनकर आया है। साहित्य को समाज के निकट लाने की जो भावना पिछले कुछ वर्षों से दिखाई दे रही थी वही आज उत्कट रूप में इस प्रवृत्ति का मूलाधार बनी है।

छायावाद-रहस्यवाद

आज की कविता में प्रकृति एक प्रधान विषय है। प्रकृति-वर्णन की नयी और पुरानी शैलियों का प्रयोग बड़े रोचक और मनोरम ढंग

प्रकृति-वर्णन से हुआ है। प्रकृति के बाह्य रूप का चित्रण पन्त, गुरुभक्तसिंह भक्त, दिनकर, मनोरंजनप्रसाद सिंह आदि की कविताओं में

अत्यन्त विशद, विविध और उल्लासोत्पादक है। पन्त ने पर्वत, मैदान, झील, निर्झर, फूल, कली, कोकिल, काग, वसन्त, पतझड़, मलय-पवन, प्रात, संध्या आदि के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। उन्होंने प्रकृति के सुन्दर और भीषण दोनों प्रकार के रूप दिये हैं। गुरुभक्तसिंह भक्त की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति सराहनीय है। कवि ने "नूरजहाँ" में ईरान, काश्मीर और भारतवर्ष की प्राकृतिक शोभा का विस्तृत चित्रण किया है। इस काव्य में भी एक ओर पहाड़, जंगल, झील, प्रभात आदि के मनोहर चित्र हैं और दूसरी ओर खँडहर, रेगिस्तान, मैदान और रात के भयानक चित्र; परन्तु दोनों प्रकार के चित्रों में आकर्षण और सौंदर्य है। नेपाली को छोटे-छोटे दृश्य और उपकरण अधिक आनन्द देते हैं। घर के आस-पास की घास, पीपल, फूल-पत्ती, सुग्गा आदि उन्हें आनन्दित करने के लिए पर्याप्त है। श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शुक्ल, लोचनप्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी आदि द्विवेदी-काल के कवियों के चित्रात्मक वर्णन हू-बहू इसी प्रकार के हैं। अलबत्त: प्रकृति-चित्रण की जो दूसरी संवेदनात्मक शैली कही गई है, इसमें कवि की व्यक्ति-गत भावुकता प्रकृति के रूप-रूप में लक्षित होती है। प्रकृति के दृश्यों में उसके हृदय की कथा लिखी मिलती है। रामकुमार को ऐसा दिखाई देता है कि 'ये शिलाखंड मानो अनेक पापों के फैले हैं समूह'। पन्त को कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि 'आज सोने का माध्यकाल जल रहा है जंतुगृह सा विकराल' और कभी आनन्द की मन–स्थिति में 'लहरें' उठती थी मानो 'चूमने को मुझको'। तारा पाडे को ऐसा जान पड़ता है कि 'नीरव नभ भी है रोता'। बहुत से कवि इसी प्रकार प्रकृति में मानव-भावनाओं का आरोप करते हैं। वे प्रकृति और मनुष्य में कोई भेद नहीं समझते। निराला ने प्रकृति को 'माँ' कहा है। बहुत से कवि उसे अपनी सहचरी, सजनी अथवा रानी मानते हैं। उन्होंने इस बहाने अनेक वासना-मय चित्र भी उपस्थित किये हैं। कवियों की कल्पना में प्रकृति साकार नारी, पुरुष, बालक, पशु अथवा पक्षी के समान उछलती, खेलती, रोती, सोती, अगड़ा-इयाँ लेती, चलती, फिरती, जीती, मरती, रुग्ण होती, विह्वल होती, क्रोध करती, प्रेम करती, आनंद मनाती है। कवि जब प्रकृति के बीच में अपने को पाते हैं तो उन्हें ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी पुराने साथी से मिले हैं और उससे बात-चीत करने का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। कभी-कभी कवियों को प्रकृति के साथ क आध्यात्मिक सम्बन्ध का अनुभव होता है। प्रकृति में अपनी अभिन्नता का अनुभव करते हुए ही आज के कवि उसके रहस्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रकृति उन्हें रहस्यात्मक संकेत करती जान पड़ती है। प्रसाद को नदी से संकेत मिलते हैं। महादेवी वर्मा को प्रकृति द्वारा किसी का निमंत्रण मिलता है। पंत भी वसंत की

सुषमा में अनुभव करते हैं कि 'सौरभ के मिस' उसे कोई 'मौन संदेश' भेजता है, और निराला को यमुना की लहरों में 'अतीत के गौरव-गान' सुनाई पड़ते हैं। इस प्रकार के आध्यात्मिक वर्णन में कवि की अपनी भावना प्रगट होती है। प्रतीकों द्वारा ऐसे वर्णन करने की शैली का नाम ही छायावाद है।

प्रकृति का तीसरा उपयोग साम्य या तुलना के लिए हुआ है। प्रायः कवि प्राकृतिक रूपों की योजना किसी वस्तु, पुरुष अथवा ईश्वर का वर्णन करने के लिए करते हैं। निराला ने 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में इसी शैली का प्रयोग किया है। पंत ने प्रेमी की अनेक दशाओं की व्यंजना प्राकृतिक रूपों द्वारा की है। 'आँसू' में वे प्रेम के आरंभ को वसंत और अंत को ग्रीष्म की लू कहते हैं। इसी से प्रेमी के हर्ष और विषाद की व्यंजना हो जाती है। प्रसाद ने भी मिलन और विरह की दशाओं की व्याख्या प्रकृति से की है।

यही छायावाद का दूसरा पक्ष है।

कुछ कवियों ने प्रकृति के द्वारा दृष्टान्त अथवा उपदेश देने की पुरानी प्रणाली का अनुसरण भी किया है; जैसे पंत ने 'गुंजन' में।

बन की सूनी डालों पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

परन्तु इस प्रकार के उपदेशात्मक प्रकृति-वर्णन नवीन कविताओं में बहुत कम हैं।

इसमें संदेह नहीं कि आज के कवियों में प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम है और उन्होंने अपने प्रेम का परिचय भिन्न-भिन्न शैलियों में दिया है। छायावाद का कलापूर्ण उत्कर्ष इन्हीं शैलियों की आलंकारिकता का परिणाम है।

नवीन युग की शृंगारिक कविता के सम्बन्ध में पिछले प्रकरण में विस्तार-पूर्वक लिखा जा चुका है। हमने देखा है कि इस समय काव्य में अधिकांश स्वच्छंद प्रेम का चित्रण हो रहा है। कवि और कवयित्रियाँ

प्रेम

प्रेमभाव को प्रगट करने में कोई संकोच नहीं करतीं। उन में स्वच्छंदता, सचाई, मधुरता आदि गुण मिलते हैं। बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य का वर्णन अधिक होता है और यह वर्णन सौम्य, संयत तथा उदात्त रहता है। वासना का इसमें उद्रेक नहीं होता। कवियों को औचित्य और शिष्टता का बहुत ध्यान रहता है। यौवन और सौंदर्य का वर्णन भावपूर्ण होता है। इसमें संभोग-शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार की अधिकता होती

हैं। आज के कवियों की अधिकतर कविताओं में विवशता, संदेह, निराशा और दुःख की छाया स्पष्ट है। आह्लाद, स्फूर्ति और आनंद-भरे गीत बहुत कम हैं।

आधुनिक कविता में प्रेम का राज्य है। प्रकृति-वर्णन में अथवा राजनीति में, ईश-विनय में अथवा सौंदर्य-चित्रण में प्रेम और शृंगार अवश्य रहता है। अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनके दो-दो अर्थ निकाले जा सकते हैं—जो एक ओर ईश्वर के सम्बन्ध में और दूसरी ओर प्रियतम के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं, अथवा जो प्रकृति और प्रिया दोनों का एक साथ वर्णन करती हैं। प्रतीकवाद के कारण कुछ कविताओं में अस्पष्टता भी आ गई है जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। इतना याद रहे कि आज के शृंगारी काव्य ने प्रकृति, ईश्वर और पुरुष को एक जगह ला कर खड़ा किया है। इसी से इस में भ्रमात्मक 'वादों' की रमार हो गई है।

हिन्दी में धार्मिक काव्य का कभी अभाव नहीं रहा। धर्म साहित्य का एक आवश्यक उपादान है और ईश्वर धर्म का एक गूढ़तम विषय। आधुनिक काल की सामाजिक और राजनैतिक विषमताओं के कारण कवि ईश्वर

ईश्वर

की ओर पहले से अधिक उन्मुख हैं। भक्ति-काल में भी संत और वैष्णव कवियों ने राजनैतिक परिस्थितियों से घबरा कर उपासना और भक्ति की राह ली थी। आधुनिक प्रवृत्ति के और भी कई कारण हैं। प्रकृति-प्रेम की भावना इस युग के काव्य की प्रधान विशेषता है। प्रकृति के पीछे जो सत्ता काम करती है उस के ज्ञान की इच्छा होना स्वाभाविक ही है।

आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज और सनातनधर्म सभाओं के प्रचार से हिन्दुओं में जो धार्मिक जागृति उत्पन्न हुई है उसके फल-स्वरूप वेदों, दर्शनों, उपनिषदों और पुराणों के पढ़ने का चाव बढ़ने लगा है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की चर्चा फिर से चली है। कवियों ने भी इस अध्ययन और साधना में भाग लिया है और अपने-अपने अनुभवों की अभिव्यंजना नयी आलंकारिक शैली-द्वारा की है। इसी का नाम रहस्यवाद है। कुछ कवियों ने पुरानी भक्ति-कालीन परंपरा के अनुसार ईश्वर-भक्ति के गीत लिखे हैं, कुछ-एक ने दार्शनिक-सिद्धान्तों के आधार पर कविता रची है, और कुछ ने बौद्धमत के दुःखवाद की व्याख्या की है। इसका विस्तृत विवरण हम आगे देंगे। यहाँ इतना दिखाना अभीष्ट है कि प्राचीन भक्ति-भाव को नये-नये ढंगों से अभिव्यक्त करने का नाम ही रहस्यवाद है। साध्य वही है साधना में विविधता और विभिन्नता आ गई है। प्रकृति-वर्णन और प्रेमाभिव्यक्ति की जो नयी प्रणालियाँ चली हुई हैं उन्हीं के अनुरूप भक्ति-भावना भी प्रगट हुई है। वैसा ही आनन्द, उल्लास, औत्सुक्य, दुःख, विरह,

आत्मतत्व और शृंगार जो प्रकृति और प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में लक्षित होता है, भक्ति-काव्य में आकर रहस्यवाद का रूप धारण कर चुका है।

छायावाद

आधुनिक हिन्दी कविता में फूल का वर्णन तीन प्रकार से हुआ है। एक यों कि फूल की इतनी कलियाँ हैं, उसमें पराग है और वह ऐसा है, यह फल हल्का है, पवन के झकोरों से झूमता है इत्यादि—यह सर्वाङ्ग वर्णन इतिवृत्तात्मक कहलायेगा। दूसरे यों कि यह फूल हँसता है, पवन आती है तो उसे कहता है मुझे तेरे प्रेममय थपेड़ों से आनन्द मिलता है, रात की चाँदनी के प्रेमालिंगन से खिल उठता है, परन्तु प्रात होते ही विरह-वेदना से मुरझा जाता है—यह सप्राण वर्णन छायावाद कहलायेगा। तीसरे यह कि फूल में बैठा हुआ मेरा प्रियतम मुझे देख कर हँस रहा है, परन्तु मैं हूँ कि आँखें रखता हुआ भी उसके दर्शन नहीं पा सकता, उसकी हँसी मेरे कानों में गूँजती है और फिर मेरे भीतर से उसका शब्द उठता है परन्तु कान रखते हुए भी मैं उसे सुन नहीं पाता इत्यादि—यह है रहस्यवाद। किसी विषय की इतिवृत्तात्मक व्याख्या ज्ञान-विज्ञान के अन्तर्गत रहती है और स्थूल शरीर से सम्बद्ध होती है। उसका छायावाद भाव के अन्तर्गत होता है और सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखता है। आत्मा का आत्मा से सन्निवेश छायावाद कहलाता है, और आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्धों की चर्चा रहस्यवाद। विश्व की वस्तुओं में आत्मा की छाया देखना एवं मानव और मानवेतर जीवन में तादात्म्य पाना छायावाद है; परन्तु जिस संकुचित अर्थ में यह शब्द हमारे काव्य में प्रयुक्त हो रहा है उसके अनुसार प्रकृति के पदार्थों में केवल व्यक्तित्व आरोपण कर देने का नाम छायावाद नहीं है। छायावाद के साथ भाषा की लाक्षणिकता, भावों की सूक्ष्मता, प्रच्छन्नता और सांकेतिकता आदि कई बातें और भी हैं।

परिभाषा

प्रारम्भ में जब द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता (वस्तुवाद) से ऊब कर नवयुवक कवियों ने भावनामयी धारा को प्रवाहित किया तो तत्कालीन आलोचकों ने उपहास में उस को यह नाम दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वास्तविक संसार विचारमय संसार की छायामात्र ही है। जयशंकर प्रसाद ने बताया कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'छाया' का अर्थ है मोती की आभा। छायावादी काव्य भी मोती की आभा की तरह पवित्र, मृदुल और सूक्ष्म होता है। बात भी ठीक है कि छायावाद की कोमलता और स्वप्नमयता छाया के समान है। छायावाद विश्व की प्रत्येक वस्तु में आध्यात्मिकता और स्थूल में सूक्ष्म की

आभा देखता है। महादेवी वर्मा सर्वात्मवाद को छायावाद का मूल दर्शन मानती हैं। जयशंकर प्रसाद उसे बाह्य वर्णन से भिन्न वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति बताते हैं।

याद रहे कि छायावाद भारतीय साहित्य में एकदम नयी चीज नहीं है। वेदों के द्वारा दिया गया ऊषा और संध्या का सूक्ष्म व्यक्तित्व इसका प्राचीनतम उदाहरण है। उपनिषदों में स्थूलता का प्रत्याख्यान करके व्यापक सत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इधर हिन्दी-साहित्य में विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि की कविताओं में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। विद्यापति ने मालती और भँवर को लेकर उनमें प्रियतम प्रेयसी का व्यक्तित्व निरूपण किया है। कबीर की इन उक्तियों में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों हैं—

(१) समंदर लागी आग नदियाँ जल कोइला भई।
(२) काहे रे नलिनी ! तू कुम्हिलानी।
तेरी ही नालि सरोवर पानी।

सूर के बाल-वर्णन में और तुलसी के ऋतु-वर्णन में भी छाया का आभास प्राप्त होता है। जायसी ने पद्मावती की वृद्धावस्था और श्वेत बालों का चित्रण "भँवर छपान हंस प्रगट" कह कर किया है।

आधुनिक काल का छायावाद प्राच्य और पाश्चात्य एवं प्राचीन तथा नवीन सिद्धान्तों के मेल से खड़ा हुआ है। पाश्चात्य भौतिकवाद न अशांति का जो बवंडर चलाया तो कवि सूक्ष्मता तथा सूक्ष्मभावना में आत्मिक शांति का अनुभव करने लगे। जिस पश्चिम ने हमारे देश में 'स्वर्ण' की पूजा का प्रचार किया, उसी पश्चिम के प्रभाव से इस 'स्वर्ण' के विरुद्ध एक प्रकार का विद्रोह खड़ा हुआ। बंगाल में सर्वप्रथम इसका प्रचलन हुआ और रवीन्द्र ठाकुर की कृतियों से हिन्दी कवियों को भी प्रेरणा हुई। मैथिलीशरण गुप्त, भारतीय आत्मा और मुकुटधर पाण्डेय ने द्विवेदी-युग में बंगला-साहित्य का अनुसरण करते हुए इसका प्रचार किया। इसमें ईसाई संतों के छायाभास तथा योरपीय काव्य के प्रतीकवाद की शैलियों की छाप स्पष्ट है। कुछ दिनों तो अंग्रेज़ी और बंगला की पदावली का ज्यों का त्यों अनुवाद ही चलता रहा, पीछे कुछ स्वतन्त्र कृतियाँ सामने आने लगी। पहले प्रकृतिचित्रण में रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना-शैली में लाक्षणिक प्रतीकात्मकता, कल्पना में विशृंखलता और प्रेम-गान में मधुमयी विचित्रता ला देने का नाम छायावाद रहा; पीछे कुछ कवि इस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकल कर जीवन और जगत् के भिन्न-भिन्न पक्षों की ओर भी झुके और काव्यशैली में सरलता लाने के लिए प्रयत्नशील हुए।

इसमें सन्देह नहीं कि द्विवेदी-युग में हिन्दी कविता के विषय प्रधानतः इतिवृत्तात्मक थे, परन्तु उस काल में काव्यशैली और भाषा का परिष्करण इस सीमा तक हो गया था कि कवियों ने अब उसे अपनी मौलिक भावनाओं और आत्मा की गूढ़तम चेतनाओं को प्रगट करने में समर्थ पाया। कविता अन्तर्मुखी हो गई। द्विवेदी-युग की धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक कविताओं में जो मानवतावाद आ गया था उसी की भाव-भूमि पर छायावाद का हृदयपक्ष तय्यार हुआ। मानवतावाद में विश्व-प्रेम का जो सदेश है उसी के उल्लास में छायावादी कवि अपने आस-पास की वस्तुओं में प्रतिष्ठता चाहता है। वह जगत को मिथ्या नहीं समझता। छायावादी कवि सारे ससार से प्रेम करता है। वह भारतीय और अभारतीय सब में आत्मा देखता है। इन कवियों ने विश्व-प्रेम की वे भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं, जिन्हें किसी भी देश का प्राणी अपनी निजी भावनाएँ कह सकता है। प्रसाद की ये पक्तियाँ कोई भी देशप्रेमी अपने देश के सम्बन्ध में गा सकता है—

उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड़ निज प्यारा,
अरुण यह मधुमय देश हमारा।

छायावादी सभी संस्कृतियों का समन्वय चाहते हैं। वे मानव जाति के नाना भेदों-प्रभेदों को मिटाकर एक अन्तर्व्यापी सूत्र उपस्थित करते हैं।

सिद्धान्त रूप में समष्टिवादी रहते हुए भी छायावादी व्यवहार में व्यष्टिवादी हैं। आज व्यक्ति ही समाज का प्रतीक है। उसका सुख-दुःख समाज का सुख-दुःख है। व्यक्ति ही समाज है। आज कवि की भावधारा का केन्द्र वह स्वयं है। वह अपने सुख-दुःख, अपनी अभिज्ञता, अपनी अनुमति और अपनी कल्पना के माध्यम से विश्व-प्रेम अथवा विश्व-चेतना की अभिव्यक्ति करता है। नवीन काव्य में गीतियों की प्रचुरता का यही कारण है। इसी से कविता में अनेकरूपता, नवीनता, सरसता और (कुछ-कुछ) उच्छृङ्खलता आई है। कोई-कोई कवि लोगों की सामान्य अनुभूति से बहुत दूर जा पड़े हैं।

यह याद रहे कि छायावाद का मुख्य आलम्बन प्रकृति है। प्रकृति के प्रति कहीं विस्मय की भावना, कहीं शृंगार की और कहीं करुणा की भावना अभिव्यक्त की गई है।

हम यह मानने के लिए कभी तय्यार नहीं है कि छायावादी कविता समाज से दूर है। इसमें कोई सदेह नहीं कि कवि कभी-कभी जीवन की वास्तविकता से भाग कर कल्पित एकान्त में शरण लेना चाहता है। परन्तु इसका मूलाधार

वही असन्तोष, निराशा और दुःख है जो आज के जीवन में पाया जाता है। कभी-कभी वही कवि आशापूर्ण होकर भी बोल उठता है। पन्त लिखते हैं—

जग-जीवन उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे।

और

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन।

महादेवी की सहानुभूति "कह दे माँ क्या देखूं" इत्यादि पंक्तियो में प्रगट हुई है। निराला जी ने विधवा के प्रति सहानुभूति प्रगट करते हुए छायावाद के प्रगतिशील पक्ष को स्पष्ट किया है।

छायावाद में आशा भी है और निराशा भी—निराशा कुछ अधिक है। परन्तु कौन नहीं जानता कि आज भारतीय समाज के जीवन में निराशाएँ अधिक और आशाएँ बहुत कम है। कविता का समाज से अविच्छेद्य सम्बन्ध है और छायावादी कविता में भारतीयो के भावो का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व है। यह कविता परिस्थितियो से अनुप्रेरित हुई है। यदि समाज को ऊँचा उठाना ही साहित्य का काम है तो छायावाद में जीवमात्र की एकता का जो सन्देश है उससे भी इसका महत्व आँका जा सकता है। अशाति में शाति पाने की मनोवृत्ति भी इसकी महत्वपूर्ण देन है। अशाति और निराशा से अनेक छायावादी कवि घबरा उठे हैं। कुछ तो आत्मघात कर लेना चाहते हैं और व्यक्तित्व ही नष्ट कर देना चाहते हैं। इसी में उन्हें शाति की आशा मिलती है। कुछ एक हवाई महल बना कर उन्ही में आनन्द की सम्भावना चाहते हैं। प्रसाद और निराला दूसरे जगत में चले जाने की कामना करते हैं। साहित्यकार अपने वातावरण से ऊबकर किसी ऐसे एकान्त निर्जन स्थान में चले जाना चाहता है जहाँ उसे कुछ शाति मिल सके।

ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी...
तज कोलाहल की अवनी रे।

(प्रसाद)

पन्त तारों अथवा पत्तियों में अपने को खो देना चाहते हैं। छायावाद की प्रमुख विशेषताओं में सौंदर्य-भावना, प्रकृतिप्रियता, सुकुमारता, जीवन-दर्शन विशेषतः उल्लेखनीय है।

छायावाद में सबसे अधिक खटकने वाली और प्रधान विशेषता है इसकी अप्रासादिकता। इस का सम्बन्ध छायावाद के कलापक्ष (शैलीगत-स्वरूप) से है

जिस पर हम 'रहस्यवाद' की व्याख्या करने के पश्चात् विचार करेंगे।

रहस्यवाद

कुछ समालोचक छायावाद और रहस्यवाद को एक ही वस्तु समझते हैं। इस कारण से आधुनिक समीक्षा में अस्पष्टता और दुरूहता आ गई है। इन दोनों को अलग-अलग रखने से आधुनिक काव्य की विचारधारा को समझने में आराम रहता है। यह बतला दिया गया है कि आत्मा और (दूसरे) आत्मा की चर्चा छायावाद के अन्तर्गत है और आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की चर्चा रहस्यवाद के अन्तर्गत है। रहस्य का अर्थ है गुप्त अथवा अव्यक्त। इस गुप्त, अव्यक्त और प्रच्छन्न (परमात्मा, अथवा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध) को व्यक्त करने की काव्य-प्रवृत्ति का नाम रहस्यवाद है। डा० केसरीनारायण शुक्ल ठीक कहते हैं कि ब्रह्म या ईश्वर से आत्मा के ऐक्य या सान्निध्य की धारणा 'रहस्यवाद' कहलाती है। प्रसाद के शब्दों में "काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है"।

अव्यक्त को व्यक्त करने की इच्छा, गुप्त की जिज्ञासा, आत्मा और परमात्मा और प्रकृति के रहस्यों को देखने का कुतूहल आदि-काल से चला आता है। वेद के 'ऊषा' और 'नासदीय' सूक्तों में, अधिकांश उपनिषदों में, गीता के विभूति-योग अध्याय में, शैवशाक्तादि आगमों में, 'सौंदर्य-लहरी' आदि रहस्य-काव्यों में, शंकराचार्य के मायावाद में, सहजानंद के उपासक सागरप्पा, कन्हप्पा आदि सिद्धों की रचनाओं में, और रामानन्द के निर्गुणवाद में रहस्यपूर्ण उक्तियों और रहस्यात्मक सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है।

इधर हिन्दी में कबीर, जायसी, मीरा आदि में रहस्यवाद का 'माधुर्यभाव' मिलता है। कभी तो परमात्मा को प्रेमी और अपने को प्रेमिका, कभी उसे प्रेमिका और अपने को प्रेमी, कभी उसे स्वामी और अपने को सेवक, कभी उसे पिता-माता और अपने को बालक, कभी उसे जगन्नियंता और अपने को क्षुद्र जीव मान कर उन्होंने प्रेम और विरह की अलौकिक अभिव्यंजना की है। सब ने ईश्वर के प्रति प्रेम की भावना प्रगट करने की चेष्टा की है। चूंकि ईश्वर निराकार और निर्गुण है, इस लिए उसका आभास देने के लिए संतों ने ज्ञानमार्ग का आश्रय लिया है और सूफियों ने प्रेममार्ग का। तुलसी और सूर में भी रहस्यात्मक संकेत मिलते हैं।

आधुनिक रहस्यवाद पर उपनिषदों और कबीर आदि का गहरा प्रभाव पड़ा है। परन्तु आज का रहस्यवाद भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों की दृष्टि से मध्यकाल के रहस्यवाद से बहुत कुछ भिन्न है। वैसे तो आधुनिक हिन्दी काव्य में

अनंत शक्ति के प्रति आकर्षण, आश्चर्य और विस्मय, मिलन की तड़प, जीवन और भौतिकता की विस्मृति, परमात्मा के सहवास का अनुभव, प्रेम की एकाग्रता, और तल्लीनता, आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता और एकरूपता, उन्माद, श्रद्धा, भय, आदि परिस्थितियों का वैसा ही वर्णन मिलता है जैसा धार्मिककालीन कविताओं में। परन्तु इनकी अभिव्यजना-शैली में बहुत अतर है। कबीर आदि संतों और भक्तों ने अपना अनुभव प्रायः सीधे-सादे ढग पर प्रगट किया है—आज के कवि प्रकृति के पीछे उस परोक्ष सत्ता का अनुभव करते हैं और प्रतीकों द्वारा उसकी अभिव्यजना करते हैं। उनका रहस्यवाद संतोषमय है, इनका असंतोषमय। कबीर विशेषतया चिन्तनशील और मस्तिष्क-प्रधान हैं, आधुनिक कवि भावनाशील और हृदय-प्रधान हैं। कबीर आदि प्राचीन कवियों में अनुभूति की प्रधानता है, प्रसादादि में कल्पना की प्रधानता है। प्राचीन काल में हठयोग, यम-नियम, नाम-स्मरण आदि की साधना थी, आधुनिक काल में विरह के दुःख की साधना है। विरह-वेदना में भी कल्पना ही है। प्राचीन काल के रहस्यवाद में भारतीयता है, आधुनिक रहस्यवाद पश्चिमी रीति से प्रभावित है।

आधुनिक काव्य में रहस्यवादी चिंतन की अनेक शैलियाँ हैं, जैसे—

(क) आध्यात्मिक रहस्यवाद,

(ख) दार्शनिक रहस्यवाद,

(ग) धार्मिक रहस्यवाद,

(घ) प्रकृति-संबन्धी रहस्यवाद।

आध्यात्मिक रहस्यवादी ईश्वर के अपरोक्ष साक्षात्कार का प्रयत्न करता है और प्रकृति में व्याप्त उस एक दिव्य सत्ता को देखने की चेष्टा करता है। भारतीय आत्मा, वियोगी हरि, पत, नेपाली और निराला मुख्यतः इसी कोटि के कवि हैं। दूसरी कोटि में गुप्त, प्रसाद, निराला, उदयशंकर भट्ट आदि दार्शनिक कवि हैं। इनका रहस्यवाद उपनिषदों अथवा बौद्ध शास्त्रों के दार्शनिक सिद्धांतों के आधार पर है। गुप्त और निराला में उपनिषदों की छाप है और प्रसाद तथा सुमन में बौद्ध सिद्धांतों का दुःखवाद। धार्मिक उपासना-शैली का विशेष कवि तो आज कोई नहीं है लेकिन मीरा की भावना महादेवी, महतो वियोगी तथा सियारामशरण गुप्त की कई कविताओं में मिलती है। पन्त के 'परिवर्तन' में हमें प्रकृति-संबन्धी रहस्यवाद की झलक मिलती है।

अधिकतर कवियों में इन सभी सिद्धांतों का आविर्भाव और अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का परिचय मिलता है। महादेवी वर्मा इस सामजस्य और स्वाभाविक आत्मचिंतन की प्रमुख प्रतिनिधि हैं। उन्होंने उपनिषदों के दिव्य

दर्शन, महात्मा बुद्ध की शिक्षा, सतों की वाणी, प्राचीन और अर्वाचीन कला-सामग्री, पूर्वी और पश्चिमी शैली को मिलाकर हिन्दी-साहित्य को एक अपूर्व दान दिया है। उन्ही की शैली का अनुकरण बहुत से कवियों ने किया है।

रहस्यवादी काव्य की विशेषताएँ है—

(१) 'उस' अज्ञात, रहस्यमय के प्रति कुतूहल और जिज्ञासा, जैसे—

मैं का जानूं राम को, नैना कबों न दीठ। (कबीर)

है अनन्त रमणीय कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो, क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ॥
(प्रसाद–कामायनी)

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
(महादेवी वर्मा).

(२) 'उस कौन' के दर्शन की चाह और तड़प—

नयन श्रवण-मय श्रवण नयनमय,
आज हो रही कैसी उलझन,
क्या प्रिय आने वाले हैं ?
(महादेवी वर्मा)

(३) विरह और करुणा—

नित जलता रहने दो तिल-तिल,
अपनी ज्वाला में उर मेरा।
(महादेवी वर्मा).

(४) 'उस कौन' से एकाकारिता—

पट खुल गये और दोनो ही हुए एक अन्तर्पट ओट।

छायावाद और रहस्यवाद का कलापक्ष

छायावाद और रहस्यवाद का कलापक्ष अत्यत जटिल और पहले से बहुत भिन्न है। इसकी नूतनता को देख कर कई लोगों को ऐसा जान पड़ता है कि छायावाद है ही केवल अभिव्यजना-विधान। इस में सदेह नही कि छायावाद में वार्वैचित्र्य का प्राधान्य है। हमारा तो विचार है कि इसकी नवीनता इसी बात में है कि इस ने द्विवेदी युग की भावना पर कला का एक बाना ओढ़ा कर अपना एक स्वतत्र साहित्यिक राज्य स्थापित किया है। प्रसाद ने ठीक कहा है कि "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा

उपचार, वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर् स्पर्श करके भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्तिछाया कान्तिमयी होती है।" परन्तु इतना याद रहे कि इस काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, विरोध श्लेष आदि की योजना भावों की तीव्र अनुभूति कराने के उद्देश्य से हुई है। यमक और अनुप्रास का प्रयोग भी प्राचीन कविता की सी कलाबाजी दिखाने के उद्देश्य से नहीं हुआ है। प्राचीन काव्य में भावों की अभिव्यक्ति प्रायः अभिधा-द्वारा ही होती थी, परन्तु नवीन काव्य में लाक्षणिकता का आश्रय लिया गया है जिससे भाव अधिक व्यंजक हुए हैं। साथ ही प्रतीकों द्वारा उन्हें स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

हमने देखा है कि द्विवेदी-काल में स्वयं द्विवेदी जी संस्कृत की कोमलकांत-पदावली का प्रयोग चाहते थे। हरिऔध और गुप्त के अतिरिक्त दूसरे कवि जो खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों में कविता करते थे खड़ी बोली में भी व्रजभाषा की रसात्मकता, मार्मिकता और ललित शैली लाना चाहते थे। बंगला से प्रभावित होकर उन्होंने उस भाषा से लाक्षणिक और व्यंजक प्रयोग ग्रहण किये। अंग्रेजी कवियों का चित्रमय वाक्य-विन्यास भी अनुवादों-द्वारा आने लगा। मुकुटधर और बदरीनाथ भट्ट ने इस अनूठी शैली में अनेक गीत लिखे। धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ा। धर्ममूलक शृङ्गारिक, वर्णनात्मक सब प्रकार के विषयों में इसका प्रयोग होने लगा और एक क्षेत्र के वाक्य-विन्यास दूसरे क्षेत्र में आने लगे। इंगित-द्वारा संदेश अभिसार, अनंत प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँख-मिचौनी करना, मद में झूमना आदि का व्यवहार शृंगारी कविता के साथ-साथ प्रकृति-चित्रण और ईश्वर-भक्ति में भी होने लगा। इसके साथ ही उर्दू के शराब, सुराही, प्याला, साकी आदि भी इन क्षेत्रों में घुस आये। 'कला कला के लिए' है—इसका प्रचार भी हुआ। यह समझा जाने लगा कि काव्य का लक्ष्य सौंदर्य की सृष्टि करना है—'काव्य में वस्तु या वर्ण्य विषय कुछ नहीं, जो कुछ है वह अभिव्यंजना के ढंग का अनूठापन है'।

वर्तमान काव्य में उपमान-योजना प्रभाव-साम्य के आधार पर हुई है। प्राचीन कवियों को रूप-साम्य और धर्म-साम्य का विचार रहता था। आज मनोवृत्ति बदल गई है। नायिका और सिंह की कटि में रूप साम्य प्रतीक-योजना तो है परन्तु प्रभाव साम्य नहीं है। आधुनिक कवि इस प्रकार का साम्य ग्रहण नहीं करते। आज चन्द्रिका सुख के लिए, अंधकार दुःख के लिए, मधुमास आनन्द के लिए, पतझर विषाद के लिए, मोती शुभ्रता के लिए, मधुप प्रेमी के लिए, कलिका प्रेमिका के लिए, झंझा मानसिक आकुलता के लिए, और लहरें भावों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जिस वस्तु के प्रति

हमारे हृदय में उसकी विशेषता को देख कर जो धारणा बनती है, उसी का प्रयोग कविता में प्रतीकवत् होता है। चन्द्रिका के द्वारा हमारे हृदय में सुख का ही सचार होता है और अधकार के द्वारा दुःख का। प्रभात को देखकर आनंद का उद्रेक होता है। ऊषा स्फूर्ति, जीवन के आरभ और सुख का प्रतीक मानी गई है। सध्या जीवन के अवसान, एकात और विषाद की द्योतक है। स्वर्ण मे दीप्ति और काति की भावना है। प्रसाद ने निम्नलिखित पक्तियो में झझा को सघर्ष के लिए, बिजली को वेदना के लिए, और नीरदमाला को अश्रुओ के लिए व्यवहृत किया है—

झझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरदमाला।
पाकर इस शून्य हृदय को सब ने आ डेरा डाला।।

पत ने गगाजल का प्रयोग पवित्रता के लिए, मदिरा का कलुषता के लिए किया है—

हुई मुझको ही मदिरा आज हाय क्या गगाजल की धार।

निराला की उक्ति 'वहाँ नयनो मे केवल प्रात, चन्द्र-ज्योत्स्ना मे केवल शात' में प्रात स्फूर्ति का और चन्द्रज्योत्स्ना शाति का प्रतीक है।

'शूलो का दर्शन भी हो, कलियो का चुम्बन भी हो' में महादेवी ने शूलो को दुःख का और कलियो को सुख का द्योतक माना है। इनके निम्नलिखित गीत में कठोरता, करुणा, शीतलता, मादकता, पीडा, असतोष, क्षणभगुरता और अविच्छिन्नता के लिए कितने सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग मिलते हैं—

दृगो में सोते है अज्ञात
निदाघो के दिन, पावस रात,
सुधा का मधु, हाला का राग,
व्यथा के घन, अतृप्ति की आग,
छिपे मानस में पवि-नवनीत
निमिष की गति-निर्झर के गीत।

निम्नलिखित प्रतीको के अर्थ देखिए—

समुद्र, निर्झर, मणि, दीपक = आत्मा
पथिक, पक्षी = साधक
जुगनू = बुद्धि
अरुण-किरण = प्रेम
मधुप = प्रेमी
यूथी, कली = प्रेमिका
कुन्दकली, नलिनी, मल्लिका = प्रेमिका

मधु=प्रेम-रस
मकरंद, सौरभ=इच्छा
रश्मि=आशा, ज्ञान
तम=निराशा, अज्ञान
सागर=संसार
तरी=जीवन
पतवार=साहस
जलचरवृंद=कुवासनाएँ
ग्रीष्म=रोष
वर्षा=करुणा
शिशिर=जड़ता
पतझड़=दुःख
वसन्त=चेतना, आनन्द

प्रतीक-योजना रहस्यवादी-छायावादी काव्य की कुंजी है।

प्रतीकों के व्यवहार में दो-तीन बातों का विचार रखना आवश्यक होता है। प्रथम, प्रतीकों में मूलवस्तु की किसी स्थितिविशेष का साम्य होना चाहिये। रहस्यवादी दाम्पत्य-प्रेम द्वारा अपनी रहस्यात्मक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति करते हैं। कवि को अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु, प्रकृति और आचार-विचार के अनुरूप ही प्रतीकों की योजना करनी चाहिये। योरप में ग्रीष्म उल्लास का प्रतीक हो सकता है, परन्तु हमारे देश में वह नरक की ज्वाला का प्रतीक है। यही कारण है कि बच्चन के साकी और प्याला हमारे पाठकों के लिए अर्थहीन हैं। प्रतीकों की सार्वभौमिक भावना को ग्रहण करना चाहिये। व्यक्तिगत प्रतीक जिन कवियों ने प्रयुक्त किये हैं उनकी रचनाओं में अस्पष्टता आ गई है।

आधुनिक प्रतीकों में कुछ पुराने हैं कुछ नये। सूर्य, चन्द्र, उषा, प्रभात, बिजली, इन्द्रधनुष, ज्योत्स्ना, किरण, तिमिर, लहर, हिमकण, समीर, सुरभि आदि प्रकृति से लिये हुए प्रचलित अप्रस्तुतों के अतिरिक्त कल्पना, स्मृति, विस्मृति, मूर्च्छना, मादकता, लालसा, आकांक्षा, चाह, लज्जा, सुकुमारता आदि नवीन अप्रस्तुत का प्रयोग भी हुआ है। इनकी संख्या बहुत अधिक है।

छायावाद-रहस्यवाद में एक ओर सूक्ष्म भावों की व्यंजना मूर्त वस्तुओं के व्यापारों द्वारा की जाती है और दूसरी ओर मूर्त को सूक्ष्म भाव के रूप में परिवर्तित करके कहा जाता है। महादेवी वर्मा सन्ध्या के माथे पर सुहाग-रेखा लगा कर उसे हँसता हुआ देखती हैं तो निराला विधवा को 'पूजा सी', तांडव

की स्मृति-रेखा सी' कहकर उसकी करुणा और भयंकरता का वर्णन करते हैं। स्थूल के लिए स्थूल प्रतीक भी ग्रहण किये जाते हैं। नासिका के लिए शुक, मुख के लिए चन्द्रमा, वेणी के लिए सर्प, नेत्र के लिए कमल अथवा मीन का प्रयोग बहुत दिनों से होता आया है, किन्तु छायावाद में इनका लाक्षणिक प्रयोग बहुत अधिक हुआ है।

वर्तमान कवि भाषा का शब्द-शोधन और शब्द-चयन अधिकारपूर्ण सावधानी से कर रहे हैं। अच्छे कवि तुक मिलाने के लिए शब्दों की तोड़-मरोड़ नहीं करते। हां, जब भाषा भावों का साथ नहीं देती तो वे नये शब्द गढ़ लेते हैं। संस्कृत पदावली की भरमार से इस कविता में मधुरता और तड़क-भड़क तो अवश्य है परन्तु इस में प्रवाह नहीं है। अंग्रेजी मुहावरे भी नहीं सजे। 'प्रजात नयन', 'नये जीवन का पहिला पृष्ठ देवि तुमने उलटा है आज' आदि प्रयोग बड़े न्यारे-न्यारे लग रहे हैं। अरबी-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं परन्तु वे छायावाद की प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। हर्ष की बात है कि कुछ वर्षों से भाषा को सरल, व्याकरण-संगत और शुद्ध बनाने का प्रयत्न हो रहा है और खड़ीबोली का अपना रूप निखर रहा है।

प्रक्रिया

छायावाद-रहस्यवाद के कलापक्ष में लक्षणा के भिन्न-भिन्न प्रयोगों का उपयोग भी हुआ है। कार्य-कारण लक्षणा, उपादान लक्षणा, आधार आधेय लक्षणा और व्यंग्य-व्यंजक लक्षणा के नमूने प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में मिलते हैं।

अलंकार-योजना में पुराने अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी के दो नये अलंकार (मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय) भी अपनाये गये हैं। प्रात, संध्या, झंझा, बादल, सूर्य, चन्द्रमा, मृत्यु आदि में जो मानवी भावनाओं का आरोपण किया गया है उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। विशेषण-विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है उसे वहाँ से हटा कर लक्षणा द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पन्त ने बच्चों के 'तुतले भय' का प्रयोग उनकी तुतली बोली में व्यंजित भय के लिए किया है। द्विज ने भूखे भिखारी की झोली की जगह 'भूखी झोली' कहा है।

छायावाद का गीति-काव्य छंद और संगीत की दृष्टि से उच्च कोटि का है। इस में प्राचीन छंदों का उपयोग भी हुआ है और नवीन छंदों का निर्माण भी किया गया है। मुक्त छंद और अतुकांत कविताएँ भी लिखी गई हैं और भिन्नतुकांत कविता के अतिरिक्त गद्य पद्य भी लिखे गये हैं—इन्हें 'रबड़' छंद कहा गया है। कहीं-कहीं कविता गद्य के निकटतम आ गई है। प्रायः कवियों

ने अप्रचलित छदो, लोकगीतों के छंदो का प्रयोग किया है, कुछ-एक ने दो अथवा तीन छदो के मेल से नये छंद की सयोजना भी की है। कुछ ने उर्दू छदो का प्रयोग भी किया है। पुराने छदो का परिमार्जन भी किया गया है।

छंद की अपेक्षा सगीत और लय का इस कविता में अधिक ध्यान रखा गया है। इस में कोई सन्देह नही कि छायावाद-रहस्यवाद अपने युग की एक रुढि बन गया। शब्दाडम्बर और उक्ति-चमत्कार पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। प्रकृति और 'कौन' दो ही विषय रह गये। हमारी कविता जीवन से बहुत दूर हो गई। 'निराशा' और 'आँसू' हमारे गले का हार हो गये। काव्य में एकरसता भर गई और 'वाद' के रूप में इसका प्रभाव धीरे-धीरे शिथिल हो गया।

छायावाद और रहस्यवाद पर बीसियो काव्यग्रथ मिलते है। सन् १९२० और १९३५ के बीच मे जो कविताएं लिखी गई उनके प्रधान विषय यही रहे हैं। हम केवल कुछ-एक के नाम देना पर्याप्त समझते है। इन ग्रन्थो प्रमुख रचनाएं में भी सभी कविताएँ इस विषय पर नही है।

मैथिलीशरण गुप्त—'झकार', 'द्वापर'।

सियारामशरण गुप्त—'दूर्वादल', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'आनन्द-सग्रह'।

'भारतीय आत्मा'—'सीमा', 'असीमा', 'व्यक्त', 'अव्यक्त', 'शेष', 'अशेष', 'जीवात्मा', 'परमात्मा', 'लूंगी दर्पण छीन', 'स्मृति के मधुर वसन्त', 'खीझमयी मनुहार', 'आँसू' आदि कविताएँ।

जयशंकर प्रसाद—'प्रेमपथिक', 'लहर', 'कामायनी', 'झरना', 'आँसू'।

रायकृष्णदास—'भावुक' में 'परिग्रह', 'सम्बन्ध', 'सीप', 'खुला द्वार' आदि कविताएँ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'ग्रन्थि'।

सुमित्रानन्दन पन्त—'पल्लव', 'वीणा', 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' आदि।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द—'त्रिलोचन', 'विश्वरूप', 'महामृत्यु', 'त्रिखर भाव', 'विश्व-सुन्दरी', आदि कविताएँ।

मोहनलाल महतो वियोगी—'निर्माल्य', 'एकतारा', 'कल्पना'।

महादेवी वर्मा—'नीहार', 'रश्मि', 'सान्ध्यगीत', 'नीरजा'।

भगवतीचरण वर्मा—'मधुकण', 'प्रेम-संगीत'।

रामकुमार वर्मा—'अभिशाप', 'अञ्जलि', 'रूपराशि', 'निशीथ', 'चित्ररेखा', 'चन्द्रकिरण'।

सुभद्राकुमारी चौहान—'मुकुल', 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी'।

रामेश्वर शुक्ल अञ्चल—'मधूलिका', 'वर्षा त के बादल'।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'—'अनुभूति'।

उदयशंकर भट्ट—'विसर्जन', 'राका', 'मानसी' आदि।

हरिकृष्ण प्रेमी—'आँखो में', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पथ पर'।

उदाहरण नीचे प्रकृति-चित्रण, प्रेम, रहस्य, और छाया-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न शैलियों पर लिखी गई कविताओ के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। इससे इस विषय पर और भी प्रकाश पड़ेगा।

(१)

पावस-ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।

(पन्त—उच्छ्वास)

पन्त जी प्रकृति के चित्रकार हैं। आप के प्रकृति-चित्रण में उल्लास, आनन्द विस्मय और कल्पना की ऊँची उड़ान तथा अनुभूति की गहराई रहती है। प्रकृति के जितने चित्रात्मक दृश्य आपकी कविता में हैं उतने हिन्दी के किसी कलाकार में नहीं मिलते। प्रकृति के रूप-चित्रण में आप अद्वितीय हैं। आप की भाषा मधुर और अपेक्षाकृत सरल होती है।

(२)

फूलों पर मधुपों का गुंजन, फुल-चुगी का मंजुल रुन-झुन।
सुग्गों का फल खाना चुन-चुन, यह सब वन में लख-लख सुन-सुन॥
कैसा मन जो उठता न पोल, रे पक्षी मंजुल बोल बोल।
मन बैठे नीड़ में डालों पर, सुहला-सुहला चोंचों मे पर॥

गदगद होकर आँसू भर-भर, कुछ गीत न गाया रे क्षण भर।
तो इस जीवन का कुछ न मोल, रे पंछी मंजुल बोल बोल ॥
(नेपाली—उमंग)

नेपाली के प्राकृतिक चित्रणों में भी बड़ा आनन्द मिलता है। आप उन थोड़े से कवियों में हैं जो अब भी प्रकृति के चित्रात्मक और उल्लासपूर्ण वर्णन उपस्थित करके पाठकों को कविता का रसास्वादन कराते हैं। आप ने छायावाद, शृंगारी और प्रगतिशील कविताएँ भी लिखी हैं। उनमें किसी एक विशेष प्रवृत्ति के लिए मोह नहीं है।

(३)

धधकती है जलदों से ज्वाल, बन गया नीलम व्योम प्रवाल।
आज सोने का सांध्यकाल, जल रहा जतुगृह सा विकराल॥
(पंत—पल्लव)

यह पद्य उस शैली का उदाहरण है जिसमें प्रकृति का चित्रण कवि की मनःस्थिति के अनुसार होता है। इस प्रकार के संवेदनात्मक वर्णन पंत की कृतियों में बहुत मिलते हैं।

(४)

यमुने ! तेरी लहरों में किन अधरों की आकुल तान,
पथिक-प्रिया सी जगा रही है, किस अतीत के गौरव-गान।
(निराला)

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास;
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु गंभीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।
(निराला—संध्या-सुन्दरी)

निराला और पंत इस युग की सभी काव्य-प्रवृत्तियों का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं। निराला जी प्रकृति के आध्यात्मिक पक्ष के चितेरे हैं। सौंदर्य-पिपासा, अनुभूति की गहराई, भाषा में ओज और संगीत आदि गुण आपकी अनेक कविताओं में मिलते हैं। निराला के पांडित्य और पंत की कला पर अधिकांश आलोचक मुग्ध हैं।

(५)

शशिमुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए,
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।
बस गई एक बसती है, स्मृतियों की इस हृदय में,
नक्षत्र-लोक फैला है मेरे इस नील-निलय में।

(प्रसाद—आंसू)

प्रकृति में मानव-भावनाओं और मानव में प्रकृति के दृश्यों की योजना के लिए प्रसाद प्रसिद्ध हैं।

(६)

देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने, सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन। (पंत—मौन निमंत्रण)

पंत ने प्रकृति के चित्रात्मक और संवेदनात्मक दोनों प्रकार के चित्र उपस्थित किये हैं। प्रकृति में आपको "मौन निमंत्रण" भी मिले हैं।

प्रेम

(७)

तुम कनक-किरन के अंतराल में, लुक-छिप कर चलते हो क्यों?
नतमस्तक गर्व वहन करते, यौवन के धन रसकन ढरते।
अधरों के मधुर कगारों में, कल-कल ध्वनि की गुंजारों में,
मधु-सरिता सी यह हँसी तरल, अपनी पीते रहते हो क्यों!

(प्रसाद—चन्द्रगुप्त)

प्रसाद जी आधुनिक शैली के एक श्रेष्ठ कलाकार हुए हैं। रामनाथ सुमन के शब्दों में "इस कवि में जो मस्ती है, भावना एवं अनुभूति की जो मृदुता है और मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति-काव्य की रचना के अत्यंत उपयुक्त थी।. गीति-काव्य के लिए कवि में सौंदर्य-वृत्ति होनी चाहिए, वह कवि प्रसाद में ओतप्रोत थी। इस प्रकार के काव्य के लिए स्वानुभूति दूसरा अनिवार्य गुण है, जिस की मात्रा 'प्रसाद' में पर्याप्त थी।" प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के उपासक थे। उनकी प्रेम-कविताओं में अनुभूति और कल्पना का परिचय मिलता है। 'प्रेम की पीर' का सफल और प्रभावपूर्ण वर्णन करने वालों में प्रसाद बहुत प्रसिद्ध हैं।

(८)

ठहर जाओ, घड़ी भर और
तुमको देख लें आँखें,
तुम्हारे रूप का मित आवरण
कितना मुझे शीतल,
तुम्हारे कंठ की मधु बांसुरी
जल धार सी चंचल,
तुम्हारी चितवनों की छांह
मेरी आत्मा उज्ज्वल,
उलझनी फड़फड़ाती प्राण-
पंछी की तरुण पांखें।

(रामेश्वर शुक्ल 'अंचल')

अंचल जी की कविताओं में संघर्ष कम और प्रेम की कोमल तथा प्रवाह-स्निग्ध अभिव्यक्ति अधिक है। इनमें प्रेम के शीतल और मंद प्रवाह की प्रचुरता है और उत्तेजित अथवा भ्रांत प्रेम की कमी। आपको नेत्र-प्रेम का उपासक कहा गया है। कुछ दिन से आप प्रगतिवाद की ओर आकर्षित हुए हैं। नवयुवक कवियों में आप ने अपना स्थान निश्चित कर लिया है।

(९)

यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ, न मैं असहाय या निरुपाय होता।
व्यर्थ है पर स्वप्न यह—"फिर भी मिलेंगे।"
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आह, अंतिम रात वह! बैठी रही तुम पास मेरे,
शीश कंधे पर धरे, घन कुंतलों से गात घेरे।
क्षीण स्वर में यों कहा था—"कब मिलेंगे।
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे।"

(नरेन्द्र शर्मा—कब मिलेंगे।)

शर्मा जी की कविताओं में लौकिक प्रेम और यथार्थवाद दोनों की अभिव्यक्ता है। संयोग और वियोग-शृंगार, प्रकृति-प्रेम, समाजसुधार और देशभक्ति आपकी रचनाओं के विषय हैं। इनमें प्रेम के गीत अधिक मधुर, व्यंजक और मौलिक बन पड़े हैं।

वेदना

(१०)

मैं कई बार तो गिर पड़ा,
गिर-गिर कर फिर हो गया खड़ा,
फिर लगा हिचकियों का झटका, टूटा धीरज का बंध कड़ा ।
अब तो प्रवाह ने लिया घेर, टुक रो लेने दो जरा देर ।।
मानस-दिग्मंडल शुभ्र गिरा,
काले मेघों से आज घिरा ।
अंधियारी छाई हो तल पर, नाटक का परदा आन गिरा ।
सब राग-रंग हो गये ढेर, टुक रो लेने दो जरा देर ।।

(बालकृष्ण शर्मा नवीन—छोड़ो न)

नवीन ने आजकल की सभी शैलियो पर सुन्दर रचनाएँ की हैं । इनकी प्रणय-सबन्धी रचनाओं में प्रेम, उन्माद और वेदना का सम्मिश्रण है । इस प्रकार की कविताएँ कुछ लम्बी है, परन्तु इनका मार्मिक प्रभाव भावुक पाठको के हृदय पर निरन्तर रहता है । इनकी भाषा शैली बडी उच्छृंखल और अटपटी है । उर्दू और ब्रजभाषा के अतिरिक्त प्रातीय शब्दो का प्रयोग भी इन्होने किया है । शब्दो को मोड़ा-तोडा भी है । प्रारंभ में इनकी कविता सूक्ति-प्रधान थी, अब सगीत-प्रधान हुआ करती है । नवीन किसी वाद के वश में होकर कविता नही कहते । वे अनु भूति-प्र ान कवि हैं ।

(११)

हास्य कहाँ है ? उसमें भी है
रोदन का परिणाम;
प्रेम क ह ? घृणा उसी में
करती विश्राम ।
दया कहाँ है ; दूषित उसको
करता रहता रोष;
पुण्य कहाँ है ? उसमें भी तो
छिपा हुआ है दोष ।
घूल हाय ! बनने ही को
खिलता है फूल अनूप ;
यह विकास है मुरझा जाने
ही का पहला रूप ।

(रामकुमार—प्रभात)

डा० वर्मा की कविता में वैराग्य और निराशा भरी है। हास्य में रुदन, प्रेम में घृणा, दया में रोष, पुण्य में पाप आदि देख कर आप उदास रहते हैं। इनकी कविता की विशेषताएँ हैं प्रतीक-चमत्कार, ऊँची कल्पना और वेदना की अद्भुत अभिव्यक्ति।

(१२)

वेदना ! कैसा करुण उद्गार है ?
वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना।

(निराला—ग्रन्थि)

इस प्रकार की वेदना निराला के अनुभूति-पोषित काव्य की परिचायक है। इनके गीतों में व्यथा के साथ भाव, अलकार, संगीत और माधुर्य भरे हैं। इनकी शैली पर बंगला-कवियो की छाया है इसमें सस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कुछ समय से आप उर्दू-शैली के प्रयोग भी कर रहे हैं। अनेकरूपता और स्वाधीनता आप की रचनाओ की विशेषता हैं।

(१३)

मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी हृदय दिखाने आई हूँ,
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ।
चरणों पर अर्पण है, उसको चाहो तो स्वीकार करो,
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो।

(सुभद्राकुमारी चौहान)

सुभद्राकुमारी के काव्य-विषय इस लोक से सबन्ध रखते हैं। आपके प्रेम में लौकिक और अलौकिक दोनों झाकियाँ मिल जाती हैं, परन्तु आप को क्षितिज के उस पार के अदृष्ट प्रियतम का विशेष ोह नही था। देशभक्ति, वात्सल्य और प्रेम आप की रचनाओ के प्रधान विषय हैं। आप की भाषा मधुर और सरल हैं।

रहस्यवाद

(१४)

किन विगड़ी घड़ियो में झांका, तुझे झांकना पाप हुआ,
आग लगे वरदान निगोड़ा मुझ पर आकर शाप हुआ,
जांच हुई नभ से भूमण्डल तक का व्यापक माप हुआ,
कितनी बार समाकर भी छोटा हूँ यह संताप हुआ,

अरे अशेष ! शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा,
आ मेरे आराध्य खिला लूं, मैं भी तुझे खिलौना सा।

(माखनलाल चतुर्वेदी)

माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में देश-भक्ति, प्रेम, प्रकृति-चित्रण, रहस्यवाद, सब कुछ है। इनमें अनुभूति का अंश बहुत अधिक है। आप का रहस्यवाद भक्ति-सिद्धांत के आधार पर प्रतिष्ठित है। आप की कविता में भावुकता और सूक्तियों की प्रधानता रहती है। आपको हिन्दी में उर्दू-काव्यशैली का प्रतिनिधि कहा जाता है।

(१५)

भरा नयनों में मन में रूप,
किसी छलिया का अमल अनूप।
जल, थल, मारुत, व्योम में जो छाया है सब ओर,
खोज-खोज कर खो गई मैं पागल प्रेम विभोर।
भाग से भरा हुआ यह कूप,
भरा नयनों में मन में रूप।
धमनी की तंत्री बजी, तू रहा लगाये कान,
बलिहारी मैं, कौन तू है मेरा जीवन प्रान।
खेलता जैसे छाया धूप।
भरा नयनों में मन में रूप॥

(प्रसाद)

प्रसाद सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि थे। ब्रह्म की खोज में जो अनुभूति आप को प्राप्त हुई उसका दार्शनिक वर्णन आपने अत्यन्त कलापूर्ण शैली में किया है। इसका प्रभाव आधुनिक काल की कविता पर बहुत गहरा पड़ा है। शिष्टता, अलौकिक लावण्य, कलापूर्ण अप्रस्तुत-विधान, भाषा की प्रौढ़ता आदि आपकी कविताओं के विशेष गुण हैं। आपने नारी, पुरुष, बालक, वृद्ध, राजा, रंक, भले-बुरे सब का जीवन अंकित किया है। आपने प्राचीन संस्कृतियों में समन्वय की भावना उपस्थित की है।

(१६)

फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी
देख लूं उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग-
कल्प उसका छोर क्या है ?

क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरे श्वास घेरे ?

(महादेवी)

महादेवी वर्मा आधुनिक युग की मीरा हैं। उनके गीतों में वही प्रेम, आस्तिकता, आत्मसमर्पण, विरह, करुणा और मधुरता है जो मीरा के 'भजनों' में है। उन्होंने रहस्यवाद की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर अनुभूतिपूर्ण प्रगीतियाँ लिखी हैं जिनकी सरसता और गम्भीरता को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। निस्संदेह उनकी अधिकतर रचनाओं में वेदना की भावना रहती है, परन्तु 'नीरजा' तथा 'सान्ध्यगीत' में ऐसी अनेक रचनाएँ है जो आत्मानन्द की अनुभूति से पूर्ण ह।

(१७)

हुआ था जब संध्या-आलोक
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर,
विहग-रव बन कर मैं चितचोर
गा रहा था गुण किन्तु कठोर!
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक!
निठुर! यह भी कैसा अभिमान

(पंत)

पंत सैद्धांतिक रहस्यवाद के पक्ष में नहीं हैं, परन्तु, रहस्यमय 'प्रियतम' की अनुभति इनकी कविताओं में अवश्य है। इनका रहस्यवाद प्रकृति की पृष्ठभूमि पर चलता है। ये रहस्यवाद के स्वाभाविक कवि है। पंत की कल्पना अत्यन्त मौलिक और भावपूर्ण हैं। भाषा पर पूरा अधिकार है—इन्होंने कुछ नये शब्द और प्रयोग भी गढ़े हैं।

छायावाद

(१८)

पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धँसतीं
तब नख-ज्योति मिल मृदुल अंगुलियाँ हँसती।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास सा झड़ता

(मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी की रचनाओं में सभी शैलियाँ मिल सकती हैं, प्राचीन भी और नवीन भी। बंगला-साहित्य का छायावादी कविताओं में स्पष्ट प्रभाव है।

(१६)

पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा,
फूल उठता शून्य में मेरा हृदय उच्छ्वास मेरा।
ढूंढने जाऊं कहाँ मैं आँख में आलोक फीका,
पैर लरजाने लगे हैं जी हुआ है भार जी का।
उग्र जग के क्रोध-पूरित व्यंग को दिल खोल सहता।
और जग के राग में इन आंसुओं को घोल कहता।।
पागलों के स्वप्न से उड़ चंद्र-मंडल आज घेरा।
पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा।।

(उदयशंकर भट्ट)

नवीन शैली की कविताएं लिखने में भट्ट जी ने अच्छी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनमें भाव, कल्पना और अनुभूति सभी सुन्दर है। आप दार्शनिक छायावाद की कविता भी अधिकारपूर्ण करते हैं और प्रगतिवाद की ओर भी आकृष्ट हैं। आप की कल्पना में सचाई और ईमानदारी रहती है।

(२०)

कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम में उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश-कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !
मूंद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भाव-संकुल, बंकिम, भ्रू-चाप,
मौन, केवल तुम मौन !
अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर-ध्वनि खग-कुल-रोल,
सीप से जलदों के पर खोल,
उड़ रही नभ में मौन !

(पंत)

प्रकृति में उस अज्ञात की झलक पाना रहस्यवादी कवियों की विशेष अनुभूति है।

(२१)

गुलालों से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग।

(महादेवी)

स्मित ले प्रभात आता नित
दीप दे संध्या जाती,
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती।

(महादेवी)

हिन्दी में रहस्यवाद का अध्ययन करने वालो के लिए महादेवी की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। आपने शुद्ध छायावादी गीत भी लिखे हैं। ये गीत हिन्दी-साहित्य की निधि हैं। इनमें वाव्यकला का सौष्ठव भी है और भावों की प्रचुरता भी। इस प्रयोगवाद के युग में आप अब भी प्रतीकात्मक शैली का अनुसरण करती हैं अथवा मौन रहती हैं।

(२२)

प्रेम का प्रथम प्रणय-चुम्बन,
पाश डाले थे कोमल हाथ।

(भगवतीचरण वर्मा)

भगवतीचरण की कविता में मुसलमानी सिद्धातों और अंग्रेजी शब्दयोजना की छाया है। आपके काव्य-विषय प्रधानतः प्रेम, मानव और छायावाद हैं। आपकी शैली विलष्ट परन्तु मनोहर है। आपके गीत कुछ लम्बे-लम्बे हैं, पर इनकी भावुकता, कल्पना, सरलता और तन्मयता निर्विवाद है।

(२३)

शोभा समेट कर सारी अपने आंचल में लेकर
रजनी जाती ' ी रोती कोयल के स्वर में जी-भर।
यह तारकावली उसकी अलकों के हैं च्युत मोती,
यह गई शून्य में मानो इनको विभोर हो खोती।

निद्राभिभूत कर जग को ज्योत्स्ना से और पवन से,
शशि चरा रहा है मृग को बदलो में छिप गोपन से।
प्रातः समीर धीरे से जा चूम-चूम कलियों को;
है डुला जगाता डाली निद्रित, चञ्चल, अलियों को।

(मोहनलाल महतो)

बिहार के आधुनिक कवियों में आप बहुत प्रसिद्ध हैं। न तो आप की

कल्पना क्लिष्ट है और न ही भाषा अस्पष्ट। आप की रचना प्रेम, करुणा और भक्ति से पूर्ण है। बाद में आप क्रांतिवादी कविता भी करने लगे थे।

केवल अलंकार

(२४)

प्रिय मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न निशा का तिमिर-जाल नव-किरणों से धो लो
मुद्रित दृग खोलो ।
जीवन-प्रसून यह वृन्तहीन खुल गया उषा-नभ में नवीन,
धाराएं ज्योति-सुरभि उर भर बह चलीं चतुर्दिक् कर्म-लीन
तुम भी निज तरुण-तरंग खोल नव अरुण-संग हो लो—
मुद्रित दृग खोलो ।

(निराला)

निराला जी ने इस प्रकार की कविताएँ भी लिखी है जिन का विषय न तो छायावाद है और न ही रहस्यवाद—अलबत्त. कलात्मक शैली का प्रयोग अवश्य हुआ है।

(२५)

मेमनों-से मेघों के बाल
फुदकते थे प्रमुदित गिरि पर ।

(पंत)

यह पद्य उस शैली का उदाहरण है जिस में छायावाद अथवा रहस्यवाद नहीं है—अलबत्त अलंकार-योजना नवीन शैली की है। पंत ने ऐसे अनेक गीत लिखे है जिनका विषय छायावाद नहीं—समीक्षकों को भले ही उसमें कोई 'वाद' मिला जाता हो।

(२६)

निर्दयता की निठुर मूर्ति-सी, हत्या की जय-झंडी-सी ।
उष्ण रुधिर की प्यासी जो, नित रहती है रण-चंडी-सी ।।
दुष्ट जनों की कुटिल प्रीति-सी, चारु कामिनी-चितवन-सी ।
नीच हृदय की स्वार्थ नीति-सी, पराधीनता-बंधन-सी ।।
जीर्ण रूढ़ियों के हठ-सी, साम्राज्यवाद की काया-सी ।
विधवा के संतप्त हृदय-सी, नित अनर्थ की जाया-सी ।।

(कैरव—तलवार)

बिहार के छायावादी कवियों में आरसीप्रसादसिंह, वियोगी और कैरव का श्रेष्ठ स्थान है। कैरव की कविताओं में छायावाद और प्रगतिवाद की शैलियों

का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। आप का प्रतीक-विधान स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण रहता है। मसृणता और सरलता आप के गीतों की विशेषताएँ हैं।

(२७)

छिपा उर में कोई अनजान !
खोज-खोज कर सांस विफल बाहर आती जाती है;
पुतली के काले बादल में वर्षा सुख पाती है !
एक वेदना विद्युत-सी खिंच-खिंच कर चुभ जाती है,
एक रागिनी चातक-स्वर में सिहर-सिहर गाती है।
कौन समझे—समझावे गान !
छिपा उर में कोई अनजान !

(रामकुमार वर्मा)

रहस्यवादी कवियों में ये भी प्रसिद्ध हैं। इनका रहस्यवाद महादेवी वर्मा की शैली के अनुसार हैं। इसमें इनके अध्ययन और कल्पना का परिचय मिलता है। इनकी अलंकार-योजना सुन्दर होती है। इन्हें प्रकृति के दैवी चित्रों के आधार पर रहस्य-भावना की सुकुमार अभिव्यक्ति करना ही प्रिय रहा है। इनके गीत संक्षिप्त, भावपूर्ण और प्रभावशाली हैं।

प्रगतिवाद

राजनीति में जो समाजवाद (अथवा साम्यवाद) है, वास्तव में उसी का साहित्यिक मोर्चा प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी ऐसे साहित्य की सृष्टि चाहता है जो वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायक हो। वह व्यक्ति की कल्पनायुक्त पीड़ा को सुनना नहीं चाहता, वह समष्टि की वास्तविक पीड़ा से क्षुब्ध है। वह आध्यात्मिक आवश्यकताओं की अपेक्षा पेट की भूख को यथार्थ आवश्यकता मानता है। इसीलिए वह छायावाद—रहस्यवाद को 'पलायनवाद' कहता है। उसका कहना है कि जो साहित्य समाज की प्रगति में सहायक नहीं होता वह विलास मात्र है, उस साहित्य का कोई उपयोग नहीं है।

यथार्थवाद का ध्यान व्यक्ति और समाज में फैली हुई गंदगी और उस से उत्पन्न बीमारियों की ओर रहता है। प्रगतिवाद उस गंदगी के कारणों की खोज करके उस गंदगी को हटाने के उपाय बताता है जिससे समाज प्रगति की ओर अग्रसर हो।

काल से चली आ रही है। दूसरा समुदाय कुछ उदार है—वह समस्त मानवता का उद्धार चाहता है। उसे पीड़ित यहूदियों से भी सहानुभूति है और हब्शियों पर किये गये अत्याचारों पर भी रोष है।

छायावाद और प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों का मुकाबला करके इस प्रसंग को और भी स्पष्ट करना उचित है।

(१) वेदना और दुःख के चित्रण दोनों में है, परन्तु छायावाद की वेदना व्यक्तिगत है और प्रगतिवाद की वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों। एक ओर प्रगतिवादी समाज की विषमता से आक्रांत है, दूसरी ओर मानस के अंतर्द्वन्द्व से। उसे समाज से भी लड़ना पड़ता है और अपने से भी। परन्तु जहाँ छायावादी इस संघर्ष से घबराकर निराशावादी हो जाता है, प्रगतिवादी आशा से पूर्ण है। उसे विश्वास है कि वह इस दुःख को दूर करने में सफल होगा और वह दिन आयेगा जब ये विषमतायें मिट जायेंगी। उसमें इनका सामना करने की शक्ति और स्फूर्ति तथा मानव जीवन के विकास की प्रेरणा है। छायावादी उस स्वर्लोक की कामना करते हैं जो इस जगह से दूर कहीं आकाश में है। प्रगतिवादी इसी जगत् में स्वर्ग चाहते हैं। वे ऐसा संसार बसाना चाहते हैं जिस में वर्गभेद, शोषण और रूढ़ि का नाम तक न होगा।

(२) प्रेम के गीत दोनों प्रकार के कवियों ने गाये हैं। प्रगतिवादी प्रेम के दुष्परिणामों पर भी दृष्टि रखता है। वह प्रेम को निपट स्वर्ग की वस्तु नहीं समझता। वह जानता है कि जहाँ अमृत है वहाँ विष भी है। प्रगतिवाद का शृंगार कभी-कभी अश्लील भी हो जाता है—स्वाभाविकता के नाते वह किसी चीज को गोप्य नहीं रखता। 'प्रभातफेरी' और 'ग्राम्या' में यथार्थता के नाम पर अश्लीलता की बीभत्सता कई जगह लक्षित होती है।

(३) प्रकृति से दोनों समुदायों के कवियों को प्रेम है। बहुत से कवि छायावाद से प्रगतिवाद की ओर अग्रसरित हुए हैं। प्रगतिवादियों के प्रकृति-प्रेम का मुख्य कारण ग्राम्य जीवन का आकर्षण है। वे शहरियों से तंग हैं। ग्रामीण लोगों से उन्हें पूरी-पूरी सहानुभूति है।

(४) सद्धर्म की प्रति दा दोनों प्रकार के कवियों ने की है। परन्तु प्रगतिवादी धर्म का व्यावहारिक रूप लेते हैं। वे उस धूर्त की घोर निन्दा करते हैं जो ईश्वर को रिझाने का प्रयत्न तो करता है परन्तु मनुष्य पर अत्याचार और पाप करना बुरा नहीं समझता। वे धर्म को भी मानवजाति के कल्याण के लिए लगाना चाहते हैं। वे उसी को धार्मिक कहते हैं जो भिखारी से सहानुभूति रखता है, नंगे के शरीर को ढँक देता है और समाज के हित में लगा रहता है।

(५) यह मानना पड़ेगा कि छायावादी कविता साधना और अभ्यास के कारण कवित्व की दृष्टि से बहुत ऊँची थी। प्रगतिवादी कविता में कभी वह गम्भीरता, वह तन्मयता, वह अभिव्यञ्जना, वह अनुभूति की गहराई और वह कला नहीं आ पाई जो छायावाद की अपनी विशेषता रही है। स्वाभाविकता के नाम पर जो खिलवाड़ इसमें देखने को मिलता है उसका नमूना देखिए—

सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली-पीली
मासिक पत्रों के कवरों की, औ' बन्दर से,
किलकारी भरते खुश हो, अन्दर से,
दौड़ पार आँगन के फिर हो जाते ओझल,
वे नाटे छः-सात साल के लड़के मांसल।

प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार गिना जा सकता है—

(१) रूढ़ियों का विरोध;
(२) शोषितों के प्रति सहानुभूति, शोषकों की निन्दा;
(३) धार्मिक जीवन की निन्दा, वैज्ञानिक जीवन की प्रशंसा;
(४) क्रान्ति की भावना;
(५) रूस और रूस के राजनैतिक नेताओं का गुणगान;
(६) सैद्धान्तिक विवेचन; और
(७) शैली की सरलता।

यह कह देना आवश्यक है कि आधुनिक काव्य में प्रगतिवाद और छायावाद की शैलियाँ बराबर चल रही हैं। कई कवि दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय करने को उत्सुक हैं। रामावतार यादव 'शक्र' ने गरीब की झोंपड़ी को रुलाया है और दिनकर ने दिल्ली को कृपकमेघ की रानी कह कर खूब कोसा है। आधुनिक कवि भद्दे से भद्दे विषय को काव्योपयुक्त बनाने में समर्थ हैं।

यह भी देखने में आया है कि जिस प्रकार इस से पिछली दो दशाब्दियों में बड़े-बड़े कवियों को देखा-देखी छोटे-मोटे कवि अनुकरण-मात्र करके कविकर्म निभाते रहे, इसी प्रकार अनेक आधुनिक कवि दूसरों के स्वर में स्वर मिलाकर निश्चित प्रणाली पर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। भाव-क्षेत्र में प्रगतिवाद भी रूढ़िग्रस्त हो गया है।

प्रगतिवाद का स्वर हिन्दी काव्य में न तो सहृदयों और रसिकों के

लिए आकर्षक रह पाया है और न ही उसे लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इसके अनेक कारण हैं, जैसे—

(१) कल्पना, स्वानुभूति, संवेदनशीलता और भाव की कमी,

(२) यथार्थ का नग्न और घृणास्पद चित्रण; विकृतियों की प्रतिष्ठा, कहीं-कहीं अश्लीलता का समावेश;

(३) जीवन की स्थूल समस्याओं का समावेश करके मानव मूल्यों का निरादर, क्योंकि मानव में शरीर से अधिक महत्त्व आत्मा ही का माना गया है और रोटी-कपड़े के अतिरिक्त हमारी और आकांक्षाएं भी रहती हैं।

(४) प्रत्येक बात में अश्रद्धा, असन्तोष, अशान्ति, और जीवन-सम्बन्धी कुंठा,

(५) शोषितों के प्रति वास्तविक सहानुभूति की अपेक्षा मात्र बौद्धिक सहानुभूति,

(६) कविता के गौरव की अवहेलना।

सच तो यह है कि अब प्रगतिवाद एक दल के विचारों की पुष्टि करता है, उसमें न तो उदारता है और न ही सहनशीलता। इसका प्रभाव हिन्दी के बहुत थोड़े (और वह भी साम्यवादी—कम्यूनिस्ट—विचारधारा के) नवयुवकों पर रहा है। वाद के रूप में अब यह मृतप्राय है।

प्रगतिशील काव्य के न केवल रस और भाव अपितु भाषा, छंद और अलंकार भी प्रगतिवान, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक रहे हैं। बच्चन, नरेन्द्र,

अभिव्यंजना प्रक्रिया

सुमन आदि अनेक कवि भाषा को सरल और सुन्दर बनाने में प्रयत्नशील रहे हैं। छायावाद की संस्कृतमयी पदावली, क्लिष्ट प्रतीकात्मकता और लाक्षणिक योजना के विरुद्ध विद्रोह के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। यह भी हर्ष की बात है कि छायावादी कविता के गुणों को अपनाने की उत्सुकता बराबर बनी हुई है। छंदों की विविधता, भाषा की मधुरता और सरल अलंकारों की परम्परा आधुनिक काव्य में योग्यतापूर्ण ढंग से चल रही है। हाँ, इसमें अभी वह संगीत नहीं आ पाया जो छायावाद का विशेष गुण है। बहुत-सी कविताएं गद्य से भी अधिक रूखी हैं।

प्रगतिवादी काव्यभाषा को जनभाषा के निकट रखने की चेष्टा करते हैं।

आप कवि प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि करने में तत्पर हुए हैं। किन्तु कुछ ही की रचनाएं उच्च कोटि की कही — सकती हैं। केवल मुख्य-मुख्य रचनाओं की सूची —

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—'अनामिका', 'अणिमा' आदि के फुटकर गीत।

प्रतिनिधि रचनाएँ

सुमित्रानन्दन पन्त—'गुंजन', 'युगवाणी', 'ज्योत्स्ना', 'ग्राम्या'।

महादेवी वर्मा—'[illegible] मन बंदना ले'।

हरिवंशराय बच्चन—'हलाहल', 'बंगाल का अकाल', 'आकुल अंतर'।

रामधारीसिंह दिनकर—'हुंकार', 'रेणुका', 'द्वन्द्व-गीत'।

अनूप शर्मा—'सुमनांजलि'।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'विप्लव-गान', 'पराजय-गीत' आदि कविताएँ।

गोपालसिंह नेपाली—'रागिनी', 'नवीन', और 'पंछी'।

भगवतीचरण वर्मा—'मानव', 'भैंसा गाड़ी' आदि कविताएँ।

रामेश्वर शुक्ल अञ्चल—'मधूलिका', 'अपराजिता'।

सोहनलाल द्विवेदी—'प्रभाती', 'चित्रा', 'बाँसुरी', 'भैरवी', 'युगाधार'।

नरेन्द्र शर्मा—'शूल-फूल', 'कर्णफूल', 'प्रभात-फेरी'।

शिवमंगलसिंह सुमन—'प्रलय-सृजन', 'जीवन के गान', 'हिल्लोल' आदि।

केदारनाथ अग्रवाल—'युग की गंगा'।

नेमिचन्द्र जैन—फुटकर कविताएँ।

शमशेर बहादुर—फुटकर कविताएँ।

नागार्जुन—फुटकर कविताएँ।

नरेश मेहता—फुटकर।

भारत भूषण अग्रवाल—फुटकर।

इनके अतिरिक्त '[illegible]-दर्शन' में निराला, बच्चन, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी और गुप्त बन्धुओं की कविताएँ, निरंकारदेव सेवक का 'अंगारों का गीत', केदारनाथ अग्रवाल, हंसकुमार तिवारी, [illegible], क्षेमचन्द्र सुमन, शम्भुदयाल सक्सेना, देवराज दिनेश और कवियों की फुटकर रचनाएँ इस नवीन धारा की प्रतीक हैं।

[illegible] १९५२ [illegible] समाप्त हुई है। [illegible] [illegible] आज भी [illegible] कविताएँ आ रही हैं।

उपसंहार

[illegible] के लिए कुछ ग्रन्थ उद्धृत किये [illegible] हैं।

(१)

कह दो मां क्या देखूं ।
देखूं खिलती कलियों या
प्यासे सूखे अधरो को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं ।
देखूं हिम हीरक हंसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से
झरते आंसू कण देखूं ।
तुम में अम्लान हँसी है
इस में अजस्र आंसू-जल,
तेरा वैभव देखूं या
जीवन का क्रन्दन देखूं !

(महादेवी वर्मा)

छायावादी कवि मानवता के प्रति उदासीन नही है । वे भी सामाजिक विषमता को सहन नही कर सक्ते । महादेवी जी के बगाल के पीडितों के संबन्ध में लिखे गये गीत करुणा और समवेदना से पूर्ण हैं । वैसे भी आपकी कृतियो में यत्र-तत्र जीवन-सघर्ष का परिचय और नव-जीवन का सदेश मिलता है

(२)

मेरे पड़ोस के वे सज्जन, करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन ।
झोली से पुये निकाल लिए, बढ़ते कपियो के हाथ दिए ।
देखा भी नहीं उधर फिर कर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ।
चिल्लाया किया दूर मानव, बोला 'मैं धन्य श्रेष्ठ मानव' ।

(निराला—अनामिका में 'दान')

विधवा और भिक्षुक के प्रति निराला जी की समवेदना सब पाठकों को विदित है । 'जागो फिर एक बार' में कवि कर्तव्यपालन की प्रेरणा देते है । ऊपर के पद्य में आप उन सेठो की निन्दा करते है जो बन्दरों को तो खिलाना जानते हैं पर भिक्षुको को धिक्कारते हैं । निराला अतीत से मुड़कर वर्तमान और भविष्य की चिन्ता में व्यस्त हैं ।

(३)

हाय, मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !

शव को दें हम रूप-रङ्ग आदर मानव का,
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का !

(पंत)

पंत एक आस्तिक और आशावादी कवि हैं। उनका कर्म में विश्वास है, वैराग्य में नहीं। वे जीवन के बन्धन में रहना मुक्ति पाने की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं। उनके हृदय में मानवता के प्रति हार्दिक सहानुभूति है। इन कविताओं को पढ़कर कौन कह सकता है कि छायावादी जीवन से दूर भागते हैं ?

(४)

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो अब बनना है जन मानव।
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव॥

(पंत—युगवाणी)

नवीन संस्कृति के विषय में पंत जी की यह व्यवस्था है। वह समष्टि के आधार पर खड़ी है। वे गांधीवाद और साम्यवाद का समन्वय चाहते हैं।

(५)

न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर, वस्त्र हो,
हटो नहीं
डटो वहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो।
अशेष रक्त तोल दो
स्वतंत्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो
डरो नहीं
मरो वहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो

(सोहनलाल द्विवेदी)

द्विवेदी जी ने अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। आप गुप्त जी की 'भारत-भारती' की परंपरा का पालन करने वालों में से हैं। अतीत से प्रेम करते हुए भी आप भविष्य के निर्माण के लिए चिंतित रहते हैं। आप गांधी जी के अहिंसा-

वाद के समर्थक हैं। नवीन जागृति और नवीन संस्कृति की प्रगति में आप पूर्ण रूप से सहयोग देते रहे हैं। सुधीन्द्र और आप पक्के आस्तिक और आशावादी कवि हैं।

(६)

ओ मदहोश बुरा फल हो शूरों के शोणित पीने का।
देना होगा तुझे एक दिन गिन गिन मोल पसीने का॥
मंजिल दूर नहीं अपनी दुख का बोझा ढोने वाले।
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले॥

(दिनकर—हुंकार)

प्रगतिवादी कवियों में दिनकर का स्थान बहुत ऊँचा है। आप के विचारों में मौलिकता, शैली में ओज और सचाई होती है। आप की भाषा ओजपूर्ण, परिमार्जित और आलंकारिक होती हैं, परन्तु हैं अव्यवस्थित। आपके काव्य में भारतीय स्वर विशेष रूप से रहता है।

(७)

भूख अखण्ड शौर्यशाली है,
... ...
भूख भवानी भयदायनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
बड़े विशाल उदर वाली है
भूख धरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है
अन्यायी को खा जाती है,
वह अन्याय चबा जाती है,
और निगल जाती है पल में
अन्यायी का दुःसह शासन,
हड़प चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटों के
छत्र किरीट, दण्ड, सिंहासन

(बच्चन—बंगाल का काल)

बच्चन हिन्दी के कवियों में बड़े प्रसिद्ध हैं। निराशा की 'मधुशाला' में पीकर आप अब समाजसुधार और नवजीवन-निर्माण की आशा करने लगे हैं। आप के गीतों में दुःख का चित्र अत्यंत मार्मिक हुआ है। गतरा हृदय की वेदना,

पीड़ित प्राणियों की पुकार की प्रतिध्वनि और भाषा की सरलता आप की प्रगतिशील कविताओं की विशेषता है।

(८)

फैला लाल धुआं शोणित का चारु हुआ जाता दिग्मण्डल,
चमक रही शमशीर नृशंसों की पीने युग का तप-सम्बल।
प्यासी आज विजय की प्यासी क्षुब्ध विजेता की हुंकारें,
ध्वंसमयी ओ सुनी न जातीं मानवता की विह्वल पुकारें।
आततायियों की हिंसा से कँपता अम्बर, धरती रोती,
युग-युग की, जीवन प्रतिमा, तुम आज पड़ी खेतों में सोती।
देखो मुट्ठी भर दानों को तड़प रही कृषकों की काया;
कब से सुप्त पड़ी खेतों में जागो इन्कलाब घिर आया।

(अंचल—सर्वहारा)

प्रेमी और यौवन के मतवाले अंचल जन-जीवन की प्रगति के लिए भी उन्मुक्त हैं। पूंजीपतियों का विरोध करने के लिए और श्रमियों के प्रति समवेदना प्रगट करने के लिए आपकी लेखनी में पूरा बल है।

(९)

आओ हथकड़ियाँ तड़का दें, जागो-रे नतशिर बन्दी!
उन निर्जीव शून्य श्वासों में आज फूंक दूं नवजीवन,
भर दूं उन में तूफानों का अगणित भूचालों का कंपन
प्रलयवाहिनी हों स्वतंत्र हों तेरी साँसें फिर बंदी।

(नरेन्द्र—प्रभात फेरी)

गृहसुख से निर्वासित कर दी हाय मानवी बनी सर्पिणी
यह निष्ठुर अन्याय, आओ बहन!
अरी सर्पिणी, आ तेरे मणिमय मस्तक पर मैं
अंकित कर दूं निर्धन चुम्बन, आ सर्पिणी, आ
ले भाई का निर्बल आलिंगन।

(नरेन्द्र—प्रभात फेरी)

आज का कवि सामाजिक और राजनैतिक दोषों के लिए मनुष्य को ही उत्तरदायी समझता है। शर्मा जी वेश्या के साथ सहानुभूति प्रगट करते हुए उसके पतन का उत्तरदायित्व समाज पर रखते हैं। आप की कविता में ओज, कला और संगीत होता है।

(१०)

दुनिया भर के श्रमजीवी जागो, कुछ अपनी ताकत जानो

तुम में कितना बल है प्यारे, कुछ तो अपने को पहचानो ।।
और न सोचो अपने मन में एवमस्तु प्यारे अब बोलो ।
महारुद्र का नयन तीसरा, प्रलयंकर गति से तुम बोलो ।।

(विश्वंभरनाथ)

यह उस शैली की आधुनिक कविता का नमूना है जिस में हरिश्चन्द्र-युग और द्विवेदी-समुदाय के कवि लिखते रहे हैं। अलबत्ता इस में क्रांति और नाश की धमकी नयी है।

(११)

खोल सीना, बांधकर मुट्ठी कड़ी
मैं खड़ा ललकारता हूं,
ओ नियति तू सुन रही है ?
मैं खड़ा तुझको यहां ललकारता हूं।
हां, वही मैं
जो कि कल तक कर रहा था चरण में तेरे निवेदन फूल पूजा के
करुण आंखों को भिगोकर
कांपती अंगुलियों की अंजलि संजोकर ।
हां, वहीं मैं ।

(भारतभूषण अग्रवाल)

भारतभूषण, शमशेर बहादुर, नेमिचन्द जैन आदि अनेक कवि अब नये-नये प्रयोग करते हुए दिखाई दे रहे हैं। लगता है कि इन साम्यवादी मतावलम्बियों का कवि भी अब जागा है और वे प्रगतिवाद की रूढ़ियादिता से ऊब चुके हैं। —देखिए आगे 'नई कविता'।

(१२)

जिस में मानवता की दानवता फैलाए है निज राजपाट
साहूकारों के परदे में है, जहां चोर और गिरह-काट ।
है अभिशापों से सदा जहां पशुता का कलुषित ठाठ-बाट,
उसमें चांदी के टुकड़ों के बदले में लुटता है अनाज,
उन चांदी के ही टुकड़ों से यह चलता है सब राजकाज ।

(भगवतीचरण वर्मा)

समाज का वैषम्य इन पंक्तियों में स्पष्टत चित्रित हुआ है। वर्मा जी के 'मानव' नामक काव्य-संग्रह में समाजवादी विचार मिलते हैं। किन्तु वास्तव में आप स्वच्छन्दताप्रिय कवि हैं—किसी वाद विशेष में पड़कर आप कविता नहीं लिखते ।

(१३)

नियम और उपनियमों के बंधन टूक-टूक हो जाएं ।।
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएं ।।
नाश-नाश, हां महानाश की प्रलयंकरी आंख खुल जाए ।।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे अंग-अंग झुलसाए ।।

(नवीन—कुंकुम)

नवीन की यह कविता बहुत प्रसिद्ध है । आप की रचनाएँ देश-भक्तिपूर्ण हैं। हाल ही में आप क्रांति के गान गाने लगे हैं । इनमें बड़ा ओज और प्रभाव होता है। आप की भाषा में उर्दू, हिन्दी, संस्कृत तथा ग्रामीण शब्दों का संमिश्रण होता है। कहीं-कहीं ठेठ प्रयोगों के कारण आप की भाषा में सरल भोलापन भी आ जाता है ।

प्रयोगवाद—नई कविता

पिछले प्रकरण में जिस स्वच्छंदताप्रिय नई कविता का परिचय दिया गया है, उसे ही 'प्रयोगवाद' कहा गया है। प्रयोग तो हमारे साहित्य में सदा से होते आ रहे हैं। वीरगाथाकाल से लेकर आज तक का हिन्दी साहित्य विषयवस्तु, भाव, भाषा, छंद, अलंकार सभी की दृष्टि से प्रयोगों की एक लम्बी शृंखला है। साहित्य के विकास के मूल में प्रयोग ही प्रयोग है ।

गत महायुद्ध के उपरान्त और विशेषतया स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से, प्रमुखत प्रगतिवाद की सकीर्ण काव्यशैली की प्रतिक्रिया में हिन्दी में नये-नये प्रयोग किये जाने लगे हैं। परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही आ उपस्थित हुई हैं जैसी कि सन् '५७ के बाद थी देश, समाज, धर्म, संस्कृति, मानव, व्यक्ति के सम्बन्ध में नये प्रश्न, नये परिप्रेक्ष्य, नये मूल्य, नये सत्य आ खड़े हुए हैं। "प्रयोगशील कविता में नये सत्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है, उन सत्यों के साथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी, और उनको पाठक तथा सहृदय तक पहुँचाने यानी साधारणीकरण करने की शक्ति भी है"—(अज्ञेय) । द्वितीय महायुद्ध के समय में ही कुछ जागरूक साहित्यकारों ने राजनैतिक और सामाजिक स्थिति में असतोष का अनुभव किया। निराला ने अपनी असतुष्टि को 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' के माध्यम से अभिव्यक्त किया। यहीं से नई कविता का आरम्भ माना जाता है। 'प्रतीक', 'तार सप्तक' और 'दूसरा तारसप्तक' ने इस प्रवृत्ति को उभारा और भाव-भाषा-कला के प्रयोगों का स्पष्टीकरण किया ।

इधर छायावाद और प्रगतिवाद की भारतीय जन-जीवन की उपेक्षा के प्रति

चिंता और खीझ प्रगट की गई। छायावाद ने वस्तुजगत् को भुलाकर भावजगत् की ओर 'सार्वलौकिकता के स्थान पर वैयक्तिकता' को अपनाया। "उसने वास्तविकता से आँखमिचौनी खेलकर स्वप्न तथा आशा की सृष्टि की, एवं कल्पना का सौंदर्य-पट बुना।" ."नयी कविता ने मानव-भावना को छायावादी सौंदर्य के धड़कते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन-समुद्र की उत्ताल लहरों में पेंग भरने को छोड़ दिया है, जहाँ वह साहस के साथ सुख-दुःख, आशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ती हुई युग-जीवन के आँधी-तूफानों का सामना कर सके। नयी कविता विश्व वर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युग पट को अपने मुक्त छंदों के संकेतों की तीव्र-मन्द गति-लय में अभिव्यक्त कर, युग-मानव के लिए नवीन भावभूमि प्रस्तुत कर रही है।"—पन्त।

इस नई कविता को प्रयोगवाद का नाम दिया गया है, पर यह कोई वाद नहीं है। इस धारा के प्रवर्तक भी इसे इस नाम से अभिहित करना नहीं चाहते। अतः हम भी इसे 'नई कविता' कह कर इसका विवेचन करेंगे।

नई कविता का आरम्भ सन् १९४३ में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। सन् १९४७ में 'प्रतीक' नामक पत्रिका के अंकों में इसका और अधिक परिचय मिला। सन् '५१ में दूसरा तारसप्तक प्रकाश प्रमुख रचनाएँ में आया। पटना से प्रकाशित 'दृष्टिकोण' और 'पाटल', लखनऊ की 'युगचेतना' एवं प्रयाग से प्रकाशित 'नयी कविता' और 'निकष' का नई कविता को प्रोत्साहित करने में बड़ा हाथ है।

अज्ञेय—इत्यलम्, बावरा अहेरी, हरी घास पर क्षण भर, त्रिशंकु।
कुँवरनारायण—चक्रव्यूह।
केदारनाथ सिंह—फुटकर कविताएँ।
गजानन माधव मुक्तिबोध—फुटकर।
गिरिजाकुमार माथुर—मंजीर, धूप के धान।
जगदीश गुप्त—नाव के पाँव।
जानकी वल्लभ शास्त्री—रूप और अरूप।
दुष्यन्त कुमार त्यागी—सूरज का स्वागत।
धर्मवीर भारती—ठंडा लोहा, तीन गीत वर्ष।
नरेश मेहता—फुटकर कविताएँ।
बच्चन—प्रणय-पत्रिका।
बालकृष्ण राव—रात बीती।
भवानीप्रसाद मिश्र—गीत-फरोश, आदि।

प्रयागनारायण त्रिपाठी—फुटकर कविताएँ

भारतभूषण अग्रवाल—मुक्ति-पथ।

मदन वात्स्यायन—फुटकर कविताएँ।

महेन्द्र भटनागर—नारों के गीत, बदलता युग।

रघुवीर सहाय—फुटकर कविताएँ।

लक्ष्मीकान्त वर्मा—पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ।

राजेन्द्र किशोर—विविधा।

विजयदेव नारायण साही—पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विविध कविताएँ।

रवीन्द्र भ्रमर—फुटकर कविताएँ।

शम्भूनाथ सिंह—दिवालोक।

शमशेर बहादुर सिंह—पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना—फुटकर कविताएँ।

फुटकर कविताओं के लिए देखिए 'आधार' बम्बई, 'नयी कविता', इलाहाबाद, 'अवन्तिका' पटना, 'पाटल' और 'तार सप्तक' आदि।

नई कविता एक ओर हिन्दी काव्य की समस्त परंपराओं का समाहार और समन्वय है तो दूसरी ओर नई परंपराओं की नींव रखने का प्रयास है। इसमें विषयवस्तु, भाव, कला, और सब को सावधानी के साथ सन्तुलित रूप में रखने की चेष्टा है। द्विवेदी युग की कविता में जनसाधारण का सत्य तो था, पर लोक-रुचि की कला नहीं थी। छायावाद में कला आई तो जनसाधारण का सत्य छूट गया। प्रगतिवाद सामाजिक चेतना को लेकर चला अवश्य, पर अन्ततः एक राजनैतिक नारा बन कर रह गया। नई कविता प्रगतिवाद का एक उदार, चेतन, बौद्धिक और सर्वथा नया रूप है। यह एक अधिक बलवती प्रेरणा है जिसकी ओर सब प्रगतिवादी कवि भी—नागार्जुन, शमशेर बहादुर, नरेश मेहता, प्रभाकर माचवे, आदि—झुके हुए हैं। इस में विषयवस्तु, अनुभूति, प्रवृत्ति और कला की नवीनता तो है ही, साथ में व्यक्ति और समाज, बुद्धि और कल्पना, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावना का सामंजस्य भी है। इस में प्रगतिवादियों का समाज भी है और छायावादियों का व्यक्ति भी उभर कर आया है। प्रगतिवादी धारा ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य को दबाकर समाज-कल्याण की चिन्ता की, लेकिन व्यक्ति-स्वातन्त्र्य समस्त प्रगति का मूलाधार है—यह युद्धोत्तर युग की माँग है। कुछ समीक्षकों को लगता है कि वैयक्तिकता पर अधिक बल देकर नई कविता ने अहंकार, आत्मप्रकाशन और वैचित्र्य-विधान को प्रोत्साहित करके भारतीयता को ठेस पहुँचाई है। हमारी परंपरा में कवि ने अपने को मान्यता नहीं दी थी।

काव्यशैली

नई कविता के विषय भारत की सीमाओं में परिबद्ध नहीं। प्रायः लोग इस प्रवृत्ति को पश्चिमी प्रभाव का फल मानते हैं और इलियट-पाउंड की शैली का अनुकरण कहते हैं। किन्तु, वास्तविकता यह है कि आज का मानव सम्पूर्ण विश्व और मानवता के प्रति अधिक जागरूक दिखाई देता है।

नई कविता सौन्दर्यबोध के नये धरातल और नये अनुभव-क्षेत्र प्रस्तुत करती है। वह मानव जीवन के बदलते हुए स्तरों को नये मानदण्ड प्रदान करती है। आज का कवि पिटी-पिटाई, घिसी-घिसाई लकीर पर नहीं चलना चाहता, वह अपना मार्ग आप निकाल रहा है। लोग उसको उद्धत, अराजक, विद्रोही और अहमन्य कहकर निंदित करते हैं, पर वह अपने प्रति पूर्ण निष्ठावान् है। नई कविता के उत्थान से तीन वर्गों के लोगों को बहुत चिढ़ है—एक वे जो संस्कारबद्ध रूढ़िग्रस्त कविता के उपासक रहे हैं, दूसरे वे जो कविता की आड में राजनीति और साम्प्रदायिकता का प्रचार करते आये हैं और तीसरे वे जिनका बौद्धिक स्तर फिल्मी गीतों की रुचि से हीन बना है। एक बात यह भी है कि प्रायः आलोचक नई कविता के उन उदाहरणों को सामने रखते हैं जो प्रारम्भिक अवस्था में हैं। उनका भाव भी अस्फुट है और प्रभाव भी नहीं है, जैसे

मेरे सपने इस तरह टूट गये
जैसे भुँजा हुआ पापड़।

अथवा

अगर कहीं मैं होता तोता!
तो क्या होता?
तो क्या होता,
तोता होता! इत्यादि

ये कविताएँ निश्चय ही सुन्दर नहीं हैं। अनेक कवि जीवन-सिद्धान्त, मानव चेतना और 'नयी कविता' के वादों की व्याख्या में भी कविताएँ लिखते हैं। तब ऐसा लगता है कि वे कविता का दुरुपयोग करते हैं और उसे अपने 'अहं' का माध्यम बना देते हैं। जैसे—

कहने को बहुत कुछ है
कहते नहीं बनता। (राजेन्द्र किशोर)

हमें किसी कल्पित अजरता का मोह नहीं। (अज्ञेय)

टूट गया मैं
मुझे व्यथा ने तोड़ दिया॥ (प्रयागनारायण त्रिपाठी)

हम छोटे नये लोग
खोजों के पीछे पागल हैं।

(पुरुषोत्तम खरे)

बीसवीं सदी की जटिल समस्याओं ने मुझे उत्पन्न किया।

(राजेन्द्र किशोर)

कभी-कभी इन कविताओं में ऊँचे-ऊँचे नारे लगाये जाते हैं—'कर्मरत हो, स्वप्न मत देखो'। कभी-कभी इतिवृत्तात्मकता खटकने लगती है, जैसे भारत-भूषण और गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में। ऐसी कविताएँ किन्हीं-किन्हीं को नीरस, प्राणहीन और निद्य लगती हैं।

इस तरह के आरम्भिक प्रयोग वस्तुगत न होकर शैलीगत थे—नये उपमानों की चाह में वे हास्यास्पद भी हो गये। लेकिन धीरे-धीरे काव्य-वस्तु में उभार और अभिव्यक्ति में निखार आता जा रहा है। आज भी नई कविता अपनी मंजिल पर नहीं पहुँची। दूसरी बात यह भी है कि नई कविता के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वह सब न तो काव्य है और न ही इस प्रवृत्ति का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करता है।

नई कविता अपनी शैली, छंद-रचना, रस-अलंकार योजना, भाषा और अभिव्यक्ति की रीति में बिलकुल नई है। आज का कवि मानता है कि काव्य के घिसे-पिटे परम्परागत शब्दों में न प्रेषणीयता रह गई है, न

अभिव्यक्ति प्रभाव। वह नये-नये शब्दों की खोज में रहता है। उसके लिए भाषागत कोई भी बंधन नहीं है—वह अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, बोलचाल की हिन्दी अथवा ग्राम्य भाषा का यथावसर प्रयोग करने में संकोच नहीं करता है। जैसे,

१. हम कुंज-कुंज यमुना तीरे

—अज्ञेय

२. गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तरुनाई
सितारों को जलन से बादलों पर आँच कब आई।

—भारती

३. कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी—
यह लीजे चलती चीज, नयी फिल्मी
हैं गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूँ, मगर लाचार हारकर
गीत बेचता हूँ।

—भवानीप्रसाद मिश्र

हम छोटे नये लोग
खोजों के पीछे पागल हैं।

(पुरुषोत्तम खरे)

बीसवीं सदी की जटिल समस्याओं ने मुझे उत्पन्न किया।

(राजेन्द्र किशोर)

कभी-कभी इन कविताओं में ऊँचे-ऊँचे नारे लगाये जाते हैं—'कर्मरत हो, स्वप्न मत देखो'। कभी-कभी इतिवृत्तात्मकता खटकने लगती है, जैसे भारत-भूषण और गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में। ऐसी कविताएँ किन्ही-किन्ही को नीरस, प्राणहीन और निद्य लगती है।

इस तरह के आरम्भिक प्रयोग वस्तुगत न होकर शैलीगत थे—नये उपमानों की चाह में वे हास्यास्पद भी हो गये। लेकिन धीरे-धीरे काव्य-वस्तु में उभार और अभिव्यक्ति में निखार आता जा रहा है। आज भी नई कविता अपनी मंजिल पर नही पहुँची। दूसरी बात यह भी है कि नई कविता के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वह सब न तो काव्य है और न ही इस प्रवृत्ति का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करता है।

नई कविता अपनी शैली, छद-रचना, रस-अलकार योजना, भाषा और अभिव्यक्ति की रीति में बिलकुल नई है। आज का कवि मानता है कि काव्य के

प्रक्रिया

घिसे-पिटे परम्परागत शब्दों में न प्रेषणीयता रह गई है, न प्रभाव। वह नये-नये शब्दों की खोज में रहता है। उसके लिए भाषागत कोई भी बधन नही है—वह अग्रेजी, सस्कृत, बगला, उर्दू, बोलचाल की हिन्दी अथवा ग्राम्य भाषा का यथावसर प्रयोग करने में संकोच नही करता है। जैसे,

१. हम कुंज-कुंज यमुना तीरे

—अज्ञेय

२. गुनाहो से कभी मैली हुई बेदाग तरुनाई
सितारों की जलन से बादलों पर आंच कब आई।

—भारती

३. कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी—
यह सीजे चलती चीज, नयी फिल्मी
हैं गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूँ, मगर लाचार हारकर
गीत बेचता हूँ।

— भवानीप्रसाद मिश्र

४. राह लहरीली चले हम जा रहे उस पार
हाथ में गह हाथ, छोड़े जा रहे पथ शेष
और कितना और कितना पंथ का अवशेष
राहपथिक की डीठियों में भरा प्रश्न अशेष
बिछुड़ते वे गाछ, पत्थर मील, बिजली-तार
सभी का है दाय हम पर, सभी का आभार।

—प्रमोद गुप्त

नवमी का चाँद बुझा
हवा रही डोल —शम्भूनाथसिंह

इन प्रयोगों में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियों का रहना स्वाभाविक है, लेकिन यह आशा की जा सकती है कि समय पाकर इन में निखार आयेगा। यह निखार दृष्टिगोचर भी होने लगा है।

अनेक कवि वर्तमान शब्दों को नये अर्थ देने में प्रवृत्त हैं। वे अनुभव करते हैं कि भाषा जब भाव को वहन करने में असमर्थ होती है तो नये शब्द चलाना तो सम्भव नहीं होता, प्रचलित शब्दों को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जा सकता है।

नई कविता में उपमान-योजना का निरालापन है। उस में हंस, कमल, चकोर, चन्द्रमा आदि से सम्बन्धित कवि-समयों और रूढ़ उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का अभाव-सा है और व्यापक जीवन के जाने-पहचाने उपमानों का प्रयोग अधिक है।

१. खुल गये चोंटियों के पपड़े वाले द्वार
२. चांदनी उस रुपये सी है कि जिस में
 चमक है पर खनक गायब है।
३. वासना की घोर अंधी लहरों में
४. क्यों इस बोलस से तन का
 सुख को आकर्षण।
५. थर्मामीटर के पारे सी
 चुपचाप भावनाएँ चढ़ती हैं उतरती हैं।
६. प्राणों पर ज्वालागिरि, पलकों पर सिन्धु सदा।
७. मुंद रहे से पलक आँखों में भरी उन्माद की सिक्ता
 दूब सी झुक कर निगाहें हो रहीं दुहरी :
 कड़कड़ाती पत्तियों सी वासनाओं के
 कँटीले अंग निखरे हैं।

आज गीत की रचना आवश्यक नहीं मानी जाती। युग बदल गया है। चक्की चलाने के साथ तो गीत का उपयोग हो सकता है, पर टाइपराइटर चलाते समय गीत नहीं गाया जा सकता। बैलगाड़ी पर बैठे या हल चलाते समय गीत बन सकता है, पर मोटर-लारी या ट्रैक्टर चलाने में गीत गाने का मजा नहीं है। आज का कवि गीत कम गाता है। गीत को इन सिनेमा-फिल्मों ने बहुत बदनाम कर दिया है। सम्मेलनी गायकों ने कविता के नाम पर 'बहुत अच्छे', 'वाह-वाह' में गा-गा कर काव्य को बदनाम कर दिया है। इसीलिए नई कविता में गीतों का अभाव-सा है। परन्तु यह कहना ठीक न होगा कि नई कविता में लय ही नहीं है।

नई कविता छंदमुक्त कविता है। इस से कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह काव्य न होकर गद्य ही है। भगवतीचरण वर्मा का कहना है कि "मुक्त छंद की कविता को अधिक से अधिक मैं गद्य-काव्य मान सकता हूँ, कविता नहीं।" किन्तु उनके इस कथन ही में विरोध है। वे इसे काव्य मानते हैं, कविता नहीं। नये कवियों का भी यह कहना है कि कविता और पद्य में अन्तर है। न तो सब पद्य काव्य है और न ही सब काव्य पद्य हो सकता है।

इस युग के कवि रस के चक्कर में नहीं पड़ते। वे प्रेषणीयता (अथवा प्रभाव) पर अधिक बल देते हैं।

काव्य की दृष्टि से और कला की दृष्टि से अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी गई हैं। अब नई कविता आरम्भिक स्थिति से निकलकर बड़े प्रौढ़ और परिमार्जित रूप में विद्यमान है। अभी इस का भविष्य देखने को है, अत: यहाँ थोड़े से उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा—

उदाहरण

(१)

यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में
यह सदा-द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब-बाहु, यह चिर-अखंड अपनापा।
जिज्ञा, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इसको? भक्ति को दे दो।

(अज्ञेय)

आप को 'नई कविता' का प्रवर्तक माना जाता है। बहुतों को आपकी कृतियों में वाद अधिक मिलता है और मार्मिकता कम।

(२)

जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक
उस में है सब के लिये जगह सब का महत्त्व
ओ मेजों की कोरों पर माथा रख कर रोने वाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सब का है
सब ने पाया है प्यार, सभी ने खोया है
सब का जीवन है भार
और सब जीते हैं।

(धर्मवीर भारती)

भारती प्रतिभा-सम्पन्न और निष्ठावान् कवि हैं। नई कविता के इतिहास में आप का स्थान सम्माननीय रहेगा। आपकी कविताओं में नई कविता के विरोधियों को भी रस की प्राप्ति हो जाती है।

(३)

मैं आज भी जिन्दा हूँ
उस हस्ताक्षर की भाँति
जो मज़ाक मज़ाक में यों ही किसी वटवृक्ष के नीचे
पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था
एक तेज़ धार वाले फौलाद की नोक
अब भी मेरी छाती में गड़ी है
और उस वटवृक्ष का घायल सीना
उस दाग की रक्षा हर मौसम में करता है
छिली हुई पपड़ी पर छाल चढ़ जाती है,
धुंधियारे पत्तों में बात बस जाती है,
जटाएँ भी झुकती हैं भूतल छूती हैं
चरवाहे की वंशी की टेर भटक जाती है
मगर
एक मैं हूँ : फ़ौलाद की पाती लिये
जीता हूँ—
मैं आज भी जिन्दा हूँ।

(लक्ष्मीकान्त वर्मा)

लक्ष्मीकान्त बड़े विद्रोही और क्रान्तिवादी कवि हैं। उनकी कविता में ओज तो है, पर कहीं-कहीं शिथिलता आ जाती है।

(४)

अखबार के बेकार टुकड़ों की तरह ही उड़ रहे विश्वास
हलका पड़ रहा अस्तित्व
तिनकों की तरह लाचार भटके जा रहे विश्वास
जीवन मूक उड़ता जा रहा
जाने कहाँ किस ओर
हृदय का हर एक कोना सनसनाहट से रहा भर
और मन की खिड़कियों का हर किवाड़ा—
फड़फड़ाता पंख जैसा
किसी हलके क्षीण बादल सा
कल्पना के शीश पर आँचल नहीं टिकता।

(जगदीश गुप्त)

आप व्रजभाषा में रूढ़ कविता और खड़ी बोली में सर्वथा रूढिमुक्त कविता लिखते हैं। आपकी भाषा परिमार्जित और भाव स्पष्ट होते हैं।

(५)

खण्ड खण्ड होकर जिसने
जीवन विष पिया नहीं
सुखमय सम्पन्न मर गया जो जग में आकर
रिस रिस कर जिया नहीं
उसकी मौलिकता का दम्भ निरा मिथ्या है
निष्फल सारा कृतित्व
उसने कुछ किया नहीं।

(दुष्यंतकुमार)

नवयुवक कवियों में आपने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

(६)

बादल को हक दो—वह हर नन्हें पौधे को छाँह दे, दुलारे,
फिर रेशे-रेशे में हल्की हल्की सुरधनु की पत्तियाँ लगा दे,
फिर कहीं भी, कहीं भी गिरे, बरसे, घहरे, टूटे—
चुक जाये—
नये बादल के लिये!
डगर को हक दो—वह कहीं भी, कहीं भी, किसी
वन, पर्वत, खेत, गली-गाँव-चौहटे जाकर
सौंप दे थकन अपनी,

(२)

जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक
इस में है सब के लिये जगह सब का महत्व
श्रो मेज़ों की कोरों पर माथा रख कर रोने वाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सब का है
सब ने पाया है प्यार, सभी ने खोया है
सब का जीवन है भार
श्रौर सब जीते हैं।

(धर्मवीर भारती)

भारती प्रतिभा-सम्पन्न श्रौर निष्ठावान् कवि हैं। नई कविता के इतिहास में श्राप का स्थान गण्यमान रहेगा। श्रापकी कविताश्रों में नई कविता के विरोधियों को भी रस की प्राप्ति हो जाती है।

(३)

मैं श्राज भी जिन्दा हूँ
उस हस्ताक्षर की भाँति
जो मजाक मजाक में यों ही किसी वटवृक्ष के नीचे
पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था
एक तेज धार वाले फौलाद की नोक
श्रब भी मेरी छाती में गड़ी है
श्रौर उस वटवृक्ष का घायल सीना
उस दाग की रक्षा हर मौसम में करता है
छिली हुई पपड़ी पर छाल चढ़ जाती है,
दुधियारे पत्तों में बात बस जाती है,
जटाएँ भी झुकती हैं भूतल छूती हैं
चरवाहे की वंशी की टेर भटक जाती है
मगर
एक मैं हूँ : फ़ौलाद की पाती लिये
जीता हूँ—
मैं श्राज भी जिन्दा हूँ।

(लक्ष्मीकान्त वर्मा)

लक्ष्मीकान्त बड़े विद्रोही श्रौर क्रान्तिवादी कवि हैं। उनकी कविता में श्रोज तो है, पर कहीं-कहीं शिथिलता श्रा जाती है।

(४)

अखबार के बेकार टुकड़ों की तरह ही उड़ रहे विश्वास
हलका पड़ रहा अस्तित्व
तिनकों की तरह लावार भटके जा रहे विश्वास
जीवन मूक उड़ता जा रहा
जाने कहाँ किस ओर
हृदय का हर एक कोना सनसनाहट से रहा भर
और मन की खिड़कियों का हर किवाड़ा—
फड़फड़ाता पंख जैसा
किसी हलके क्षीण बादल सा
कल्पना के शीश पर आँचल नहीं टिकता।

(जगदीश गुप्त)

आप व्रजभाषा में रूढ़ कविता और खड़ी बोली में सर्वथा रूढ़िमुक्त कविता लिखते हैं। आपकी भाषा परिमार्जित और भाव स्पष्ट होते हैं।

(५)

खण्ड खण्ड होकर जिसने
जीवन विष पिया नहीं
सुखमय सम्पन्न मर गया जो जग में आकर
रिस रिस कर जिया नहीं
उसकी मौलिकता का दम्भ निरा मिथ्या है
निष्फल सारा कृतित्व
उसने कुछ किया नहीं।

(दुष्यंतकुमार)

नवयुवक कवियों में आपने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

(६)

बादल को हक दो—वह हर नन्हें पौधे को छाँह दे, दुलारे,
फिर रेशे-रेशे में हल्की हल्की सुरधनु की पत्तियाँ लगा दे,
फिर कहीं भी, कहीं भी गिरे, बरसे, घहरे, टूटे—
चुक आये—
नये बादल के लिये!
डगर को हक दो—वह कहीं भी, कहीं भी, किसी
वन, पर्वत, खेत, गली-गाँव-चौहटे जाकर
सौंप दे यत्न अपनी,

बाहें अपनी—
नयी डगर के लिये।
माटी को हक दो वह भींजे, सरसे, फूटे, अंखुआय,
इन मेड़ों से लेकर उन मेड़ों तक छाये,
और कभी हारे,
(यदि हारे)
तब भी उसके माथे पर हिले
और हिले,
और उठती ही जाये—
यह दूब की पताका—
नये मानव के लिये। (केदारनाथ सिंह)

खड़ी बोली में ग्रामीण प्रयोग करने वाले अनेक कवियों में आप की भाषा अधिक सुसज्जित और परिष्कृत रहती है। इस से आप की कविता प्रसादगुण-सम्पन्न होती है।

(७)

हैं मुझे स्वीकार
मेरे श्रम, अकेलेपन, परिस्थिति के सभी काँटे।
ये दधीची हड्डियाँ
हर दाह में तप लें,
न जाने कौन दैवी आसुरी संघर्ष बाकी हो अभी,
जिस में तपायी हड्डियाँ मेरी
यशस्वी हों;
न जाने किस घड़ी की देन से मेरी
करोड़ों त्याग के आदर्श
विजयी हों;
जिसे मैं आज सह लूँ
बस य ी देवत्व हो जाये,
न जाने कौन सा उत्सर्ग
मृत्यु अमरत्व हो जाये। (कुँवरनारायण)

नई कविता के प्रमुख कलाकारों में अनेक नाम आते हैं। उन का ऊपर बड़े आदर से उल्लेख कर दिया गया है। यहाँ उन सब की कविताओं के उदाहरण देना सम्भव नहीं है। इन में कौन-कौन इस राह पर चलते रहेंगे—यह तो भविष्य ही बताएगा।

———